इकाई 1 आधुनिकता का स्वरूप एवं साहित्य का संदर्भ

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आधुनिकता का स्वरूप एवं साहित्य का संदर्भ
    1.3.1 आधुनिकता की अवधारणा एवं पृष्ठभूमि
        1.3.1.1 राजनीतिक परिस्थिति
        1.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति
        1.3.1.3 धार्मिक परिस्थिति
    1.3.2 आधुनिकता: सीमांकन तथा मतवैभिन्नता
    1.3.3 आधुनिकता संबंधी अवधारणा के आधार विचार
        1.3.3.1 अस्तित्ववाद
        1.3.3.2 मनोविश्लेषणवाद
        1.3.3.3 मार्क्सवाद
1.4 आधुनिकता और राष्ट्रीयता
1.5 आधुनिकता और साहित्य
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अंतर्गत छात्र आधुनिक एवं समकालीन कविता का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की यह पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन में आप आधुनिकता की अवधारण से परिचित होंगे। इस इकाई में आप आधुनिकता की परिस्थियों से विशेष रूप से परिचित हो सकेंगे। आधुनिकता का जन्म किस सामाजिक - ऐतिहासिक - धार्मिक एंव सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर होता है। आधुनिकता किन परिस्थितियों से विषय, आकार, स्वरूप, तर्क, सिद्धान्त तथा व्यवहार ग्रहण करता है, उन परिस्थितियों को समझना बहुत आवश्यक है।

अपने वर्तमान रूप में स्थित हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास लगभग एक हजार वर्षो का है। आधुनिक काल का प्रारंभ इतिहास में 1757 के प्लासी युद्ध के पश्चात् शुरू हो जाता है, किन्तु सही रूप में इसकी प्रक्रिया राजा राममोहन राय के आगमन के पश्चात् शुरू होती है। इसीलिए राजा राममोहन राय को भारतीय आधुनिकता या नवजागरण का अग्रदूत कहा गया है। प्रश्न है क्या आधुनिक काल और मध्यकाल में क्या कोई तात्त्विक भिन्नता हैं ? वस्तुतः आधुनिक साहित्य अपनें पूर्ववर्ती साहित्य से अपने विषय, रूप, विधा, तर्क, चेतना, स्वरूप एवं ट्रीटमेन्ट में काफी भिन्नता लिए हुए है। आधुनिकता की अवधारणा के पीछे दो संस्कृतियों की टकराहट प्रेरणा रूप में रही है। यूरोपीय आधुनिकता के पीछे कुस्तुन्तुनिया की 1453 की घटना का जिक्र किया जाता है।

किन्तु भारतीय आधुनिकता राजा राम मोहन के माध्यम से आया, जिस भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्यिक धरातल प्रदान किया। आधुनिकता का दूसरा नाम पुनर्जागरण या नवजागरण भी है। पुनर्जागरण को परिभाषित करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - 'पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से पैदा हुई वैचारिक ऊर्जा का नाम है।' जाहिर है भारतीय संदर्भ में दो जातीय संस्कृतियों से तात्पर्य यूरोपीय इसाई संस्कृति और भारतीय संस्कृति से है। इसीलिए इतिहास में प्रायः आधुनिक काल के आने के पीछे अंग्रेजों की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। खैर यह इतिहास का विवादित प्रसंग है, जिसका विस्तार हम यहाँ नहीं करेगे। इस इकाइं में हम परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जो आधुनिक साहित्य लानें में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आधुनिक का शाब्दिक अर्थ है, इस समय, सम्प्रति, वर्तमान काल, हाल का, नया, वर्तमान समय का। इस दृष्टि से विचार करें तो केवल अपने समय के साहित्य को ही हम आधुनिक कहेंगे। किन्तु इतिहास के विभाजन में हम मध्यकालीन युग से वैचारिक भिन्नता के लिए आधुनिक शब्द का व्यवहार करते हैं। किन्तु आधुनिक शब्द भी सापेक्षिक - प्रयोग है। प्रश्न है कि कोई भी समय कब तक आधुनिक रहेगा। 1850 का साहित्य आज पुराना पड़ चुका है, फिर भी उसे हम आधुनिक कहते है। , क्यों ? क्योकि सभी देशों में आधुनिक होने का अर्थ है मध्यकालीन सामंती मनोवृत्तियों से मुक्त होना। सुविधा के लिए अंतिम काल को प्रायः आधुनिक या समकालीन कह दिया जाता है। स्पष्ट है कि आधुनिकता का व्यवहार दो संदर्भी में होता - काल के अर्थ में एवं प्रवृत्ति के अर्थ में । कालागत प्रयोग के संदर्भ में समस्या हो सकती है कि आधुनिक काल के बाद कौन सा काल आयेगा ? हांलाकि 'उत्तर - आधुनिकता' की अवधारण कई विचाराकों ने रखी है। लेकिन फिर प्रश्न है कि उत्तर - आधुनिकता के बाद का अगला चरण क्या है ? काल के संदर्भ में इसीलिए आधुनिकता को प्रायः अंतिम काल मान लिया जाता है। आधुनिकता की दूसरी समझ इसे प्रवृत्ति के रूप में देखने का आग्रह करती है। मध्यकालीन सामंती मनोवृत्ति से मुक्त ऐहलौकिक दृष्टिकोण का नाम आधुनिकता है। डा. बच्चन सिंह ने लिखा है - " आधुनिकीकरण एक दृष्टिकोण है जो वैज्ञानिक विचारधारा से बनता है और वह मूलतः इस लोक से ही सम्बद्ध होता है। '' अतः मानव केंद्रित

विशिष्ट तर्क पद्धति से युक्त वैचारिक दृष्टि का नाम आधुनिकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उस काल को आधुनिक कहा गया जिसमें भारत वर्ष में सभ्यता , संस्कृति, भाषा , धर्म, जीवन - पद्धति , राजनीति , शासन - तंत्र , वैज्ञानिक आविष्कार , तर्कसंवलित दृष्टि, धर्म के स्थान पर मानव की केंद्रीयता तथा असाम्प्रदायिक आग्रह को केंद्रीयता प्राप्त होती है।

1.2 उद्देश्य

"आधुनिकता एंव समकालीन कविता'' का यह पहला खण्ड है। यह खण्ड की पहली इकाई है, जिसमें आधुनिकता के स्वरूप को साहित्यिक संदर्भ में विवेचन किया गया है । इसके पूर्व आपने आदिकाल, भक्तिकाल, तथा रीतिकाल जैसे कालखण्डों का विस्तृत, गहन एवं तर्कपूर्ण अध्ययन आप पूर्व के खंडों में कर चुके हैं। आधुनिकता के विविध सदंर्भो को प्रस्तुत करती इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- आधुनिकता की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिकता की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- आधुनिकता के नामकरण एवं सीमांकन का निर्धारण का सकेंगे।
- आधुनिकता संबंधी विभिन्न विचारधारा से परिचय प्राप्त कर सकेगे।
- आधुनिकता और राष्ट्रीय साहित्य के संबंधों का निर्धारण कर सकेंगे।
- आधुनिकता के संदर्भो से युक्त साहित्य से परिचत प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिकताबोध को स्पष्ट करती विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

1.3 आधुनिकता का स्वरूप एवं साहित्य का संदर्भ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है आधुनिकता का प्रयोग दो संदर्भी में होता हे एक काल के अर्थ में और दूसरे प्रवृत्ति के अर्थ में। प्रवृत्ति का संदर्भ हमारे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है। आधुनिकता को 'ज्ञानोदय' कहा गया है जिसके भेदक लक्षणों में है: स्वचेतनता, तर्क का आग्रह, मानव की केंद्रीयता, असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण का उभार, विचार - बृद्धि को प्राथमिकता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आग्रह। एक ओर यह मध्यकाल से भिन्नता की सूचना देता है, दूसरे यह औद्योगिक सभ्यता एवं आधुनिक तर्क - पद्धति का आश्रय ग्रहण करता है।

आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ कब से हुआ? यह प्रश्न हिन्दी साहित्य में निर्विवाद नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जहाँ इसे 1843 से मानते हैं, वही मिश्रबंधु 1832 ई. से । डॉ नगेन्द्र ने 1842 से 1867 ई. के 25 वर्ष के काल को 'पृष्ठभूमि काल' कहकर आधुनिक काल का प्रारम्भ 1867 ई.

अर्थात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'कविवचन सुधा' पत्रिका के प्रकाशन से माना है। इसी प्रसंग में रामविलास शर्मा ने आधुनिक साहित्य के केंद्र में 1857 की क्रान्ति को रखा है। वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिकता के प्रारम्भ को भाषाई भिन्नता के आधार पर रेखांकित करते हैं। स्वंय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1873 ई. में लिखा - 'हिन्दी नये चाल में ढली।' 'नये चाल' का अर्थ यहाँ भाषा के रीतिकालीन केंचुल उतार कर नये रूप-रंग ग्रहण करने से ही है। रीतिकालीन कविता के अंतिम बड़े आचार्य - कवि पद्माकर की मृत्यु 1832 ई. में होती है। उसी समय के आसपास दो लेखकों का सृजन - कर्म प्रारम्भ होता है - राजा शिव प्रसाद सिंह 'सितारे हिन्द' तथा राजा लक्ष्मण सिंह। इन दोनों लेखकों के अतिवादों (लक्ष्मण सिंह - भाषा की तप्समता पर अत्यधिक आग्रह तथा 'सितारे हिंद' - भाषा में फारसी शब्दों पर अत्यधिक आग्रह) के बीच भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी के लोक - व्यंजना को रचना का आधार बनाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व सामाजिक - सांस्कृतिक क्षेत्रों में आधुनिकता का प्रवेश हो चुका था, किन्तु साहित्य पिछड़ा हुआ था। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - समाज तो आगे बढ़ गया था, किन्तु साहित्य पीछे चल रहा था। भारतेन्दु ने साहित्य को समाज से जोड़ने का युगान्तकारी कार्य किया। आधुनिकता को विस्तार से समझने के लिए आधुनिकता की पृष्ठभूमि, उसका आधार तर्क तथा उसके अवधारणा से संबंधित तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

1.3.1 आधुनिकता की अवधारणा एवं पृष्ठभूमि

जैसा कि पूर्व में बताया गया कि मध्यकाल आस्था युक्त, भाववादी रूझान से युक्त मनोवृत्ति है,जबकि आधुनिकता विचार, तर्क, कार्यकारण से युक्त वैज्ञानिक दृष्टि है। आधुनिक और आधुनिकता प्रायः एक ही है। आधुनिकता विशेषण है, जबकि आधुनिक संज्ञा लेकिन डॉ बच्चन सिंह ने दोनों मे भेद किया है। उन्होनें लिखा है - " 'आधुनिक' 'मध्यकालीन' से अलग होने की सूचना देता है। 'आधुनिक' वैज्ञानिक आविष्कारों और औद्योगीकरण का परिणाम है जब कि 'आधुनिकता' औद्योगीकरण की अतिशयता, महानगरीय एकरसता, दो महायुद्धों की विभीषिका का फल है। वस्तुतः नवीन ज्ञान - विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न विषय मानवीय स्थितियों के नये, गैर - रोमैंटिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम 'आधुनिकता' है।'' आधुनिकता की एक पहचान स्वचेतन वृत्ति भी है। स्वचेतनता का अर्थ क्षिप्रता से है। 'इतिहास क्या है' नामक पुस्तक में ई. एच. कार ने इतिहास की स्वचेतनता को क्षिप्रता से जोड़ा है। अपने साहित्य के इतिहास में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने क्षिप्रता का व्यावहारिक उदाहरण देते हुए सिद्ध किया है कि आदिकाल, भक्तिकाल , रीतिकाल, तथा आधुनिक काल के संदर्भ में हम देखें तो पायेंगे कि क्रमश कालों का समय कम हुआ है। जैसे उदाहरण स्वरूप कहें तो यह कि आदिकाल का समय 400 वर्षो का है, भक्तिकाल का 250 , रीतिकाल का 200 वर्षों का तथा आधुनिक काल के तो अनेक अवान्तर भेद अब तक हो चुके हैं। उपरोक्त उदाहरण मानव प्रवृत्ति की क्षिप्रता का ही सूचक है। आधुनिकता की एक पहचान 'तर्क - पद्धति' है। प्रश्न है कबीर से बड़ा तार्किक कौन है ? इसका

उत्तर यही हो सकता है कि कबीर के सारे तर्कों के केंद्र में ईश्वर है, मानव नहीं । अतः मानव केंद्रित दर्शन आधुनिकता की एक प्रमुख पहचान है। 'मानव ही सारी चीजों का मापदण्ड है।' इसका सूत्र वाक्य बना।

आधुनिकता की पृष्ठभूमि, खासतौर से हिन्दी आधुनिकता की पृष्ठभूमि में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक - सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों के बदलाव की भूमिका थी। विषय को स्पष्ट करने के लिए यहाँ संक्षिप्त रूप में आधुनिकता की पृष्ठभूमि पर चर्चा की जा रही है।

1.3.1.1 राजनीतिक स्थिति

इतिहास द्वारा ज्ञात है कि 1857 ई. में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ था। किन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में 1757 के प्लासी युद्ध की भूमिका कम महत्पूर्ण नहीं थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सहित्य के पीछे सन् 1857 की क्रान्ति की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं थी। 1857 ई के बाद साहित्य पहली बार मनुष्य के सुख दुःख सघंर्ष के साथ जुड़ता है। साहित्यके संदर्भ में इसे डॉ रामविलास शर्मा नवजागरण की प्रथम मंजिल उचित ही कहते हैं। लॉर्ड डलहौजी का विलय सिद्धान्त , विलियम वैटिंक का सुधारवादी कानून, लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति तथा 1854 का वुड घोषणा पत्र, ने भारतीय चेतना को प्रतिरोधी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई।

1.3.1.2 सामाजिक परिस्थिति

अंग्रेजो के भारत आगमन से पूर्व भारतीय समाज सामंती - धार्मिक मानसिकता से बद्ध समाज था, जिसमें जाति प्रथा, छुआछूत, बाह्याडम्बर अपने चरम पर था। ऐसी स्थिति अंग्रेजो ने भले ही अपने फायदे के लिए रेलगाड़ियॉ चलाई, विभिन्न विश्वविद्यालय खोले, पुस्तक प्रकाशन किया, मैक्समूलर द्वारा संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद हुए किन्तु यह सारे कार्य उनकी औपनिवेशिक मानसिकता से संचालित थे। अंग्रजो के उपर्युक्त कार्य अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय चेतना निर्मित करने में सहायक भी हुए, इसमें संदेह नहीं।

1.3.1.3 धार्मिक परिस्थिति

भारत में अंग्रेजी शासन का आधिपत्य पुनर्जागरण लाने में सहायक हुआ। अंग्रेजो के आने से पूर्व देश मे मुस्लिम सत्ता केंद्र में थी, लेकिन उनका प्रभाव भी केंद्रीय स्तर पर संगठित नहीं रह गया था। मुगल शासन का अंतिम बादशाह बहादुर सिंह 'जफर' तो 1857 की क्रान्ति का नेतृत्व भी किया। हिन्दू राज्य सामंती भोग - लिप्सा में इतने तल्लीन थे कि उन्होंने मुगल सत्ता कों 'कर' देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली। हिन्दू राजाओंकी भोगलिप्सा का सबसे बढ़िया उदाहरण है - हिन्दू रीतिकालीन साहित्य । कहने का अर्थ यह है कि जब अंग्रेज इस देश में आये तो धार्मिक दृष्टि से हिन्दू और मुस्लिम सत्ताएँ विघटन की स्थिति में थी। अंग्रेजों ने सबसे घातक कार्य किया - हिन्दू -

मुस्लिम धर्म की तुच्छता दिखाकर ईसाई संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रचार - प्रसार करना। सेना में गाय एवं सूअर के चर्बी से बने कातूस ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मो को अपने धर्म के प्रति जागरूक किया।

अभ्यास प्रश्न 1

क) नीचे कुछ कथन दिए गए हैं । कथन की पुष्टि के लिए विकल्प भी दिए गए है। सही विकल्प को (□)चिह्नित कीजिए.

(1) भारतीय नवजागरण का अग्रदूत कहा गया है।

(भारतेन्दु ,राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी)

(2) हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश कराने वाले साहित्यकार हैं?

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, निराला , महावीर प्रसाद द्विवेदी)

(3) आधुनिकता को प्रयोग हम मुख्यतः (दो/तीन/चार) संदभों में करते हैं।

(4) आधुनिकता का भेदक लक्षण है। (आस्था, ईश्वर, मानव)

(5) हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ वर्ष (1832, 1842, 1850) को रेखांकित किया जा सकता है।

1.3.2 आधुनिकता: सीमांकन तथा मत. भिन्नता

आधुनिकता की सही पहचान मानवीय जीवन में आए मूलभूत बदलाव के संदर्भ से रेखांकित की जा सकती है। अतः आधुनिक काल कब से शुरू हुआ, इसे हम यांत्रिक ढंग से लागू नहीं कर सकते। यूरोपीय आधुनिकता का समय 1453 ई. की घटना है, लेकिन यूरोपीय आधुनिकता का सही रूप में आगमन 16 वी. शताब्दी के पूर्व नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार भारतीय आधुनिकता को राजाराम मोहन राय के आगमन से जोड़कर देखा गया है। 1829 ई. सतीप्रथा के खिलाफ कानून पारित होता है . यह सामंती मानसिकता के खिलाफ एक सांवैधानिक पहल थी। इसी प्रकार 1826 ई. में प्रथम हिन्दी समाचार पत्र का प्रकाशन अपने आप में महत्वपूर्ण घटना है। इसी क्रम में प्रार्थना समाज, तदीय समाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाओं ने आधुनिक मानोवृत्ति बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । 1857 की क्रान्ति ने नवीन चेतना निर्मित करने में कितनी बड़ी भूमिका निभाई, यह सर्वविदित है। इसी क्रान्ति को साहित्यिक रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से प्राप्त होता है। कहने का आशय यह है कि आधुनिकता की निश्चित

सीमा रेखा खींचना कठिन कार्य है, फिर भी मोटे रूप में 1850 के वर्ष को हम, सुविधा की दृष्टि से विभाजक वर्ष मान सकते है।

जैसा कि पूर्व में बताया गया कि आधुनिकता की पहचान का भेदक लक्षण है - वर्तमान बोध। अतीत के प्रति सम्मोहन का भाव रोमानी वृत्ति है और वर्तमान का सजग बोध आधुनिकता का लक्षण है। भाव के प्रति आसक्ति भी रोमानी वृत्ति है, जबकि आधुनिकता बृद्धि को केंद्र में रख कर चलती है। भावुकता इतिहास को नकार कर चलती है, जबकि आधुनिकता बोध इतिहास को केंद्र में खड़ा करता है यह अलग बात है कि इतिहास को वह मानवीय संदर्भों में विश्लेषित - विवेचित एवं मूल्यांकित करता है। इतिहास बोध वर्तमान के केंद्र में रख कर चलता हैं। वर्तमान से युक्त होने का अर्थ तर्कयुक्त होना है। तर्कयुक्त होने का अर्थ वैज्ञानिक कार्य - कारण से युक्त होना है। वैज्ञानिक कार्य - कारण युक्त होना सामाजिक आवश्यकता की निर्मिति है। लेकिन उपर्युक्त सारी सैद्धान्तिकी पूँजीवादी युग के विकास काल के समय निर्मित हुई। पूँजीवादी विघटन के दौर में आधुनिकता बोध की पहचान विसंगति, विडम्बना, तनाव, अंतर्विरोध एवं मूल्य – च्युति को पकड़ने की सजग दृष्टि से है। इस दृष्टि से आधुनिक होना ओर आधुनिकतावादी होने में फर्क हो जाता है। अपने संकीर्ण अर्थ में आधुनिकतावादी होने का तात्पर्य पूँजीवादी अंतर्विरोधों से युक्त होने से है।

1.3.3 आधुनिकता संबंधी साहित्यिक अवंधारणा के आधार विचार

आधुनिकता की समुचित रूपरेखा निर्मित करने के पीछे किसी एक विचार, किसी एक दर्शन या किसी एक व्यक्तित्व की भूमिका नहीं थी, वरन् यह कई व्यक्तित्वों, व दर्शन का साम्यीकृत प्रयास था। ऐसा नहीं था कि ये विचारक किसी एक बिन्दृ पर सहमत थे, बल्कि सामाजिक परिस्थितियों की अनिवार्यता ने परस्पर विरोधी विचारों को भी एक युग निर्मित करने का आधार प्रदान कर दिया। इस अवधि में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक विचारधाराओं का आगमन हुआ। सामाजिक चिंतकों एवं दार्शनिक मतों का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर व्यापक रूप में पड़ा । यहाँ इस संबंध में संक्षिप्त चर्चा उचित होगी।

1.3.3.1 अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद का संबंध प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त पैदा हुई मानवीय सजगता या व्यक्ति की वैयक्तिकता या 'यूनीकनेस' की प्रवृत्ति से है। अस्तित्ववाद ऐसा दर्शन है जो जिया जाता है। सोरेन कीकेंगार्ड, नीप्शे, कार्ल जेस्पर्श, हेडेगर, गैब्रिल मार्शल, पास्कल तथा सार्त्र ने अस्तित्ववाद को दार्शनिक ऊँचाई प्रदान की । जैसा कि कहा गया अस्तित्ववाद का संबंध बदली हुई परिस्थितियों से है, जिसमें मूल्यों का विघटन होने के पश्चात् 'ईश्वर' की मृत्यु' की उदघोषणा ने मनुष्य को क्षुद्र व असहाय बना दिया। 'आधुनिक ज्ञान' - विज्ञान ने मनुष्य के दृढ़ सिद्धान्तों को खोखला सिद्ध कर दिया । आइंस्टीन के सापेक्षतावाद ने पुराने सारे प्रतिमानों को उलट दिया.

अस्तित्ववाद में 'अस्ति' मनुष्य के होने पर जोर देता है। इस दर्शन में कहा गया है सत्य या गुण के पहले अस्तित्व होता है। मनुष्य वही होगा जो अपने को बनाएगा। मनुष्य अपने व्यक्तित्व के साथ प्रामाणिक ढंग से जीना चाहता है। इस दर्शन में 'मै' के 'मैं पन' पर बल है। दूसरों की सत्ता इसीलिए है कि 'मैं' की सत्ता है। जीवन के बुनियादी प्रश्नों जैसे - स्वतंत्रता, अकेलापन जीवन, मृत्यु, दुःख , निराशा, त्रास , अजनबियत, अलगाव, विंगति, विडम्बना, अंतर्विरोध, ऊब, समाज, व्यक्तित्व एवं इतिहास इत्यादि पर अस्तित्ववाद गहनतापूर्वक विचार करता है। अस्तित्ववाद उन सारे निश्चयवादी सिद्धान्तों पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है जो व्यक्ति को सीमित बंधनों में बाँधते हैं। सार्त्र के अनुसार मनुष्य होने की बुनियादी शर्त - स्वतंत्रता है। किन्तु यह स्वतंत्रता विद्रोह, चुनाव, निर्णय, क्रिया और दायित्व बोध से बँधी हुई है। हिन्दी में प्रयोगवाद से अस्तित्ववाद की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है, किन्तु 'नयी कविता' में असका व्यापक प्रभाव पड़ा। छठें - सातवें दशक में संपूर्ण -हिन्दी साहित्य के बड़े हिस्से को अस्तित्ववाद ने प्रभावित किया था।

1.3.3.2 मनोविश्लेषणवाद

आधुनिकता को तार्किक एवं वैचारिक आधार प्रदान करने में मनोविश्लेषणवाद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्त्तक सिग्मंड फ्रायड हैं फ्रायड सिद्धान्त के अनुसार समस्त कलाओं के मूल में मनुष्य की अतृप्त एवं दमित इच्छाएँ काम करती हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य की चेतन से अधिक अवचेतन मनोवृत्ति प्रभावी व असरकारक होती है। ये कुंठित अवचेतन वृत्तियाँ कला के माध्यम से उदात्तीकृत होती हैं । इसी क्रम में फ्रायड का स्वप्न - सिद्धान्त भी काफी चर्चित हुआ। उन्होने बताया कि मनुष्य के स्वप्न उसकी दमित इच्छाओं की ही अभिव्यक्ति हैं। मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अन्य विचारकों में एडलर, युंग, मैकडुगल, फ्रेम, होने, सलीवन, कार्डोनर एवं मार्गरेट मीड प्रमुख हैं। हिन्दी साहित्य पर मनोविश्लेषणवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा । अज्ञेय, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, 'अश्क', भगवतीचरण वर्मा, डॉ. देवराज, नरेश मेहता, मुक्तिबोध पर मनोविज्ञान का व्यापक असर है।

1.3.3.3 मार्क्सवाद

काल मार्क्स के दार्शनिक - राजनीतिक विचारों को मार्क्सवाद कहा गया है। मार्क्सवाद को समझने के लिए 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' आधार स्तम्भ है। इसके अतिरिक्त मार्क्स एवं एंगेल्स द्वारा लिखित 'दास कैपिटल' (पूँजी) भी मार्क्सवाद को समझने में महत्पूर्ण भूमिका निभाती है। मार्क्सवाद के अनुसार समाज का बुनियादी आधार आर्थिक है। साहित्य, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, कानून आदि बुनियादी आधार के ऊपरी ढाँचे (सुपर स्ट्रक्चर) हैं। आर्थिक ढांचे में परिवर्तन आने पर समाज के ऊपरी ढाँचे भी परिवर्तित हो जाते है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को समझने के लिए मार्क्स ऐतिहासिक भौतिकवाद का आधार ग्रहण करता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद में इतिहास की विभिन्न मंजिलों - आदिम साम्य व्यवस्था, सामंतीय प्रणाली, पूँजीवादी व्यवस्था तथा

साम्यवादी व्यवस्था के आधार पर मार्क्स समाज की व्यवथा करता है। मार्क्सवाद का यह प्रसिद्ध सूत्र है कि अभी तक दार्शनिकों ने केवल समाज की व्याख्या की है, अब समय है उसे बदलने का । इस प्रकार मार्क्सवाद जीवन का क्रियात्मक दर्शन है। मार्क्स ने लिखा है मनुष्य की चेतना उसके जीवन को निर्धारित नहीं करती , बल्कि मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है। लेकिन यह संबंध सरल - सीधा नहीं है, बल्कि द्वन्द्वात्मक संबंध है। इसीलिए मार्क्सवाद को 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' भी कहते हैं। ट्राट्स्की, ब्रेश्ट, एडोर्नी, गिओर्खो प्लाइखानोव, जॉर्ज लुकाच, ब्लाक, फिशर, बैंजामिन, लूसिए गोल्डमन ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर व्यापक रूप से विचार किया है। हिन्दी साहित्य का प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवादी दर्शन का ही साहित्यिक रूपान्तरण है। शिवदन सिंह चौहान, अमृतराय, रांगेय राघव, यशपाल, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, नागार्जुन, त्रिलोचन केदारनाथ अग्रवाल इत्यादि प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

क) निम्नलिखित के सही उत्तर को चिह्नित कीजिए -

1. किस दर्शन में प्रामाणिक जिन्दगी के प्रश्न को उठाया गया है ?

(मार्क्सवाद, मनोविश्लेषववाद, अस्तित्ववाद, भाववाद)

2. किस दर्शन में आर्थिक तंत्र को प्रमुख माना गया है?

(मार्क्सवाद, मनोविश्लेषववाद, अस्तित्ववाद, बुद्धिवाद)

3. किस दर्शन में मनुष्य के अवचेतन को महत्वपूर्ण माना गया है?

(मनोविश्लेषववाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, नवजागरण)

4. किस दर्शनिक ने समाज को बदलने की बात पर बल दिया?

(नीप्शे, सार्त्र, फायड, मार्क्स)

2) विकल्प में दिए गए शब्दों से रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिएं

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता .... के माध्यम से आया। (राजा राममोहन राय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दयानन्द सरस्वती)

2. हिन्दी कविता का प्रयोगवाद .... दर्शन से प्रभावित रहा है। (मार्क्सवाद, मनोविश्लेषववाद, भाववाद)

3. हिन्दी कविता का प्रगतिवाद ....दर्शन से प्रभावित रहा है। (मार्क्सवाद, नवजागरण, अस्तित्ववाद)

4. .... मार्क्सवादी साहित्यकार है। (यशपाल, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी)

1.4 आधुनिकता और राष्ट्रीय चेतना

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया कि 1850 की तिथि सुविधाजनक होने के कारण तथा नवीन प्रवृत्तियों को संकेत प्रदान करने के कारण प्रायः विचारकों द्वारा आधनिकता के प्रस्थान बिन्दु के रूप में स्वीकृत की जा चुकी है। हिन्दी आधुनिकता के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म वर्ष भी यही है अतः इसे भेदक तिथि मानने में सुविधा हो जाती है। इसी क्रम में सन् 1857 की क्रान्ति वह घटना है जो राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में आधुनिकता और राष्ट्रीय चेतना की संक्षिप्त चर्चा करना उचित होगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का साहित्य तो सीधे रूप में पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति है, इसके साथ ही महावीर प्रसाद द्विवेदी, छायावादी आन्दोलन, जयशंकर प्रसाद के नाटक, प्रेमचन्द का कथा - साहित्य, रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना कृत्तियाँ, राष्ट्रीय - सांस्कृतिक आन्दोलन, प्रगतिवादी साहित्यान्दोलन व्यापक रूप में राष्ट्रीय चेतना की ही सांस्कृतिक - साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं। साहित्य के संदर्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम जातीयता का समावेश किया । जातीयता की अभिव्यक्ति प्रायः भारतेन्दु मण्डल के सदस्य लेखकों की कृतियों में हुआ है। 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल ' भारतेन्दु के जीवन का सूत्र वाक्य बना। 'निज भाषा' की अवधारणा ही जातीयता का संकेत प्रदानकर रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'भारत दुर्दशा' तथा 'अंधेर नगरी ' नाटक राष्ट्रीय बोध की ही प्रतिध्वनियाँ है। "अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेसा ।। '' ××× "अंग्रेज राज सुख साज सब भारी/ पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।'' जैसी पंक्तियाँ बिना राष्ट्रीय चेतना के कैसे लिखी जा सकती थीं। स्वदेशी वस्तुओं के प्रति जागरूकता का कार्य यानी प्रतिज्ञा '- पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 24 मार्च 1874 ई. को 'कविवचन - सुधा' में प्रकाशित किया था। इसी क्रम में बालकृष्ण भट्ट का प्रसिद्ध निबंध 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' तथा स्वंय भारतेन्दु का प्रसिद्ध बलिया व्याख्यान 'भारतोन्नति कैसे हो सकती है ? सशक्त राष्ट्रीय प्रतिध्वनियाँ हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी का भाषा - साहित्य परिस्कार की निस्पत्ति अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि ओध' तथा मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य है। अगली कड़ी छायावाद युग का सांस्कृतिक जागरण है। इसी युग में प्रेमचन्द का जातीय साहित्य राष्ट्रीय साहित्य बनता है। जयशंकर प्रसाद के नाटक अपने पुनरूत्थानवादी चेतना के बावजूद राष्ट्रीय चेतना को व्यापक विमश के साथ उठाते हैं। छायावाद के बाद तो 'राष्ट्रीय - सांस्कृतिक' नामक एक आन्दोलन ही चलता है, जो साहित्य में ऐतिहासिक महत्व रखता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय चेतना का रूपान्तरण आधुनिकता के बौद्धिक विमर्श के रूप में हुआ। बौद्धिक विमर्श ने क्षणवाद, प्रामाणिक अनुभूति, भोगा हुआ

यर्थाथ, मानववाद, लघुमानव, नक्सलवाड़ी, स्त्री - दलित - आदिवासी विमर्श, संप्रेषण, समानानुभूति, विरोधाभास, विसंगति, विडम्बना, मिथक, प्रतिबद्धता, प्रासंगिकता, तनाव तथा ईमानदारी जैसे पारिभाषिक को राष्ट्रीय चेतना का स्पर्श दिया।

1.5 आधुनिकता और साहित्य

आधुनिक काल से पूर्व साहित्य का स्वरूप धार्मिक - आदर्शवादी - भाववादी रूझानों से संचालित था। इस प्रकार के साहित्य में तर्क की जगह श्रद्धा और विश्वास की प्रमुखता थी। लेकिन यह कहना कि मध्यकालीन काव्य में तर्क के लिए गुंजाइश नहीं थी, अधूरा सच होगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूरदास की गोपियो की तर्कशक्ति के कायल हैं वहीं हजारी प्रसाद द्विवेदी और बाद के प्रगतिशील समीक्षक कबीर से बड़ा तार्किक रचनाकार किसी दूसरे को मानते ही नहीं। फिर प्रश्न यह है कि कबीर, सूर के तर्क और आधुनिक कवियों के तर्क में क्या अंतर है ? जब हम आधुनिकता के संदर्भ में विचार करते हैं तो अनिवार्य रूप से हमारे विचार केंद्र में वर्तमान बोध, मानवाद तथा तार्किकता अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई होती है। जो समीक्षक या आलोचक कबीर को सबसे बडा तार्किक सिद्ध करना चाहते है, उन्हें स्मरण रखना होगा कि उनके तर्क की निष्पत्ति कहाँ होती है ? जबकि आधुनिकता की पहली शर्त है मानव केंद्रित होना। तब समझ में आता है कि मध्यकालीन चेतना और आधुनिक चेतना में क्या बुनियादी अंतर है। इसीलिए सही अर्थो में छायावाद के बाद के साहित्य को ही आधुनिक कहा गया है। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में जब हम आधुनिकता पर विचार करते हैं तो एक बात हमें स्मरण रखनी चाहिए कि पश्चिम की दार्शनिक, सामाजिक - सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं वैज्ञानिक स्थितियाँ क्या भारत में भी उपलब्ध थीं ? पश्चिमी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश सहज रूप में हुआ, जबकि हिन्दी साहित्य में इसका प्रवेश वैचारिक ज्यादा था। क्योंकि आधुनिक परिस्थितियाँ यहाँ बाद में आईं, दर्शन - विचार बाद मे आया। भारतीय वैचारिकी में आधुनिकता का प्रवेश बौद्धिक ज्यादा था, आनुभूतिक कम। अनायास नहीं कि 'नयी कविता'आन्दोलन में इसीलिए 'प्रामाणिक अनुभूति' की बार - बार बात उठाई गई है। इसी के साथ ही 'ईमानदारी' एवं 'भोगा हुआ यर्थाथ' की बार - बार चर्चा इस बात का संकेत है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक विचारक महसूस कर रहे थे कि उनकी बौद्धिकता कोरी शुष्क बौद्धिकता मात्र न रह जाए। हिन्दी साहित्य के इतिहास क्रम पर ध्यान दें आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1868 रचनाकाल) से होता है। भारतेन्दु युग का गद्य साहित्य आधुनिक विचारों का वाहक तो बना किन्तु कविता में भक्ति - नीति - श्रृंगार जैसे विषय ही प्रचलित रहे। कविता जबकि संवेदना का वाहक ज्यादा होती है, फिर भी आधुनिकता का प्रवेश हिन्दी में गद्य के माध्यम से ही हुआ। स्पष्ट है कि हमने आधुनिकता को वैचारिक रूप में ही ग्रहण किया था। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिओध' या स्वयं महावीर प्रसार द्विवेदी ने कविता में आधुनिकता को सीधे रूप में ग्रहण नहीं किया। मैथिलीशरण गुप्त, जो द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं, ने राष्ट्र

परिवार, धर्म, और शोषित स्त्री की करूणा को ही केंद्र में रखा है। गुप्त जी का महाकाव्य 'साकेत' नारी करूणा का नवजागरण वादी उत्थान है। कह सकते है कि द्विवेदी युग तक सुधार वादी भावनाएँ प्रस्फुटित हो चुकी होती हैं। कम - से - कम ''हम कौन थे,क्या हो गये हैं ओर क्या होंगे अभी / आओं, विचारें आज मिल कर ये समस्यायें सभी।'' इस प्रकार का नवजागरणवदी बोध आ चुका था। यहाँ एक बात स्मरण रखने की है कि हमारी राष्ट्रीयता समाज सुधार के माध्यम से प्रस्फुटित हुई है। जबकि कई जगह देखा गया है कि राष्ट्रीयता के बाद समाज - सुधार की भावना का जन्म हुआ है।

हिन्दी साहित्य का छायावादी आन्दोलन, जिसे कई आलोचकों ने 'सांस्कृतिक नवजागरण' की संज्ञा दी है, जो आधुनिक हिन्दी कविता का 'स्वर्ण काल' कहा गया है तथा जिस काव्यान्दोलन में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकतांत त्रिपाठी 'निराला' , सुमित्रानन्दन पंत तथा महादवी वर्मा, शामिल हैं, में भी आधुनिकता को भारतीय संदर्भों में ही अप्रत्यक्ष रूप से ग्रहण किया गया। प्रसाद प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित हैं, निराला वेदांती हैं, महादेवी वर्मा के ऊपर बौद्ध दर्शन का प्रभाव है तथा सुमित्रानन्दन पंत भी रवीन्द्रनाथ तथा अरविन्द दर्शन से प्रभावित हैं। इस आन्दोलन की श्रेष्ठ कृति 'कामायनी' का समापन 'आनन्द' में होता है। वहीं निराला की श्रेष्ठ रचना 'राम की शक्ति पूजा' का अंत ''होगी जय , होगी जय हे पुरूषोत्तम नवीन/कह देवी हुई राम के बदन में लीन। '' में। छायावाद के बाद रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा हरिवंशराय बच्चन की कविता में आधुनिकता के स्वर का माध्यम भावुक प्रतिक्रिया तथा आवेग बनकर रह जाता है। सही अर्थों में आधुनिकता का प्रवेश हिन्दी कविता में प्रगतिवादी आन्दोलन तथा प्रयोगवाद से होता है। हिन्दी साहित्य में अज्ञेय आधुनिकता के सच्चे प्रस्तोता हैं। आपने पश्चिमी सिद्धान्तों को अपने विवके के आधार पर जाँचा और उसे भारतीय संदर्भ प्रदान किया। 'अपने - अपने अजनबी' जैसे एकाध उपन्यासों को छोड़ दिया जाए तो अपने संपूर्ण रूप में अज्ञेय का साहित्य आधुनिकता को भारतीय संदर्भ में विश्लेषित करता है। 'साँप' , 'सोनमछली' जैसी कविताएँ आधुनिक सभ्यता की विसंगतियों का सटीक प्रत्याख्यान करती हैं। इसी प्रकार इतिहास एवं काल का त्रासद बोध बड़े तीव्र रूप में धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' एवं 'कनुप्रिया' में चित्रित हुआ है। इसी क्रम में मिथकों का सर्जनात्मक आधुनिक प्रयोग कुँवरनारायण के 'आत्मजयी' , नरेश मेहता के 'संशय की एक रात' , भारतभूषण अग्रवाल के 'अग्निलीक' जैसी रचनाओं में व्यक्त हुआ है। समसायिक जीवन की विद्रुपता 'आत्महत्या के विरूद्ध' से होती हुई 'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो' तक चली जाती हैं। रधुवीर सहाय के उपरोक्त रचनाओं में सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगति एवं विद्रुपता को बखूबी उभारा गया है। आधुनिकता को सामाजिक धरातल प्रदान करने का श्रेय मार्क्सवादी कवियों को है । आधुनिक जीवन के अंतर्विरोधों पर नागार्जुन ने कई श्रेष्ठ व्यंग्य कविताएँ लिखी हैं। मुक्तिबोध की कविता सामाजिक - राजनीतिक अंधकार को फैंटेसी, दिवास्वप्न, दुःस्वप्न, प्रतीकात्मकता के माध्यम से

प्रकट करती है। भारतभूषण अग्रवाल की ‘मै और मेरा पिट्ठू ’ जैसी कविताएँ व्यंग्य रूप में युगीन विद्रुप को उभारती है। उदाहरण स्वरूप ‘मै और मेरा पिट्ठू’ कविता देखें -

‘‘जब में दफ्तर में

सहब की घंटी पर उठता - बैठता हूँ,

मेरा पिट्ठू

नदी किनारे वंशी बजाता रहता है!’’

अनुभव की सघनता के साथ ही मनुष्य और प्रकृति का संश्लिष्ट रूप शमशेर बहादुर सिंह की कविता में मिलता है। प्रकृति मनुष्य और अनुभव की सघनता को व्यक्त करती शामशेर की कविता देखें -

‘‘एक पीली शाम

पतझर का ज़रा अटका हुआ पत्ता

× × ×

अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू

सांध्य - तारक - सा

अतल में। ’’

आधुनिक समाज की विषय स्थिति को व्यक्त करती भवानी मिश्र की कविता ’गीतफ़रोश’ देखें -

‘‘जी हाँ हजूर , मैं गीत बेचता हूँ ,

मै तरह - तरह के गीत बेचता हूँ

× × ×

‘‘जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान् ,

जी, आप न हों सुन कर ज्यादा हैरान - -’’

युग की विषमता को केदारनाथ सिंह ने अपनी कविता ’फर्क नहीं पड़ता में पकड़ा है।

“पर सच तो यह है

कि यहाँ या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता।

तुमने जहाँ लिखा है ‘प्यार’

वहॉ लिख दो - ‘सड़क’

फर्क नहीं पड़ता।

मेरे युग का मुहावरा है

फर्क नहीं पड़ता।”

आधुनिकता की अवस्था अवसाद से होते हुए कहीं - कहीं अराजकता तक पहुँच जाती है। राजकमल चौधरी, कैलाश बाजपेयी, धूमिल, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्रमोहन इस धारा के कवि हैं। इन्हें पूर्णतः अराजकतावादी कहना अनुचित होगा। इनके विद्रोह की अतिशयता मोहभंग से होते हुए अवसाद तक चली जाती है। इनके कविता के केंद्र में विद्रोह ही है। राजकमल चौधरी की कविता की पंक्ति देखें -

सबके लिए, सबके हित में अस्पताल चला गया है

राजकमल चौधरी

लिखने - पढ़ने, गाँजा - अफीम - सिगरेट पीने

मरने का अपना एकमात्र कमरा बंद करके

दोपही दिन के पसीने, पेशाब, वीर्यपात

मटमैले अँधेरे में लेटे हुए -

धुऑ क्रोध दुर्गंधियाँ पीते रहने के सिवा

जिसने को बड़ा काम नहीं किया अपनी देह

अथवा अपनी चेतना में

व्यवस्था की विसंगति का चित्र कैलाश बाजपेयी की कविता में देखें -

“रक्त और बादल/सर्प और तितलियाँ / यज्ञ और वेश्या/सबको एक साथ जोड़ जाता हूँ/ मुझे कोई और नाम/ और नाम दे दो ! ’’

× × ×

“मै देखता हूँ / कुछ लकड़बग्धे/ संसद से निकल कर/ पहुँच गए रखैल के / और उधर कोई सुकरात रोज -/अंधा हो जाता है सींखचे खिजते हुए जेल के ।’’

व्यवस्था की विसंगति पर सबसे तीखा और आक्रामक व्यंग्य धूमिल की कविता में मिलता है। धूमिल की मुख्यचिंता कविता को सार्थक वक्तब बनाने की है । इसीलिए वे व्यवस्था परिवर्तन को आवश्यक मानते हैं क्योंकि आधुनिक व्यवस्था तो

‘अपने यहॉ संसद -/ तेली की वह घानी है/ जिसमें आधा तेल है/ और आधा पानी है।’

× × ×

‘लहलहाती हुई फसलें .... / बहती हुई नदी .... / उड़ती हुई चिड़ियॉ .... / यह सब , सिर्फ, तुम्हें गँगा करने की चाल है।’

उपराक्त संक्षिप्त उद्धरणों के माध्यम से कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध ने हिन्दी साहित्य को नये तेवर प्रदान किया है। व्यंग्य , शब्दों का संयोजन विराम चिह्नों का मुखर प्रयोग, शब्दों की मितव्ययता, बिंबों और प्रतीकों का सार्थक प्रयोग, भाषा और रूप के प्रति सजगता, सामाजिक - राजनीतिक यर्थाथ की विसंगति, अंतर्विरोध का अंकन, आधुनिक पारिवारिक एवं सामाजिक मनः स्थितियॉ जैसे क्षणवाद, अस्तित्ववाद का अंकन इत्यादि के संबंध में आधुनिक साहित्य ने सजगता का परिचय दिया है। यहाँ इसकी एक संक्षिप्त रूपरेखा मात्र प्रस्तुत की गई है।

अभ्यास प्रश्न 3)

क) निम्नलिखित में सही विकल्प का चुनाव कीजिए.

1. निम्नलिखित मे से कौन आधुनिकता का भेदक लक्षण नहीं है?

(आस्था, तर्क, वर्तमानबोध, मानववाद)

2. हिन्दी के किस काव्यान्दोलन में ‘प्रामाणिक अनुभूति की बात उठाई गई है?

(छायावाद, भक्तिकाल, नयी कविता, प्रगतिवाद)

3. हिन्दी साहित्यमें आधुनिक काल का प्रारम्भ होता है? (1900, 1950, 1850, 1920)

4. भारतेन्दु युगीन कविता के विषय थे? (भक्ति, व्यंग्य, व्यवस्था यर्थाथ विसंगति)

5. आधुनिक हिन्दी कविता का 'स्वर्णकाल' किसे कहा गया है?

(प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, छायावाद)

2) 'क' और 'ख' वर्ग में दिए गए शब्दों का सही मिलान कीजिए :-

'क'	'ख'
(1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	अपने - अपने अजनबी
(2) मैथिलीशरण गुप्त	भारत दुर्दशा
(3) जयंशकर प्रसाद	फैंटेसी शिल्प
(4) गजानन माधव 'मुक्ति बोध'	साकेत
(5) 'अज्ञेय'	प्रत्यभिज्ञा दर्शन

1.5 सारांश

- अपने वर्तमान रूप में हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास लगभग 1000 वर्ष पुराना है। उसमें भी खड़ी बोली हिन्दी का इतिहास सन् 1857 के बाद शुरू होता है।
- भारतीय आधुनिकता राजा राममोहन राय के सामाजिक सुधारों के माध्यम से आया/ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आधुनिकता को साहित्यिक धरातल प्रदान किया।
- आधुनिकता को सांस्कृतिक दृष्टि से नवजागरण या पुनर्जागरण भी कहा गया है। पुनर्जागरण को परिभाषित करते हुए कहा गया है- 'पुनर्जागरण दो जातीय संसकृतियों की टकराहट से पैदा हुई वैचारिक ऊर्जा का नाम है।' यहॉ दो जातीय संस्कृतियों से तात्पर्य यूरोपीय इसाई संसकृति और भारतीय संस्कृति है।
- आधुनिक का शाब्दिक अर्थ है - इस समय, सम्प्रति, वर्तमान काल, हाल का , नया, वर्तमान समय का । इस दृष्टि से वर्तमान काल में लिखे गये एवं वर्तमान चेतना से युक्त साहित्य को ही हम आधुनिक साहित्य कह सकते हैं।
- आधुनिकता के भेदक लक्षण हैं - स्वचेतनता, तर्क का आग्रह, मानव केंद्रीयता, असम्प्रदायिक दृष्टिकोण एवं विचार - बुद्धि का आधार ।

- हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य को समाज की गति से जोड़ां भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे पहले घोषणा की – 'निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल ' । सन् 1873 में भारतेनदु ने हिन्दी भाषा के बदलते स्वरूप को लक्ष्य करके लिखा - हिन्दी नये चाल में ढली
- आधुनिकता हिन्दी साहित्य पर अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, एवं मनोविश्लेषणवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा। अस्तित्ववाद ने मनुष्य के होने पर जोर दिया । जीवन के बुनियादी प्रश्नों - स्वतंत्रता, अकेलापन, जीवन, मृत्यु , दुःख, निराशा , त्रास, अजनबीपन, अलगान, विसंगति, बिडम्बना, अंतर्विरोध , ऊब इत्यादि पर अस्तित्ववादी साहित्य ने संवेदनापूर्वक विचार किय। मनोविश्लेषण ने मानव मन की सुजनात्मकता एवं व्यक्तित्व पर बल देकर साहित्य को देखने की नई दृष्टि प्रदान की । मार्क्सवाद ने साहित्य को सामाजिक प्रतिबद्धता से जोड़ा।

1.7 शब्दावली

- पुनर्जागरण - पूर्व समृद्ध परम्परा का रचनात्मक स्मरण
- सामंतवाद - कृषि - राजा केंद्रित दर्शन
- स्वचेतनता - स्वयम् को जानने की तीव्र उत्कंठा
- औद्योगिक सभ्यता - कल - कारखाने या मशीनीकृत व्यवस्था
- एकरसता - जीवन - समाज में जीवंतता का अभाव
- मिथक सत्य - कल्पना का मिश्रित रूप
- सापेक्षतावाद - आइंस्टीन का वैज्ञानिक सिद्धान्त, हर व्यक्ति - वस्तु का एक दूसरे से संचालित होना,
- दमित इच्छा - अवरूद्ध भाव
- अवचेतन - मन के अंदर छिपे गूढ़ भाव
- उदात्त - व्यापक, श्रेष्ठ भाव
- कामाध्यात्म - काम और अव्यात्म का संयोग काम के माध्यम से अध्यात्म

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) (क) (1) - राजा राममोहन राय (2) - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (3) - दो

(4) – मानव (5) - 1850 ई.

अभ्यास प्रशन 2) (क) (1) – अस्तित्ववाद (2) – मार्क्सवाद (3) -मनोविश्लेषणवाद

(4) - मार्क्स

(ख) (1) - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (2) – मनोविश्लेषणवाद (3) - मार्क्सवाद

(4) - यशपाल

अभ्यास प्रश्न 3) (क) (1) – अस्थिा (2) - नयी कविता (3) - 1850

(4) – भक्ति (5) - छायावाद

(ख) (1) - भारत – दुर्दशा (2) – साकेत (3) - प्रत्यभिज्ञा

(4) - फेंटेसी शिल्प (5) - अपने - अपने अजनबी

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीच शब्द, वाणी प्रकाशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, बच्चन, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।

5. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, (सं) धीरेद्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. शर्मा, रामविलास, अस्था और सौन्दर्य।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिकता की पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।

2. आधुनिकता से प्रभावित हिन्दी साहित्य का संदर्भ स्पष्ट करें।

3. आधुनिकता के वौचारिक आधारको स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 प्रमुख काव्य-आंदोलन: परिचय एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 प्रमुख काव्य आन्दोलन: परिचय एवं आलोचना
    2.3.1 प्रमुख काव्य आन्दोलन: काल विभाजन एवं नामकरण
    2.3.2 प्रमुख काव्य आन्दोलन की पृष्ठभूमि
2.4 प्राचीन हिन्दी कविता
    2.4.1 आदिकालीन कविता
        2.4.1.1 काल विभाजन - नामकरण
        2.4.1.2 विभिन्न काव्य धाराएँ
    2.4.2 भक्तिकालीन कविता
        2.4.2.1 निगुर्ण कविता
        2.4.2.2 सगुण कविता
    2.4.3 रीतिकालीन कविता
        2.4.3.1 विभिन्न वर्गीकरण
        2.4.3.2 नामकरण
        2.4.3.3 प्रवृत्तियाँ
2.5 आधुनिक हिन्दी कविता: स्वतंत्रापूर्व
    2.5.1 काल विभाजन
    2.5.2 नामकरण
    2.5.3 प्रमुख काव्यान्दोलन
2.6 आधुनिक हिन्दी कविता: स्वतंत्रता पश्चात्
    2.5.1 काल विभाजन - नामकरण का औचित्य
    2.5.2 प्रमुख काव्यान्दोलन: प्रवत्ति
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक/ उपयोगी पाठ सामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की पिछली इकाई में आप हिन्दी कविता और कवियों के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के महत्वपूर्ण कवियों के बारे में आपने पढ़ा। आपने प्राचीन एवं नवीन कविता के बारे मे भी पढ़ा। इस इकाई में आप संपूर्ण हिन्दी कविता के विकास क्रम को देखेगे। इसी इकाई में आप संपूर्ण हिन्दी कविताके काल विभाजन , नामकरण एवं प्रवृत्ति का अध्ययन करेंगे। हिन्दी साहित्य का इतिहास मुख्य रुप से विकासनशील मनोवृत्तियों से संचालित रहा है। यूरोपीय समाज में एक ही जागरण (रिनैसो) रहा है जबकि भारतीय समाज में भक्ति आन्दोलन, पुनजगिरण एवं राष्ट्रीय आन्दोलन संबंधी कई जागरण रहे हैं। भारतीय साहित्य सांस्कृतिक रूप सं अत्यन्त समृद्ध रहा है, जिसका पता हमें हिन्दी साहित्य देता हैं। यहाँ हम हिन्दी कविता के संदर्भ में भारतीय इतिहास - संस्कृति एवं उसकी जातीय चेतना को समझने का प्रयास करेंगे। हिन्दी साहित्य प्रारम्भ सें ही अपनी समतापूर्ण विचारधारा से जुटा रहा है। आदिकालीन साहित्य अपनी किन विशेषताओं के कारण विशिष्ट है ? भक्तिकालीन साहित्य के उदय की पृष्ठभूमि क्या है ? भक्तिकालीन साहित्य के बाद रीतिकालीन साहित्य क्यों आया तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य का मुख्य प्रवृत्तियाँ क्या थी? इन सभी प्रश्नों का सम्यक् उत्तर हमें तभी मिल सकता है जब हम संपूर्ण हिन्दी कविता के विकासक्रम एवं उसकी प्रवृत्तियों को समझें ।

2.2 उद्देश्य

यह इकाई प्रमुख काव्यान्दोलन: परिचय एवं आलोचना से संबंधित है। इस इकाई को अध्ययन के बाद आप -

- हिन्दी कविता के काल विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- हिन्दी कविता के नामकरण के आधार को समझ सकेंगे।
- हिन्दी कविता के प्रमुख काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- प्राचीन हिन्दी कविता की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेगे।
- प्राचीन और आधुनिक कविता का अंतर समझ सकेंगे।
- आधुनिक हिन्दी कविता के आधार प्रत्ययो को समझ सकेंगे।
- आधुनिक हिन्दी कविता के कालविभाजन एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- आधुनिक कविता के प्रमुख काव्यआन्दोलन की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- हिन्दी कविता के पारिभाषिक शब्दावलियोंसे परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

- हिन्दी कविता की सामाजिक एवं जातीय चेतना को समझ सकेंगे।

2.3 प्रमुख काव्य आन्दोलन: परिचय एवं आलोचना

हिन्दी कविता का इतिहास गतिशील जीवन चेतना का प्रतीक है। 1000 वर्ष के लगभग से प्रारम्भ हुई हिन्दी कविता आज वैविध्य एवं प्रगतिशील चेतना का पर्याय है। हजार वर्षों के समय में हिन्दी कविता ने विभिन्न स्वरूप ग्रहण किये है। इस बीच विश्व इतिहास एवं भारतीय इतिहास में काफी परिवर्तन आ चुका है। सभ्यता-संस्कृति में आमूलचूल परिवर्तन उवस्थित हो चुके हैं। फलतः जीवन मूल्य और पुरूषार्थो का सामन्ती स्वरूप भी परिवर्तित हुआ है। सामंतवाद के बाद आधुनिक काल, आधुनिकतावाद एवं उत्तर-आधुनिकतावाद तक की स्थितियाँ आ चुकी हैं। भारतीय समाज भी आज युगसंधिके मोड़ पर खड़ा हैं। एक और सामंती समाज है, दूसरी ओर आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समाज । ऐसी स्थिति में अंतर्विरोधी स्थिति का आना स्वाभाविक हैं। भारतीय समाज के इस बदलाव को हिन्दी कविता ने बखूबी चिह्न्ति किया है। आगे के बिन्दुओं में हम इस बदलाव पर विस्तार से चर्चा करेगे। उसके पूर्व आइए हम हिन्दी कविता के प्रमुख काव्य आन्दोलन के काल विभाजन एवं नामकरण की समस्या से अवगत हों।

2.3.1 प्रमुख काव्य आन्दोलन: काल विभाजन एवं नामकरण

जैसा कि रेनवेलेक ने कहा है कि इतिहास मूलतः मूल्यांकनपरक होतर है । तय है कि इतिहास का मूल स्वरूप आलोचनात्मक तेवर से ही विकसित होता है। लेकिन जब हम इतिहास लेखन प्रारम्भ करते हैं तो हमारे सामने यह समस्या उपस्थित होतीहै कि इतिहास लेखन का अधार किसे बनायें? अर्थात् हम किस सामग्री का चयन करें और किसे छोड़े ? इतिहास में सारे तथ्य - घटनाएँ यानी सब कुछ है लेकिन सब कुछ इतिहास नहीं है। इतिहास में तथ्य-घटनाएँ आधार सामग्री का कार्य करती है। वस्तुतः इतिहास में तीन मुख्य प्रक्रियाएँ काम करती हैं। विषय चयन, चयनित विषय का विश्लेषण एवं उसका देश-कालगत संदर्भ में मूल्यांकन । इन तीन बिन्दुओं के आलोक में विभिन्न इतिहासकार अपने इतिहास को प्रस्तुत करता है। हर लेखक का विश्लेषण - मूल्यांकन उसकी जातीय चेतना परिवेश से नियंत्रित होता है, इसलिए हर इतिहास दूसरे इतिहास से भिन्न हो जाता है। शायद इसीलिए देश-काल परिवर्तन के बाद इतिहास के मून्लांकन करने का औजार बदल जाता हैं।

विश्लेषण करने की दृष्टि बदल जाती है ओर मूल्यांकन के निष्कर्ष पहले से भिन्न हो जाते है। इतिहास का यह नियम साहित्य के इतिहास पर लागू होता है। हिन्दी साहित्य विशेषकर कविता के विभिन्न आन्दोलन के काल विभाजन एवं नामकरण में मतवैभिन्नता के पीछे उपर्युक्त सिद्धान्त ही काम कर रहा है। हिन्दी कविता के काल विभाजन के संदर्भ में पहली समस्या यह उत्पन्न होती है कि हिन्दी साहित्य का प्रांरभ कब से मानें ? सातवीं शाताब्दी से या 10 - 11वीं शताब्दी से ?

नामकरण के पीछे किस कारण को आधार बनायें ? क्या काल विभाजन एवं नामकरण कों निर्विवाद रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है ? इन प्रश्नों पर व्यावहारिक रूप से हम आगे अध्ययन करेंगे। यहाँ हम हिन्दी कविता के प्रमुख काव्य आन्दोलन के काल सीमांकन एवं नामकरण की रूपरेखा का अध्ययन करेंगे।

हिन्दी काव्य आन्दोलन		**सीमांकन**	**नामकरण**
आदिकाल	-	1000 -1400 ई. -	वीरगाथाकाल समेत कई नामकरण
भक्तिकाल	-	1400 - 1650 ई. -	भक्तिकाल/धार्मिक पनर्जागरण
रीतिकाल	-	1650-1850 ई. -	श्रृंगार काल' समेत कई नामकरण
आधुनिक काल	-	1850- से अब तक-	पुनर्जागरण समेत कई नामकरण

आधुनिक काल के बाद हिन्दी कविता में कई मोड़ आ चुके हैं। स्वचेतनता की वृत्ति ने क्षिप्रता को जन्म दिया। फलस्वरूप हिन्दी कविता में भी बदलाव के चिह्न देखने को मिलते हें। जिनकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार हम देख सकते हैं।

पुनर्जागरण काल	-	1850-1900
जागरण - सुधार काल	-	1900-1920
छायावाद	-	1920-1936
प्रगतिवाद	-	1936-1942
राष्ट्रीय-सांस्कृतिक	-	1935-1942
हालावाद	-	1935-1942
प्रयोगवाद	-	1943-1951
नयी कविता	-	1951-1959
अ- कविता	-	1960-1964
मोहभंग की कविता	-	1965-1975

जनवादी कविता	-	1975-1990
समकालीन कविता	-	1990 से अब तक

2.3.2 प्रमुख काव्य आन्दोलन की पृष्ठभूमि

जैसा कि पूर्व में आपने पढ़ा कि हिन्दी काव्य युग-संदर्भ के अनुसार परिवर्तित - परिवद्धित होता रहा है। हिन्दी कविता आन्दोलन के विभिन्न मोड़ इस बात की सूचना देते है। हर युग-समाज-सस्कृति अपनी ऐतिहासिक आवश्यकताओं की देन होतो हैं। इसीलिए अपने योगदान के पश्चात वे दूसरे स्वरूप को ग्रहण कर लेते है। यह मानव सभ्यता-संस्कृति की विकास प्रक्रिया है। हर युग-साहित्य अपने पिछले युग की प्रतिक्रिया में अस्तित्व ग्रहण करता है। यह परम्परा क्रमश: चलती रहती है। समाज-साहित्य का यह द्वान्द्वात्मक संबंध चलता रहता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने समाज-साहित्य की इस अन्योन्याश्रिता को लक्ष्य करके लिखा है - ‘‘जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्रवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह स्वाभाविक है कि जनता की चित्रवृत्ति में परिवर्तन होता के साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। ’’ (हिन्दी साहित्य का इतिहास) हम समझ सकते हैं कि किसी भी साहित्य-आन्दोलन की निर्मित में सामाजिक-ऐतिहासिक, धार्मिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मुख्य भूमिका निर्वाह करती है। आइए यहाँ हम हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ों की पृष्ठभूमि जानने का प्रयास करें। आदिकालीन साहित्य का निर्माण काल 7 वीं से चौदह वीं शताब्दी के बीच का है। यह समय भारतीय इतिहास में केंद्रीय सत्ता, केंद्रीय विचार, केंद्रीय साहित्य सिद्धान्त के अस्वीकार का युग हैं। हर्षवर्द्धन के पश्चात् कोई भी हिन्दू राज्य बड़े भू-भाग पर शासन नहीं कर सका। 11 वीं शताब्दी में मुस्लिम सत्ता के स्थापना ने स्थिति और विकट कर दी। क्योंकि अपने प्रारंभिक दिनों में उनका लक्ष्य मंदिरों - खजानों को लूटना ही था। दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन के पश्चात् कोई भी मौलिक दार्शनिक नहीं हुआ जो भारतीय चिंतन को नयी दिशा दे पाता। दर्शन के क्षेत्र में अराजकता व्याव्त होने लगी थी। बौद्ध दर्शन के विकृत रूप वज्रयान के तंत्रवाद ने शरीरिक सुख को ही केंद्रीयता प्रदान की। स्थापत्य शिल्प क्षेत्र में हिन्दू - बौद्ध धर्म की प्रतिस्पर्द्धा में खजुराहो-कोर्णाक के मंदिर में संभोग के दृश्य निर्मित किये जाने लगे थे। साहित्य-सिद्धान्त में वक्रोक्ति - रीति - अलंकार- रस - ध्वनि सिद्धान्त के बीच यह होड़ चल रही थी कि काव्य की आत्मा क्या है ? ऐसी स्थिति में आदिकालीन साहित्य निर्मित हुआ। स्वाभाविक था कि आदिकालीन साहित्य, अनिर्दिष्ट प्रवृत्ति, धारण करता। आदिकालीन साहित्य की विभिन्न काव्यधाराएँ जैसे रासो साहित्य, जैन साहित्य, सिद्ध-नाथ साहित्य, लौकिक साहित्य इत्यादि केंद्रीय स्तर पर केंद्रीय विचारधारा के अभाव की ही प्रतिध्वनियाँ है।

भक्तिकाल तक भारत में न केवल मुस्लिम सत्ता स्थापित हो चुकी थी, बल्कि हिन्दु-मुस्लिम कट्टरता सांस्कृतिक स्तर पर कम भी होने लगी थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि शासकों क

धरातल पर नहीं किन्तु सामान्य जनता राम-रहीम का एकता मान चुकी थी। भक्तिकालीन साहित्य में सूक्ष्म रूप से भारतीय समाज की विसंगतियाँ चित्रित हुई हैं। भक्त कवि एक ओर तो सांकेतिक ढंग से अपने समय को अभिव्यक्त कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर समाज की समस्या का रचनात्मक प्रत्याख्यान भी प्रस्तुत कर रहे थे। कबीर की भक्ति केवल आनन्द प्राप्त करने वाली भक्ति नहीं है, बल्कि पंडा-मुल्ला को फटकारने वाली समतावादी उक्ति भी है। जायसी केवल रहस्यवादी कवि नहीं है बल्कि उनकी कविता स्त्री पीड़ा एवं साम्पदायिकता से इतर वैकल्पिक समाज की आकांक्षा भी हैं। सूरका गो-लोक चित्रण, रासलीला सामंती जकड़न से मुक्ति का प्रयास ही तो है। उसी प्रकार तुलसीदास एक ओर जहाँ 'कवितावली' में अपने समसामयिक यथार्थ को निर्मित कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर रामराज्य की परिकल्पना भी कर रहे थे। कवितावली की पंक्ति - खेती न किसन को, भिखारी को न भीख । बनिस को बनी नहीं, चाकर करे न चाकरी । सीधमान सोंच कहै एक एकन सों, कहाँजाई का करी.......'' सामंती उत्पीड़न की पराकाष्ठा को ही तो व्यक्त कर रही हैं। मीरा का वियोग स्त्री -करूणा का ही तो प्रात्याख्यान है। रहीम के नीति वचन अनीति पूर्ण समाज की सांकेतिक अभिव्यक्ति ही हैं । कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि में साम्प्रदायिकता, सांमती घुटन एवं अनीतिपूर्ण समाज ही हैं, जिसकी प्रतिक्रिया में श्रेष्ठ साहित्य की रचना संभव हो पाई है।

रीतिकालीन साहित्य राजनीतिक स्थिरता के वातावरण में निर्मित हुआ हैं। रीतिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि में मुगलकालीन स्थिरता, संस्कृति -प्राकृत की श्रृंगारिक परम्परा, संस्कृति काव्यशास्त्र की लम्बी परम्परा, राजाओं की निश्चिंतता में उपभोग की ओर आकृष्ट होना, उइत्यादि वे कारण काम कर रहे थे, जिसने रीतिकालीन साहित्य को जन्म दिया। आधुनिक काल अपनी चेतना, मनोवृति , स्वरुप एवं प्रस्तुतीकरण में मध्यकालीन समाज से भिन्न समाज रहा है। मध्यकाल के केंद्र में आस्था, विश्वास, ईश्वर, मानवतावाद रहे हैं जबकि आधुनिकतावाद के केन्द्र में तर्क, मानववाद, बुद्धिवाद, व्यक्तिवाद, रहे हैं। वर्तमान बोध, स्वचेतना की वृत्ति एंव क्षिप्रता आधुनिक युग की पहचान है। कहने का तात्पर्य यह हैं कि मध्यकालीन मूल्य ईश्वर केंद्रित थे, जबकि आधुनिक समाज के मूल्य व्यक्ति और तर्क केंद्रित बने। यूरोपीय पुनर्जागरण से उत्पन्न वैचारिक - सामाजिक ऊर्जा, ज्ञान - विज्ञान के आलोक में नये सत्य के अन्वेषण ने आधुनिक साहित्य के उत्पन्न होने में प्रमुख भूमिका निभाई।

अभ्यास प्रश्न 1)

क) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास 2000 वर्ष का हैं।

2. इतिहास में विषय चयन प्रारंभिक कार्य है।

3. आदिकाल का समय 1000-1400 ई0 तक का हैं।

4. रीतिकाल को श्रृंगार काल भी कहा गया है।

5. भक्तिकाल के अवान्तर विभाजन नहीं किए गए हैं।

ख) नीचे दिए गए समूहों का सही मिलान कीजिए।

काव्य आन्दोलन	नामकरण
1. स्वच्छन्दवाद	पुनर्जागरण
2. रीतिकाल	छायावाद
3. भक्तिकाल	वीरगाथा काल
4. आदिकाल	धार्मिक पुनर्जागरण
5. आधुनिककाल	श्रृगांर काल

2.4 प्राचीन हिन्दी कविता

प्राचीन साहित्य या कहें कि हिंदी कविता को समझने के लिए स्पष्ट रूप से दो विभाजन करने का चलन रहा है। प्राचीन कविता एवं आधुनिक कविता। इस विभाजन का आधार यह है कि प्राचीन कविता और आधुनिक कविता के विषय निरूपण एवं प्रतिपादन में काफी अन्तर हैं। प्राचीन कविता के विषय निरूपण में श्रृंगार, भक्ति, नीति, वीरता जैसे तत्व रहे हैं वहीं आधुनिक कविता के विषय निरूपण में सामाजिक सुधार, सौन्दर्य, प्रकृति, विद्रोह, बौद्धिकता, सामाजिक समस्याओं पर विमर्श, वर्ग - वैषम्य का चित्रण जैसे तत्व रहे है। प्राचीन कविता के प्रतिपादन या प्रस्तुतीकरण का तरीका भी आधुनिक कविता से भिन्न रहा हैं। प्राचीन कविता दोहा, चौपाई, सोरठा, सवेया, घनाक्षरी, कवित्त, पद, जैसे छन्दों में रची गई है। स्पष्ट रूप से प्राचीन हिंदी कविता आधुनिक कविता से भिन्न रही है। प्राचीन कविता के अंतर्गत आदिकालीन एवं मध्यकालीन कविताओं को समाविष्ट करते हैं। आदिकालीन साहित्य पर आगे हम विस्तार से अध्ययन करेंगे। मध्यकालीन साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल एवं रीतिकाल की गणना की जाती है। यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि आदिकाल , मध्यकाल तथा आधुनिक काल की यह अवधारणा भारतीय इतिहास के प्राचीन काल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल से भिन्न हैं। डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा तथा गणपतिचन्द्र गुप्त जैसे अध्येताओं ने संपूर्ण हिंदी मध्यकाल को एक ही मनोवृति का माना हैं। वीरता -भक्ति - श्रंगार - नीति जैसे विषय भक्तिकाल एवं रीतिकाल दोनों में रहे हैं। हालाकि दोनों की मूल चेतना

में काफी अंतर है। प्राचीन कविता की मूलवर्ती चेतना को समझने के लिए हम क्रमशः आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल का अध्ययन करेंगे।

2.4.1 आदिकालीन कविता

'आदिकाल' हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल है। आदिकाल हिंदी साहित्य का वह काल है जिससे आगे आने वाले काव्यान्दोलनों के बीच अंतरनिहित हैं। भारतीय इतिहास में यह समय भयानक रूप से उथल -पुथल का समय हैं। भारतीय समाज वर्ग, जाति, धर्म के रूप में बँटा हुआ समाज है, जिसमें मुस्लिम आक्रमण ने और उथल - पुथल मचाई। आदिकालीन समाज को इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'स्वतोव्याघातों का युग' कहा गया है। यानी आघात कई प्रकार के हैं। भारतीय इतिहास का यह प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा। इसलिए हिंदी साहित्य में किसी एक निश्चित प्रवृत्ति का अभाव मिलता है।इसी को लक्ष्य कार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल को 'अर्निष्ट लोक प्रवृति ' का युग कहा है। आइए अब हम आदिकाल के काल विभाजन नामकरण एवं विभिन्न काव्य धाराओं का अध्ययन करेंगे।

2.4.1.1 काल - विभाजन एवं नामकरण

जैसा कि प्रारंभ में ही संकेत किया गया कि आदिकाल के कालविभाजन संबंधी दो स्पष्ट मत रहे हैं। कुछ लोग आदिकाल का प्रारंभ सातवीं शताब्दी से मानते हैं तो कुछ 11 वीं शताब्दी से। राहुल सांकृत्यायन, मिश्रबंधु, रामकुमार वर्मा, डॉ0 नगेन्द्र जैसे विद्वान आदिकाल का सातवीं शताब्दी से मानते हैं।' जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे विद्वान हिन्दी साहित्य को लगभग 1000 ई0 से मानते हैं। इस मत भिन्नता का कारण यह प्रश्न है कि अपभ्रंश साहित्य को हिंदी साहित्य में शामिल किया जाये या नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल यह जो मानते हैं कि अपभंश साहित्य की चेतना का आदिकालीन साहित्य पर प्रभाव पड़ा, लेकिन व्याकरणिक संरचना के स्तर पर वह भिन्न भाषा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल के समय को 993 ईसवी से 1318 ईसवी तक मानते हैं। लगभग 1000 ई0 के समय से हिंदी भाषा के चिह्न दिखने लगते हैं। आदिकाल के सीमांकन का प्रश्न भी विवादित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदिकाल की समाप्ति 1318 ईसवी मानते हैं, डॉ0 रमाशंकर शुक्ल 'रजाल' 1343 ई0, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी 1350 ई0, गणपति चंद्र गुप्त 1384 ई0, मिश्रबंधु 1387 ई0, तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी 1400 ई0, को आदिकाल की अंतिम तिथी निर्धारित करते हैं। विद्यापति का प्रश्न भी अनिर्णित है। विद्यापति का कालक्रम 1380 से 1460 ई0 के बीच निर्धारित किया गया है लेकिन प्रवृति क्रम में वे आदिकालीन मनोवृत्ति के ही ठहरते हैं। यानी कालक्रम से भक्तिकाल में और प्रवृति की दृष्टि से आदिकाल में। लगभग 1350 ई0 से भक्तिकालीन प्रवृत्ति का प्रारंभ होने लगता है। महाराष्ट्र के नामदेव की रचनाएँ इसी समय जनता के बीच प्रचलित होने लगती हैं। हिंदी साहित्य में लगभग 1400 ई0 से भक्तिकालीन रचनाएँ मिलने लगती हैं। अतः भारतीयता की दृष्टि

से 1350 तथा हिंदी भक्ति काव्य की दृष्टि से 1400 ई0 से भक्तिकाव्य शुरूआत हम मानते हैं। इसी दृष्टि से आदिकाल की अंतिम सीमा 1400 निर्धारित की जा सकती है।

आदिकाल का नामकरण पर्याप्त विवादित रहा है। आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति की तरह इस पर स्पष्ट रूप से कोई निर्णय नही हो पाया है। प्रत्येक आलोचक ने अपने दृष्टिकोण के अनुरूप आदिकाल के नामकरण का प्रयास किया है। यहाँ हम प्रमुख नामकरण का अध्ययन करेंगे।

नामकरण		**नामकरणकर्ता**
आदिकाल	-	हजारी प्रसाद द्विवेदी
वीरगाथा काल	-	रामचंद्रशुक्ल
बीजवपन काल	-	महावीर प्रसाद द्विवेदी
सिद्ध –सामंतकाल	-	राहुल सांकृत्यायन
चारण काल	-	ग्रियर्सन
संधिकाल एवं चारणकाल	-	रामकुमार वर्मा
अपभ्रंश काल	-	बच्चन सिंह
वीरकाल	-	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आदिकाल संबधी विभिन्न मतों में अन्तर का कारण यह है कि प्रत्येक विद्वान ने आदिकाल की प्रवृति को अपने दृष्टिकोण से निर्धारित किया हैं। किसी के लिए आदिकाल के केंद्र में रासो साहित्य है तो किसी के लिए सिद्ध तथा नाथ साहित्य । आइए अब हम आदिकाल के विभिन्न काव्यधाराओं का अवलोकन करें।

2.4.1.2 विभिन्न काव्य धाराएँ

आदिकालीन साहित्य, जैसा कि संकेत किया गया था, कि केंद्रीय प्रवृत्ति का निर्धारण करना कठिन कार्य है। आदिकालीन इतिहास एवं समाज की तरह आदिकालीन साहित्य की एक केंदीय प्रवृत्ति निर्धारित नहीं की जा सकती । आदिकाल का साहित्य कई धाराओं में विभक्त है, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से समझ सकते हैं।

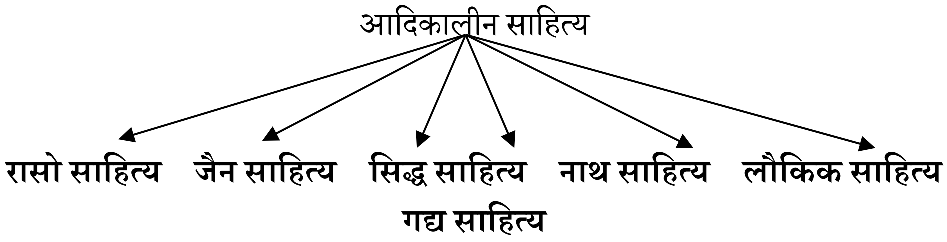

जैसा कि हमने आरेख के माध्यम से देखा कि आदिकालीन साहित्य के कई वर्गीकरण है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जहाँ रासो साहित्य को केंद्रीयता प्रदान करते हैं वहीं राहुल सांकृत्यायन सिद्ध साहित्य को। इसी प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी के लिए नाथ साहित्य, गणपतिचंद्र गुप्त के लिए जैन साहित्य तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के लिए रासों साहित्य केंद्रीय साहित्य हैं।

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) उचित शब्द का प्रयोग कर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. प्राचीन कविता का मुख्य तत्व .... रहा है।

2. आधुनिक कविता की मूलवर्ती प्रेरणा .... रही है।

3. प्राचीन कविता के अंतर्गत आदिकाल, भक्तिकाल एवं ....आते हैं।

4. संपूर्ण मध्यकाल की एक ही चेतना माना है- ....ने।

5. 'स्वतोव्याघातों का युग' ....को कहा गया है।

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. वीरगाथाकाल नामकरण भक्तिकाल का दूसरा नाम है।

2. आदिकाल नामकरण का श्रेय हजारी प्रसाद द्विवेदी को है।

3. आदिकाल की समय सीमा 1300 ई0 तक है।

4. बीजवपन काल नामकरण हजारी द्विवेदी का है।

5. 'सिद्ध सामन्त काल ' नामकरण राहुल सांकृत्यायन का है।

2.4.2 भक्ति कालीन कविता

सन् 1400 से 1650 तक के समय को हिंदी कविता में 'भक्तिकाव्य' कहा गया है। इस समय के बीच कविता की केंद्रीय प्रवृत्ति भक्ति निरूपण की रही है। अन्य प्रवृतियाँ भी चलती रही हैं लेकिन मुख्य प्रवृत्ति भक्ति की ही रही है। भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण काल' कहा गया है। विषय की गहनता एवं प्रस्तुतीकरण में यह साहित्य विश्व-साहित्य के समतुल्य है। भक्तिकान के काल विभाजन एवं नामकरण पर ज्यादा विवाद नहीं है। ग्रियर्जन ने इसे 'पन्द्रहवी' शती का धार्मिक पुनजगिरण' कहा है तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भक्तिकाल' । भक्तिकाल को रामचन्द्र शुक्ल ने 'निर्गुण' एवं 'समुण' में विभाजित किया है। निगुर्ण काव्य को पुनः शुक्ल जी ने ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेमाश्रयी शाखा में विभक्त किया है। उसी प्रकार सगुण काव्य को रामभक्ति शाखा तथा कृष्ण भक्ति शाखा में विभाजित किया गया हैं। रामचन्द्र शुक्ल का यह विभाजन स्थूल रूप में स्वीकार का लिया है।

शाखाओं के नामकरण में थोड़ा संशोधन अवश्य हुआ है। ज्ञानाश्रयी को डॉ रामकुमार वर्मा ने 'संत काव्य' तथा प्रेमाश्रयी को 'सूफी काव्य ' कहा है। भक्तिकाल संबंधी विभाजन को आपने पढ़ लिया । आइए अब हम निगुर्ण कविता तथा सगुण कविता पर संक्षेप में चर्चा करें।

2.4.2.1 निगुण कविता

हिन्दी निगुण कविता से तात्पर्य उस कविता से है जिसमे कविता में ईश्वर के निगुण स्वरूप को स्वीकार कर भक्तिपूर्ण रचनाएँ की है। निगुण का तात्पर्य यहाँ गुणहीनता से नहीं बल्कि निराकार से है। निगुण कविता के कवियों का मूल लक्ष्य समतावादी समाज की स्थापना करना रहा है। इसीलिए इस काव्यधारा में जाति-पाँति का खण्डन, कुरीतियों-बाह्यआडम्बरों का पर्दाफाश, सादगी - सच्चारिता पर बल, अंतस्साधना पर बल, रहस्यावाद एवं प्रेम पर बहुत बल दिया है। यह काव्यधारा ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को ज्यादा महत्व देती है। निर्गुण काव्यधारा के दो विभाग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है।

यहाँ आइए हम ज्ञानमार्गी काव्यधारा एवं प्रेममार्गी शाखा का अंतर समझ लें । जिस कविताधारा में ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ज्ञान को आधार बनाया गया, उसे 'ज्ञानमार्गी शाखा'कहा गया है। यह नामकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा इस काव्यधारा को 'संत काव्य' कहते हैं क्योंकि इस काव्यधारा में ईश्वर के सत् रूपी साक्षात्कार की अनुभूति की बात कही गई है। ज्ञानमार्गी शाखा महाराष्ट्र से होती हुई हिन्दी में आई। ज्ञानदेव-नामदेव की इस निर्गुण काव्यधारा की परम्परा हिन्दी मे कबीर के माध्यम से प्रकट हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निर्गुण कविता के प्रवर्त्तन का श्रेय नामदेव को दिया है किन्तु निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास जी को माना है। इस शाखा में कबीरदास, नानक, पीपा, धन्ना, मलूकदास, सुन्दरदास, रैदास, दादू, रज्जब,

सहजोबाई, सुरसरि इत्यादि की गणना की जाती है। कबीरदास जी इस काव्यधारा के सबसे बड़े कवि है। कबीरदास पर वैस्णवों के प्रपत्तिवाद, सूफियों के प्रेमतत्व, मुस्लिम एकेश्वरवाद, शंकाराचार्य के अद्वैतवाद, नाथों के हठयोग का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 'संतो आई ज्ञान की आँधी रे ......' कहकर कबीर दास ने ज्ञान के माध्यम से सत्य तक पहुँचने का मार्ग दिखाया है। हाँलाकि वही कबीर शास्त्र का खंडन भी करते है, जब वे कहते है- '' पोथि-पढ़ि-पढ़ि जग मुबा पंडित भया न कोय।।'' वस्तुतः निर्गुण काव्यधारा सम्पूर्ण बाह्याडम्बरों का खण्डन कर अन्तः सत्य पर बदल देने वाला कविता आन्दोलन था।

प्रेममार्गी निर्गुण काव्यधारा असाम्प्रदायिक आग्रह पर निर्मित कविता आन्दोलन था। प्रेममार्गी नामकरण आचार्य रामचनद्र का किया हुआ है। इस कविताधारा में ईश्वर प्राप्त करने के लिए प्रेम को आधार बनाया गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा इसें 'सूफी काव्य ' कहते हैं, क्योकि इस काव्यधारा के अधिकांश रचनाकार मुस्लिम इस काव्यधारा के अधिकांश रचनाकार मुस्लिम सुफी कवि थे। इस काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी थे। अन्य कवियों में कुतुबन, मुझन, शेख नबी, उसमान, नूर मुहम्मद आदि थे।

इस कविताधारा में ज्यादातर प्रबन्ध काव्यों की रचनाएँ हुई है। भाषा अवधी है। जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि प्रेममार्गी काव्य का मूल स्वरूप असाम्प्रदायिक है क्योंकि इन्होंने अपने प्रबन्ध काव्यों के लिए कहानियाँ हिन्दू घरों की चुनी हैं। सारे काव्य फारसी की मसनवी शैली पर लिखे गये हैं। प्रेममार्गी शाखा की कविता भावात्मक रहस्यवाद को लिए हुए है। खंडन-मण्डन से दूर ईश्वर की सरस भक्ति प्रतिपादित करना इनका मुख्य लक्ष्य है।

भक्तिकाव्य का दूसरा विभाजन सगुण काव्य धारा के रूप में किया गया है। सगुण को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है। कृष्णभक्ति शाखा और रामभक्ति शाखा। कृष्णभक्ति शाखा में कृष्ण की ऐकान्तिक भक्ति पर बल दिया गया है, जबकि रामभक्ति शाखा मे मुख्य बल रामभक्ति पर हैं। कृष्णभक्ति शाखा मे प्रेम पर ज्यादा बल है। कृष्ण के अतिरिक्त कवियों ने किसी अन्य देवता की आराधना नहीं की है। प्रबन्ध का अभाव है तथा भाषा ब्रजभाषा है। जबकि रामभक्ति शाखा। मर्यादावादी, समन्वयवादी, काव्य आन्दोलन था। इस काव्यधारा में ज्ञान-भक्ति-मर्यादा पर बल है। भाषा ब्रज और अवधी दोनों रही है तथा प्रबन्ध काव्य ज्यादातर लिखे गये है। कृष्णभक्ति शाखा मे सूरदास सबसे बड़े कवि रहे है। सूरदास के अतिरिक्त कुंभनदास, नंददास, मीरा तथा रसखान जैसे कड़े कवि इस काव्यधारा में रहे हैं। रामभक्ति शाखा में तुलसीदास, नाभादास, रामानन्द जैसे कवि हुए हैं।

2.4.3 रीतिकालीन कविता

रीतिकालीन साहित्य 1650 से 1850 ईसवी के बीच की के समय की कविता है। यह समय हिन्दी इतिहास में मुगल काल के नाम से प्रसिद्ध रहा है। रीतिकालीन कविता एक विशेष प्रकार की कविता रही है। रीति का तात्पर्य पद्धति से है। अर्थात् रचना की एक विशेष पद्धति। यह काव्यधारा तीन पद्धतियों विभक्त है, जिसे हम एक आरेख के माध्यम से समझ सकते है।

2.4.3.1 विभिन्न वर्गीकरण

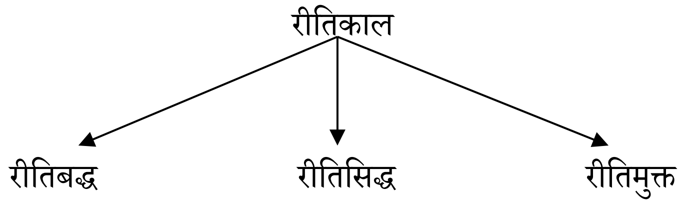

रीतिबद्ध से तात्पर्य है काव्य-लक्षण की विशेष पद्धति पर रचना करने वाले रचनाकार। अर्थात् पहली पंक्ति में लक्षण लिखना। फिर दूसरी पंक्ति में उदाहरणों की रचना करना। चिंतामणि, केशव, जसवन्तसिंह, भूषण, मतिराम, जैसे कवि इसी धारा के अंतर्गत आते हैं। रीतिसिद्ध से तात्पर्य है जिन कवियों ने रीतिलक्षणों को ध्यान में रखकर उदाहरणों की रचना की हो। बिहारी इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा को स्वच्छन्दतावादी धारा भी कहा गया है। इस धारा के कवियों ने लक्षण-उदाहरणों की बँधी परिपाटी से हटकर स्वच्छन्द रीति से प्रेम की कविताएँ लिखी हैं, इसीलिए इसे रीतिमुक्त काव्यधारा कहा गया है। इस धारा में धनान्नद, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव इत्यादि कवि हुए हैं।

वस्तुतः रीतिकालीन कविता ऐसी कविता रही है जिसमें रीतिपद्धति, श्रृंगारिकता, आलंकारिकता, दरबारीपन जैसी पद्धतियाँ रही है। नायिकाओं के अंग-प्रत्यंग का वर्णन करना (जिसे 'नखशिख वर्णन' कहा गया है) इस काल के कवियों का मुख्य लक्ष्य रहा है। प्रेम के परकीया स्वरूप का ही चित्रण इस काल के कवियों का लक्ष्य रहा है।

2.4.3.2 नामकरण

रीतिकालीन कविता के कई नामकरण आलोचकों द्वारा किये गये हैं, जिसे हम इस तालिका के माध्यम से देख सकते हैं

नामकरण	**आलोचक**
रीतिकाल	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
रीतिकाव्य	ग्रियर्सन

श्रृंगारकाल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
कलाकाल	रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
अलंकृत काल	मिश्रबन्धु
दरबारीकाल	राहुल सांकृत्यायन

जैसा कि नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन कविता का वर्ण्य विषय आलंकारिकता श्रृंगार, रीतिनिरूपण, दरबारीपन रहा है।

2.4.3.3 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हम पूर्व में अध्ययन का चुके हैं कि भक्तिकाव्य के ठीक विपरीत रीतिकालीन साहित्य का विकास हुआ। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्ति रीतिनिरूपण की रही है । प्रश्न यह है कि रीतिरिरूपण क्या है? 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य रचना की विशेष पद्धति को रीति-निरूपण कहा है। काव्य-रचना की विशेष पद्धति क्या है ? रीतिकालीन कवि मूलतः आचार्य कवि थे, अतः रचना करते समय वह सिद्धान्त ओर उदाहरण दोनों की रचना करते थे। यानी पहली पंक्ति में लक्षण और दूसरी पंक्ति मे उदाहदण । यही है रीति-निरूपण, जिसको लक्ष्य करके आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग को 'रीतिकाल ' कहा है। रस की दृष्टि से इस सुग में 'श्रृंगार' की बहुलता रही है, जिसक कारण इस युग को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र नें 'श्रृंगार काल' कहा है। श्रृंगार के साथ ही इस युग में अलंकारों के प्रयोग की भी बहुलता रही है जिसके कारण मिश्रबंधुओं नं इसे 'अलंकृत काल' तथा रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने 'कलाकाल' कहा है। इसी तरह 'दरबारीपन' की प्रवृत्ति समूची रीतिकविता के मूल में है। राहुल साकृत्यायान एवं रामविलास शर्मा जैसे विद्वान रीतिकालीन कविता की मूल प्रवृत्ति दरबारीपल ही मानते हैं। जाहिर है ऐसी कविता में कामकला, अलंकाण, अश्लीलता, दरबारीपन, वर्ण्य-विषय का संकोच, अलंकारों की अतिशयता जैसे तत्व होंगे ही। लेकिन एक ऐसा तत्व है जिसके कारण रीतिकालीन कविता का अपना महत्त्व या मूल्य है। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि "रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है। '' तुलसी की घोषणा है- 'कवि न होउँ नहि' चतुर कहावउँ । मति अनुरूप राम गुन गावउँ । वहीं आचार्य भिखारीदास का कहना है -

"आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई न तौ,
राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानो है।''

इसी प्रकार कविता के धरातल पर रीतिकालीन कविता ने पहली बार हिन्दी साहित्य में धार्मिकता से हटकर शुद्ध कविता के धरातल पर काव्य रचना की है। डॉ. नगेन्द्र ने कवित्व के आधार पर रीतिकालीन कविता की प्रशंसा की है।

अभ्यास प्रश्न 3)

(क) नीचे दिये गए समूहों का सही मिलान कीजिए।

	काव्यान्दोलन	रचनाकार
1.	ज्ञानाश्रयी शाखा	नागार्जुन
2.	कृष्णभक्ति शाखा	तुलसीदास
3.	रामभक्ति शाखा	मीराबाई
4.	नयी कविता	राजकमल चौधरी
5.	प्रगतिवाद	सुन्दरदास
5.	मोहभंग की कविता	शमशेर

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. भक्तिकाल का वैज्ञानिक विभाजन सबसे पहले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया।

2. 'सत काव्य' नामकरण का श्रेय रामकुमार वर्मा को है।

3. 'ढाई आखर प्रेम के पढ़ै सो पंडित होई' पंक्ति के लेखक कबीरदास जी है।

4. प्रेममार्गी शाखा के ज्यादातर ग्रन्थ प्रबन्धकाव्य में लिखे गये है।

5. रीतिसिद्ध परम्परा में केशवदास आते हैं।

2.5 आधुनिक हिन्दी कविताः स्वतंत्रता पूर्व

हिन्दी साहित्य का इतिहास वैसे तो लगभग वर्षो से पुराना रहा है किन्तु व्यापकता, विविधता एवं प्रवृत्तियों की दृष्टि से जितना वैविध्य एवं विस्तार आधुनिक हिन्दी कविता का हुआ है, उतना प्राचीन हिन्दी कविता का नहीं रहा है। वैविध्यता का उदाहरण है- इस समय पैदा हुए कई काव्यान्दोलन। सुविधा की दृष्टि से हम आधुनिक हिन्दी कविता को मुख्यतः कई कालों में

विभाजित करते हैं। आइए हम आधुनिक कविता के हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों को काल विभाजन के माध्यम से समझें।

2.5.1 काल - विभाजन

पिछली इकाइयों में संकेत किया गया है कि आधुनिक काल में स्वचेतनता की प्रवृत्ति के कारण सामाजिक परिवर्तन ज्यादा तीव्र गति से हुए। इसे हम हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन के संदर्भ में ज्यादा स्पष्ट ढंग से समझ सकते हैं। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास ' पुस्तक में स्वचेतन वृत्ति को व्यावहारिक उदाहरण के माध्यम से समझाया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार हिन्दी साहित्य स्वचेतन वृत्ति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसे हम इस प्राकर समझ सकते है।

1. आदिकाल - 400 वर्ष
2. भक्तिकाल - 250 वर्ष
3. रीतिकाल - 200 वर्ष
4. आधुनिक काल - कई छोटे-छोटे आन्दोलन

तलिका द्वारा हम देख सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के कालों का वर्ष अन्तर क्रमशः कम हुआ है। विकास की गति प्रक्रिया में, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच निरन्तर संपर्क की स्थिति में अनुभव में परिवर्तन की स्थिति जल्दी आती है। आधुनिक काल के काल विभाजन की क्षिप्रता की स्थिति समझने के पश्चात् आइए अब हम स्वतंत्रतापूर्व के आधुनिक कविता के काल विभाजन की चर्चा करें।

आधुनिक काल का प्रारंभ कब से माना जाये। यह प्रश्न हिंदी आलोचना में उठता रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार आधुनिक काल का प्रारंभ 1832 ई0 के बाद माना जा सकता है। डॉ0 रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' के लिए यह समय 1842 के बाद हैं। डॉ0 नगेन्द्र के लिए आधुनिक काल 1843 से प्रारंभ होता है, किन्तु इसकी वास्तविक शुरूआत 1868 ई0 से होती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा0 बच्चन सिंह जैसे इतिहासकार आधुनिक काल का प्रारंभ 1850 ई0 से मानते है, जो सुविधाजनक आधार पर तय किया जाता है। डॉ0 रामविलास शर्मा 1857 ई0 की क्रान्ति के आधार पर आधुनिक काल का प्रारंभ 1857 ई0 मानते है। ज्यादातर आलोचकों ने 1850 ई0 से आधुनिक काल का प्रारंभ मानते है। 1850 ई0 भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म काल भी है, इसलिए इस बिन्दु से आधुनिक काल का प्रारंभ मान सकते हैं।

2.5.2 नामकरण

स्वतंत्रता पूर्व आधुनिक हिन्दी कविता के नामकरण से संदर्भ में जब हम चर्चा करते हैं कि नामकरण में साहित्यि प्रवृत्ति, व्यक्ति-महत्व एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति सभी आधार बनें हैं।

भारतेन्दु कालीन कविता (1850-1900 ई.) के नामकरण पर हम विचार करें तो हम देखते हैं कि इस काल के चार नामकरण मुख्य रूप से मिलतें हैं - भारतेन्दु काल, पुनर्जागरण काल-नवजागरण एवं गद्यकाल। कविता की दृष्टि से मुख्यत तीन नामों को ही हम मान सकते हैं। इसमें से भी प्रथम नामकरण व्यक्ति केंद्रित है और अन्य नाम सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों पर केंद्रित। द्विवेदी युग (1900 - 1920 ई.) नामकरण महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व पर आधारित हैं। इस युग के अन्य नाम सुधार काल एवं 'इतिवृत्तात्मक कविता' मिलते हैं, जो साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर विकसित हुए है। 'छायावाद' नामकरण तो शुद्ध रूप से साहित्यिक धरातल पर विकसित हुआ हुआ है, जबकि इसी काव्यधारा का अन्य नाम 'स्वच्छन्दावाद' में सामाजिक-सास्कृतिक एवं साहित्यिक सभी आधार मिले हुए हैं। 'प्रगतिवाद' नामकरण के पीछे राजीतिक एवं सामाजिक आधार है, वहीं 'प्रयोगवाद' नामकरण साहित्य के आधार पर विकसित हुआ है। 'हालावाद' नामकरण के पीछे भी साहित्यिक प्रवृत्ति ही काम कर रही है, जबकि राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' सामाजिक - राजनीतिक- सांस्कृतिक आधार पर विकसित हुई है, अतः उसका नामकरण भी उसी का प्रतिनिधित्व करता है।

2.5.3 प्रमुख काव्यान्दोलन

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी कविता के कई महत्ववूर्ण काव्यान्दोलन रहे है जिसने हिन्दी कविता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यहाँ हम स्वतंत्रता पूर्व प्रमुख काव्यान्दोलन को एक तालिका के माध्यम से देख सकते हैं-

पुनर्जागरण काल	-	1850-1900
जागरण - सुधार काल	-	1900-1920
छायावाद	-	1920-1936
प्रगतिवाद	-	1936-1942
राष्ट्रीय-सांस्कृतिक	-	1935-1942
हालावाद	-	1935-1942
प्रयोगवाद	-	1943-1951

2.6 आधुनिक हिन्दी कविता: स्वतंत्रता पश्चात्

आधुनिक शब्दका जिस अर्थो में हम आज प्रयोग करते है, वह स्वतंत्रता पश्चात् की कविताओं के संदर्भ में ज्यादा सार्थकता रखता है। 'आधुनिक' शब्द की व्यंजना उस स्थिति के लिए ज्यादा सार्थक है, जिसमें विडम्बना, विसंगति, संत्रास एवं अंतर्विरोध जैसी स्थितियाँ होती हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के स्वतंत्रता पश्चात् की स्थितियाँ बहुत कुछ आधुनिक बोध से युक्त रही है। स्वतंत्रता पश्चात् या पूर्व में कोई स्पष्ट विभाजक रेखा खीचना बहुत कठिन कार्य है, क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्ति न तो एकाएक प्रारम्भ होती है और न समाप्त होती हैं स्वतंत्रता एक केंद्रीय बिन्द इसलिए बनता है क्योंकि यह आगे की कविता के लिए ऊर्जा का काम करता है। स्वतंत्रता पूर्व की कविता में एक छटपटाहट है, जागरण का स्वर है, आदर्श है वहीं स्वातंत्रयोत्तर कविता में यथथि - बोध हैं। विसंगति-बोध है और इसे दूर करने का उपक्रम है। शायद इसी कारण स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात् का यह सुविधाजनक विभाजन किया जाता है।

2.5.1 काल विभाजन - नामकरण का औचित्य

स्वातंत्रयोत्तर कालीन हिन्दी कविता के काल-विभाजन एवं नामकरण के औचित्य पर हम विचार करें इससे पूर्व आइये हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के काल-विभाजन एवं नामकरण को तथ्यात्मक रूप में देखें -

नयी कविता	-	1951-1959
अ- कविता	-	1960-1964
मोहभंग की कविता	-	1965-1975
जनवादी कविता	-	1975-1990
समकालीन कविता	-	1990 से अब तक

पूर्व में हमने अध्ययन किया कि काल-विभाजन एक सुविधाजनक मामला है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में या इतिहास में काल-विभाजन के माध्यम से इतिहासकार संपूर्ण सामग्री को व्यवस्था प्रदान करता है। इसलिए काल-वर्ष को हम इसी रूप में देखें। जहाँ तक नामकरण का प्रश्न है - 'नयी कविता' 'विमर्श केंद्रित कविता' , 'अकविता' इत्यादि साहित्यिक प्रवृत्ति के नामकरण को छोड़ दें तो लगभग सारे नाम राजनीतिक-सामाजिक-कालगंत सीमा के आधार पर तय हुए हैं। जनवादी कविता (राजनीति प्रेरित) साठोत्तरी कविता - (कालगत आधार), प्रथम दशक की कविता (कालगत आधार) उत्तर - आधुनिकता (सामाजिक-सांस्कृतिक आधार) नामकरण इसी आधार पर विकसित हुए हैं।

2.5.2 प्रमुख काव्यान्दोलन: प्रवृत्ति

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के बारे में आप अगली इकाई में विस्तार से अध्ययन करेंगे। यहाँ हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का संक्षेप में अध्ययन करेगें। पूर्व में आपने देखा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कई काव्य आन्दोलन चलें। हर आन्दोलन अपने अंतर्निहित विशेषताओं के कारण अन्य काव्यान्दोलनों से भिन्न था। आइए हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख आन्दोलनों की प्रवृत्तियों का अध्ययन करें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के चार वर्ष पश्चात् (1951 ई.) से स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी का आरम्भ होता है। ऐसा क्यों ? वस्तुतः सन् 47 के बाद तक प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ चलती रहीं। सन् 47 में 'प्रतीक' पत्रिका के प्रकाशन के बाद से तो 'प्रयोगवाद' का आन्दोलन और तीव्र हुआ। द्वितीय तारसप्तक के प्रकाशन से कविता में वस्तु एवं रूप सम्बन्धी सन्तुलन की स्थिति आई। 'नयी कविता' आन्दोलन की प्रमुख प्रवृत्ति बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं -

- लघु मानव की प्रतिष्ठा
- मिथकों का आधुनिक संदर्भों में प्रयोग
- बौद्धिकता
- आधुनिक संदर्भों का प्रयोग

साठोत्तरी कविता में नकारवादी प्रवृत्तियों की ही अधिकता रही। प्रयोग के अत्यधिक आग्रह, नकारवादी दर्शन, विद्रोह की अतिशयता, काम-कुठां की अभिव्यक्ति इस आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्ति थी। मोहभंग की कविता के मूल में व्यवस्था विरोध की भावना थी। इस आन्दोलन में भाषा चुस्त, मुहावरेदार एवं व्यंग्यात्मक बनी। जनवादी कविता में वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ ही लोकतत्व की प्रधानता रही। 'उत्तर-आधुनिक कविता' में सिद्धान्त-प्रतिबद्धता की बजाय 'अनुपस्थित की तलाश' पर बल दिया गया। समकालीन कविता में समकालीनता का तो आग्रह है किन्तु व्यक्तित्व-निर्माण का नितान्त अभाव है।

अभ्यास प्रश्न) 4

क) कोष्ठक में दिये गये शब्दों मे से सही शब्द का चुनाव कर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास लगभग .... वर्ष पुराना है। (1000/2000/3000)

2. भक्तिकाल का समय .... है। (1350-1650/250-1750/1500-1800)

3. डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिक काल का आरम्भ .... से माना है। (1870/1868/1850)

4. छायावाद का अन्य नाम .... है। (प्रगतिवाद/प्रयोगवाद/स्वच्छन्दतावाद)

5. हालावाद' के प्रवर्त्तक .... है। (नागार्जुन/हरिवंशराय बच्चन/जयशंकर प्रसाद)

2.7 सारांश

- साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन एवं नामकरण बहुत महत्व रखता है। काल-विभाजन से जहाँ सम्पूर्ण साहित्य को क्रमबद्धता मिलती है वहीं नामकरण से उस आन्दोलन की प्रवृत्ति का बोध होता है।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन एवं नामकरण के संदर्भ में यह तथ्य ध्यान रखने योग्य है कि इसमें स्वचेतन वृत्ति के कारण क्षिप्रता की वृत्ति मिलती है। यानी बदलाव की प्रक्रिया पहले से तेज हुई है।
- आदिकालीन कविता 'अर्निदिष्ट प्रवृत्ति' की कविता है। यह कई काव्यधाराओं को अपने मे समेठे हुए है। रासो काव्य, सिद्ध-नाथ, जैन काव्य, लौकिक काव्य इत्यादि इसकी विभिन्न अर्थ छायाएँ है।
- भक्तिकाल की कविता राजाश्रय से दूर लोक के बीच लिखी गई है। लोक ऊर्जा के काव्यात्मक उत्कर्ष के कारण ही इसे हिन्दी कविता का 'स्वर्णकाल' कहा गया है। निर्गुण -जगुन जैसे विभाजन के बावजूद भक्ति एवं लोकधर्मिता सम्पूर्ण भक्तिकावय के केंद्र में है।
- रीतिकालीन साहित्य मूलतः दरबारीचेतना और सामंती भोग-विलास की छाया से निसृत काव्य है।
- आधुनिक कालीन कविता पुनर्जागरण कालीन चेतना के विकास क्रम से संचालित है।

2.8 शब्दावली

1. पुनर्जागरण - दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक ऊर्जा

2. जातीय चेतना - गतिशील समाज की अर्ध्वगामी चेतना

3. सामन्तवाद - ऐसी व्यवस्था, जिसमें राजा और सामन्त निर्णायक भूमिका में रहते हैं

4. प्रगतिशीलता - समाज को आगे बढ़ाने वाली चेतना

5. द्वन्द्वात्मकता - कार्लमार्क्स का सिद्धान्त, दो वस्तुओं की टकराहट से आगे बढ़ने की

प्रक्रिया

6. वज्रयान - बौद्ध धर्म का विकृत रूप , जिसमें तंत्र-चमत्कार की बहुलता है।
7. परिकल्पना - संभावनापूर्ण कल्पना
8. मानवतावाद - मानव केंद्रित दर्शन
9. स्वतोव्याघात - किसी भी समाज के अन्दर परस्पर विरोधी स्थितियाँ का होना।
10. अर्निदिष्ट प्रवृत्ति - किसी भी स्पष्ट प्रवृत्ति का न पाया जाना।
11. साम्प्रदायिकता - दूसरे धर्म के प्रति विद्वेष की भावना
12. रहस्यवाद - परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना
13. परकीया - दूसरे स्त्री/पुरूष के प्रति लालसा या संयोग
14. आधुनिकता - वर्तमानकालिक चेतना
15. स्वचेतन वृत्ति - स्व् के प्रति जागरूकता की भावना
16. इतिवृत्तात्मकता - स्थूलता, द्विवेदीयुगीन कविता की प्रवृत्ति

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

क) 1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

ख)1 – छायावाद 2 - श्रंगार काल 3 - धार्मिक पुनर्जागरण

4 – वीरगाथाकाल 5 - पुनर्जागरण

अभ्यास प्रश्न 2

(क) 1- भक्ति-श्रृंगार 2- पुनर्जागरण 3- रीतिकाल

4- गणपतिचन्द्र गुप्त 5- आदिकाल

(ख) 1. असत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3)(क)

1- सुन्दरदास 2- मीराबाई 3- तुलसीदास

4- शमशेर 5- नागार्जुन 6- राजकमल चौधरी

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 4)

1- 1000 वर्ष 2- 1350-1650 ई 3- 1868

4- स्वच्छन्दतावाद 5- हरिवंशराय बच्चन

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. डॉ. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नैशनल पब्लिशिंग हाउस।

5. (सं)डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नैशनल पब्लिशिंग हाउस।

2.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री

1. वर्मा, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1,2।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास।

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हिन्दी कविता के कालविभाजन एवं नामकरण पर आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए।

2. प्राचीन हिन्दी कविता एवं आधुनिक हिंदी कविता के मूलभूत अन्तर पर विस्तार से विचार कीजिए।

इकाई 3हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य
3.3.1 काल विभाजन एवं नामकरण
3.3.2 मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर
3.3.3 आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठ भूमि
3.3.3.1 राजतीतिक परिस्थिति
3.3.3.2 आर्थिक परिस्थिति
3.3.3.3 धार्मिक परिस्थिति
3.3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति
3.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ
3.4.1 राष्ट्रीयता
3.4.2 समाज- सुधार
3.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन
3.4.4 विमर्श केंद्रीयता
3.5 आधुनिक हिन्दी पद्य का महत्व
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत आपने आधुनिकता का अर्थ एवं उसकी अवधारणा, आधुनिकता की पृष्ठभूमि, आधुनिकता का सीमांकन, आधुनिकता संम्बन्धी मतवैभिन्नता, आधुनिकता के आधार विचारक, आधुनिकता और राष्ट्रीय चेतना तथा आधुनिकता और साहित्य का अध्ययन किया। इस खण्ड के अन्तर्गत आप आधुनिक एवं समकालीन कविता का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की यह तीसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप आधुनिक हिन्दी कविता से परिचित

होंगे। इस इकाई में आप आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों से परिचित होंगे। इसके अतिरिक्त आप यह भी जान सकेंगे कि आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ कौन से रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर पद्य (कविता) की दृष्टि से विचार करने पर सबसे पहले यह बात स्मरण रखनी चाहिए की आधुनिकता का प्रवेश गद्य के माध्यम से हुआ, कविता तो बहुत समय तक पुराने ढंग की चलती रही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसीलिए आधुनिक काल को 'गद्य काल' कहा है। मध्यकालीन प्रवृत्ति के केन्द्र में भक्ति, आस्था विश्वास, नीति और श्रृंगार रहे हैं, जबकि आधुनिक प्रवृत्ति के केन्द्र में तर्क, विचार, वर्तमान बोध रहे हैं। विचार मूलतः गद्य में ही हो सकता है, कविता में नहीं। कविता मूलतः भाव को लेकर चलती है, संवेदना को लेकर चलती है, इसीलिए कम शब्दों में बिम्बात्मक रूप में उसे भावना का प्रसरण करना होता है। अतः कविता विचार पैदा करने का कार्य नहीं करती । विचार पैदा करने का कार्य गद्य की केन्द्रीय विशेषता है। आधुनिक काल का प्रवर्तन इसीलिए गद्य के माध्यम से हुआ। उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि सारे ज्ञान-विज्ञान, कानून, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र के विषय, गणित गद्य में ही लिखे जाते हैं, पद्य में नहीं। यह गद्य और पद्य का मूलभूत अन्तर है। हिन्दी कविता के प्रारम्भ की दृष्टि से विचार करें तो खडी़ बोली हिन्दी कविता का इतिहास 'भारतेन्दु युग(1850) से होता है। लेकिन इस युग में कविता में ब्रजभाषा की ही प्रधानता रही। कविता का विषय भी भक्ति, नीति और श्रृंगार बने रहे। खडी़ बोली कविता का प्रयास भारतेन्दु हरिचन्द्र ने किया, लेकिन उनका मूल चित्त भक्ति-नीति और श्रृंगार का ही था। 'द्विवेदी युग' (महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्मान में इसे 'द्विवेदी युग' 1900-1920) में कविता खडी़ बोली हिन्दी में प्रारम्भ हुई, थोडी़ बहुत आधुनिक भी हुई। इसके पश्चात् छायावाद युग, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता मोहभंग की कविता, उत्तर-आधुनिक कविता जैसे कई मोडों से हिन्दी कविता गुजरी। हर युग की कविता अपने स्वरूप एवं प्रवृत्ति में अलग है। पिछली इकाईयों में आपने हिन्दी कविता और आधुनिकता पर विवेचन किया। इस इकाई में आप हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ों का विश्लेषण करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आगामी चार इाकइयों की पृष्ठ भूमि भी स्पष्ट हो सकेगी। इस इकाई के अन्तर्गत हम हिन्दी कविता के नामकरण, काल सीमा निर्धारण, आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों को जानने से पूर्व हम आधुनिक साहित्य पद्य के काल विभाजन एवं नामकरण को जान लें।

3.2 उद्देश्य

आधुनिक एवं समकालीन कविता का यह पहला खण्ड है। यह खण्ड की तीसरी इकाई है। इस इकाई में आधुनिक हिन्दी कविता के स्परूप एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया हैं इसके पूर्व आपने आधुनिकता की अवधारणा, आधुनिकता के आधार विचारक एवं दर्शन, आधुनिकता की पृष्ठ भूमि तथा आधुनिकता के साहित्यिक संन्दर्भों का विस्तृत, गहन एवं तर्कपूर्ण अध्ययन पिछली

इकाई में किया है। इस इकाई में आप आधुनिक कविता की मूलभूत विशेषता से अवगत हो सकेंगे। आधुनिकता के विविध सन्दर्भों को प्रस्तुत करती इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- आधुनिक हिन्दी कविता के काल-विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- मध्यकालीन कविता एव खडी बोली कविता का मूल भूत अन्तर समझ सकेंगे।
- आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक कविता के पारिभाषिक शब्दों एवं मुहावरों से परिचित हो सकेंगे।

3.3 हिन्दी साहित्य का आधुनिक कालः पद्य

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, विशेषतय: पद्य हिन्दी साहित्य का केन्द्र बिन्दु रहा है। प्रायः युग कविता के नामकरण पर ही रहे हैं। आधुनिक हिन्दी कविता का विकास क्रमशः हुआ लेकिन वह अपने युग-समाज की सार्थक अभिव्यक्ति सिद्ध हुई है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का ख़ासतौर से पद्य का स्वरूप स्पष्ट हो सके, इसके लिए आवश्यक हैं कि हम आधुनिक हिन्दी कविता के नामकरण और काल विभाजन को जान लें।

3.3.1 काल विभाजन एवं नामकरण

आधुनिक हिन्दी साहित्य के पद्य का काल-विभाजन एवं नामकरण की समस्या उलझी हुई है। आधुनिक साहितय का प्रारम्भ जहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संवत् 1900 (ईसवी में 1843, क्योंकि संवत् ईसवी से 57 वर्ष ज्यादा होता है) से मानते हैं, वहीं डॉ0 नगेन्द्र 1868 ईसवी से। रामविलास शर्मा के लिए केन्द्रीय बिन्दु 1857 की क्रान्ति है, वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी 1850 ईसवीं को सुविधाजनक तरीके से आधुनिकता का केन्द्र बिन्दु निर्धारित करते हैं। मिश्रबन्धुओं ने 1833 से 1868 तक के समय को परिवर्तनकाल कहते हैं वही डॉ0 नगेन्द्र 1843 से 1868 ईसवी तक के समय को 'पृष्ठभूमि काल'। तात्पर्य यह कि 1843 से भारतेन्दु के रचनाकाल (1868 ईसवीं) तक के समय में आधुनिकता का वैचारिक आधार स्पष्ट हुआ, अतः भारतेन्दु काल से हम आधुनिक कविता का प्रारम्भ मान सकते हैं। लकिन इस सन्दर्भ में हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि 1850 या 1868 से 1900 तक को समय पद्य की दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है, बल्कि गद्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पद्य की दृष्टि से तो 1900 ईसवी के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक काल का प्रारम्भ 1900 ईसवी से माना है, जिसे हम पद्य के सन्दर्भ में निर्धारित कर सकते है। अतः हम चाहें तो 1850 से 1900 ईसवी तक का समय आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि के रूप में रेखांकित कर सकते हैं। संक्षेप में हम यहाँ आधुनिक पद्य के विभिन्न मोड़ों की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं।

1850- 1900　(पृष्ठभूमि काल)
1900- 1918　(द्विवेदी युग)
1918-1936　(छायावाद युग)
1936- 1943　(प्रगतिवाद)
1943- 1951　(प्रयोगवाद)
1951- 1959　(नयी कविता)
1960- 1964　(अ- कविता)
1965- 1975　(मोहभंग की कविता)
1975-1990　(जनवादी कविता)
1990- अब तक(उत्तर-आधुनिक कविता'/ विमर्श केन्द्रीत कविता/समकालीन कविता)

काल विभाजन एवं नामकरण की यह रूपरेखा सुविधाजनक है। इतिहास में कोई समय/काल निश्चित हो भी सकता है और नहीं भी। जैसे हिन्दी कविता के प्रारम्भ की हम बात करें तो 1850 से 1900 ईसवीं तक के समय को हमने 'पृष्ठभूमि काल' कहा है, जबकि इसी समय आधुनिक हिन्दी गद्य का समुचित विकास होता है। 1850 से 1900 ईसवी के मध्य की भी बात करें तो इसी समय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने लगभग 70 कविताएँ खडी़ बोली हिन्दी में लिखीं थी। इसके पश्चात् श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' नाम से 1886 ईसवी में किया था। इसके अतिरिक्त श्रीधर पाठक की स्फुट कविताओं का संग्रह 'जगत-सचाई-सार' 1887 ईसवी में प्रकाशित होता है। स्पष्ट है कि 1900 ई0 से पूर्व खडी़ बोली हिन्दी में काव्य रचना प्रारम्भ हो चुकी थी। अतः इस युग को काव्य रचना की दृष्टि से 'पृष्ठभूमि काल' कहना सार्थक है। नामकरण के सन्दर्भ में 'भारतेन्दु काल' को पुनर्जागरण काल तथा द्विवेदी युग को 'सुधार' काल भी कहा गया है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में जागरण एवं सुधार की प्रवृत्ति मुख्य रूप से थी, इसलिए उपर्युक्त नामकरण किया गया। 'छायावाद' के सन्दर्भ में विचार करें तो इसे 'स्वच्छंदतावाद' भी कहा गया है। डॉ0 बच्चन सिंह 'स्वच्छंदतावाद' नामकरण को ज्यादा अर्थगर्भित मानते हैं, क्योंकि 'छायावाद' केवल कविता का सूचक है। जबकि 'स्वच्छंतावाद' में गद्य और पद्य दोनों आ जोते हैं। वस्तुतः 'स्वच्छंदतावाद' नामकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का दिया हुआ है। शुक्ल जी पश्चिमी रोमैंटिसिज़्म के हिन्दी पर्याय के रूप में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'छायावाद' और 'स्वच्छंदतावाद' में बुनियादी अन्तर है, इसलिए हम यहाँ 'छायावाद' नामकरण को ही प्रमुखता दे रहे हैं।

कालविभाजन एवं नामकरण की समस्या के सन्दर्भ में 1935 से 1945 तक के समय को 'प्रगतिवादी एवं 'प्रयोगवाद' कहा गया है। इसी समय दो काव्यान्दोलन और चले। सन् 1935 के लगभग हरिवंशराय बच्चन के प्रतिनिधित्व में 'हालावाद' आन्दोलन आया, जो उनकी चर्चित कृति 'मधुशाला' के पश्चात् उत्पन्न हुआ। इसी समय 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' नामक अन्य

काव्यान्दोलन भी प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह, दिनकर, सियाराम शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा, नीवन इत्यादि थे। अब समस्या यह हैं कि 'हालावाद', 'प्रगतिवाद', 'प्रयोगवाद', तथा 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' का रचना काल प्रायः एक ही हैं, फिर किसे हम काल-विभाजन के केन्द्र में रखें। इतिहास में कभी-कभी दो धराएँ समानान्तर रूप में चलती हैं, हिन्दी की उपर्युक्त काव्यधाराओं के सन्दर्भ में भी यही कहा जा सकता है।

सन् 1960 के बाद की कविता को 'साठोत्तरी कविता' भी कहा गया है और अ-कविता' भी। एक नामकरण में 'काल' को आधार बनाया गया है, दूसरे नामकरण में साहित्यिक प्रवृत्ति को। 1960 से 1965 के आस-पास 64 काव्यान्दोलनों की सूची जगदीश गुप्त जी ने दी है। इन्हें आन्दोलन कहना भी उचित नहीं है। ये मात्र मत-मतान्तर हैं। 'नयी कविता' के समय (1951-1959) के बीच सन् 1956 में 'नकेनवाद' नामक आन्दोलन भी चला, किन्तु इसमें भी व्यापक जीवन दृष्टि का अभाव था। इसी क्रम में 'मोहभंग की कविता' नामकरण भी निर्विवाद नहीं है। काई इसे 'नक्सलवाडी़ कविता' कहता है, कोई 'भूखी पीडी़ आन्दोलन'। सन् 1990 के बाद के समय को कोई उत्तर- आधुनिक समय कहता है, कोई 'समकालीन'। अतः इस विवेचन से स्पष्ट है कि काल-विभाजन एवं नामकरण का प्रश्न निर्विवाद हो, यह सम्भव ही नहीं।

अभ्यास प्रश्न 1

क) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

1. आधुनिक चेतना लाने में गद्य का क्या योगदान है? लगभग आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक वर्ष निर्धारित करने की समस्या लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश पद्य के माध्यम से हुआ।

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'गद्य काल' कहा है।

3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ 1900 ईसवी से मानते हैं।

4. आधुनिक साहित्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं।

5. छायावादी काव्यान्दोलन का समय 1900 से 1930 इेसवी तक है।

3.3.2 मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य का अन्तर

जैसा कि पूर्व में आपने पढा़ कि मध्यकालीन हिन्दी कविता की दो धाराएँ रही हैं। पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' तथा उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा गया है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल की सामाजिक चेतना में बुनियादी अन्तर है। भक्तिकाल के केन्द्र में ईश्वर-भक्ति है तथा रीतिकाल के केन्द्र में राजा-श्रृंगार। भक्तिकाल सामाजिक - ऐतिहासिक बोध से युक्त है तथा रीतिकाल ऐन्द्रिय सुखों के प्रति आग्रही। दोनो वर्गों की सामूहिक प्रवृत्ति को हम केन्द्रित करें तो पूरे मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता भक्ति-नीति-श्रृंगार निर्धारित होती है। वहीं आधुनिक पद्य के केन्द्र में ईश्वर की जगह मनुष्य, भावना-भक्ति की जगह विचार एवं तर्क, नीति की जगह कार्य- कारण भाव संबंध तथा अलंकार की जगह बिम्ब ले लेते हैं। अलंकरण की प्रवृत्ति भक्ति के संदर्भ में ज्यादा होती है। श्रेष्ठ पुरूष या ईश्वर की हम अतिश्योक्ति पूर्ण प्रशंसा या स्तुति करते हैं। अतः स्तुति-प्रशंसा में अलंकार का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक है। आधुनिक काल की कविताओं में ईश्वर के स्थान पर मनुष्य एवं भाव की जगह विचार ने ले लिया। विचार का वहन अलंकार नहीं कर सकते। विचार के लिए बिंब की उपयोगिता बढी़। बिंब का काम चित्र निर्मित करता है। बिंब संवेदना से जुडे़ होते हैं। बिंब भावना का बिंब आन्तरिक रूप होते हैं। आधुनिक पद्य की मूलभूत विशेषताओं का अध्ययन आप आगे की इकाईयों में विस्तार से करेंगे। अतः यहाँ संक्षेप में यह विवेचित किया गया कि मध्यकालीन कविता की चेतना में भक्ति एवं श्रृंगार केन्द्रीय विषय वस्तु रहे हैं तथा आधुनिक कविता की ऊर्जा तर्क एवं बुद्धि रहे हैं। इसीलिए आधुनिक पद्य में ईश्वर के स्थान पर 'मनुष्य' स्थापित होता है। पुराना 'मानवतावाद' अब 'मानववाद' के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। 'मानवतावादी' में ईश्वर, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्रकृति सबके लिए जगह है। सबके लिए सम्मान, स्नेह, प्रेम एवं आदर का भाव है, लेकिन 'मानववाद' मनुष्य केन्द्रित दर्शन है। प्रकृति के सारे मूल्य- नीति मानव की उपयोगिता से संचालित होते हैं, यानी मानव ही सारी चीजों का नियन्ता है। इन सारी अवधारणों का सम्बन्ध आधुनिक काल के पद्य पर पड़ता है, जिसके कारण यह मध्यकालीन पद्य से अलग हो जाती है।

3.3.3 आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि का सम्बन्ध व्यापक रूप में आधुनिकरण की प्रक्रिया से है। आधुनिकीकरण का प्रारम्भ अंग्रेजों के आगमन के आगमन से माना जाता है। (हाँलाकि रामविलास शर्मा इसको आधुनिक काल कें पूर्व से ही मानते हैं) अंगेजों के भारत आगमन से पूर्व भारतीय समाज जड़, एकरस, बन्द समाज था। हिन्दू धर्म जड़ता, अंधविश्वास से घिरा हुआ था। मुगल वंश के हास के साथ ही मुस्लिम सत्ता भी छोटे-छोटे टुकडो़ं में विभक्त हो गई थी। हिन्दू और मुस्लिम धर्म सामंतीय समाज थे। जबकि अंगेज यानी ईसाई संस्कृति पूँजीवादी विकास का आग्रह लेकर भारत आई थी, इसलिए उसमें एक आकर्षण था। अंग्रेजों के आगमन से भारतीयों

के रहन-सहन, जीवन-यापन, आचार-विचार, साहित्य-संस्कृति, शिक्षा-कला में परिवर्तन होने लगे। शिक्षा, अर्थव्यवस्था, व्यवसाय, समाजिक नियम- कानून, नौकरशाही, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा आधारभूत भौतिक विकास जैसे- सड़क, नहर, रेल, तार, डाक सेवा आदि में मूलभूत परिवर्तन उपस्थित हुआ। सारे परिवर्तनों पर पश्चिमीकरण की छाप लगती गई। शिक्षा-पद्धति, धर्म, प्रेस तथा कानून- प्रशासन पर दूरगामी प्रभाव पडा़। मुस्लिम धर्म के सत्ता में रहने पर भी हिन्दू धर्म पूर्ववत बना रहा, क्योंकि मूल रूप से दोनों संस्कृतियाँ पिछड़ी-सामंती संस्कृतियाँ थीं। लेकिन ईसाई संस्कृति और भारतीय संस्कृति की टकराहट से एक नयी ऊर्जा पैदा हुई, जिसे कुछ लोगों ने 'नवजागरण' कहा है तो कुछ ने 'पुनजागरण'। आधुनिक हिन्दी पद्य के स्वरूप निर्माण में इन बदली हुई परिस्थितियों को महत्वपूर्ण योगदान था। अतः यहाँ हम यूरोप से आ रही 'आधुनिकता' के कारणों को जानने के लिए युगीन पृष्ठभूमि तैयार कर रही इन विविध परिस्थितियों की समीक्षा करेंगे।

3.3.3.1 राजनीतिक परिस्थिति

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। आधुनिकी करण की प्रक्रिया का सम्बन्ध व्यापार से है। 1498 में वास्कोडिगामा के समुद्री मार्ग से भारत आने की घटना के पश्चात् व्यापार को और बढा़वा मिला। वास्कोडिगामा ने यहाँ के कई राजाओं से व्यापारिक संधि की और कई फैक्टरियाँ स्थापित की। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व पुर्तगालियों का अधिकांश पश्चिमी समुद्र तट पर वर्चस्व स्थापित हो गया था। 1600 ईसवीं में अंग्रेजों द्वारा स्थापित ईस्ट इंडिया कम्पनी का शुरू में उद्देश्य तो व्यापारिक था किन्तु क्रमशः उन्होंने राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करना शुरू कर दिया। पुर्तगाली एवं अंग्रेजों को व्यापारिक-राजनीतिक लाभ लेते देखकर डच और फ्रांसीसीयों ने भी भारत आकर व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करने लगे। प्रारम्भ में इन सभी का उद्देश्य व्यापार कर लाभ कमाना था किन्तु बाद में ये भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगीं। पुर्तगालियों ने गोवा, दमन और द्वीप में अपना वर्चस्व स्थापित किया, फ्रांसीसियों ने पांडिचेरी, चन्द्रनगर एवं माही में अपना उपनिवेश स्थापित किया। किन्तु इनमें सबसे अधिक सफलता मिली अंग्रेजों को। 1600 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भ से लेकर 1757 ईसवीं के प्लासी युद्ध तक अंग्रेज इस स्थिति में आ चुके थे कि वे पूरे भारत पर शासन करने का स्पप्न देख सकें। सन् 1757 ई0 में जनरल क्लाइव के नेतृत्व में अंग्रजों ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी की लडा़ई में हराकर अपनी सैनिक ओर कूटनीतिक ताकत में काफी इजाफ़ा कर लिया था। सिराजुद्दौला की इस हार के बाद सम्पूर्ण बंगाल अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया । सन् 1764 ई. में बक्सर युद्ध में मुगल सम्राट शाह आलम भी पराजित हुआ। इस युद्ध के बाद बंगाल और बिहार पर अंग्रेजों का वर्चस्व स्थापित हो गया तथा अवध का नवाब उनके हाथों की कठपुतली बन गया। सन् 1765 इसवीं में शाह आलम के कडा़ के युद्ध में पराजय से उसी शक्ति पूरी तरह समाप्त हो गई। इस पराजय के पश्चात् मुगल सम्राट ने बंगाल, बिहार और उडी़सा

की दीवानी अंग्रेजों को सुपुर्द कर दी। सन् 1793 ई0 में अंग्रेजों ने मैसूर शासक टीपू सुल्तान को पराजित कर आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक तक अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। सम्पूर्ण भारत पर आधिपत्य जमाने के लिए अंग्रेजों को दो शक्तियों पर वर्चस्व स्थापित करना शेष था- वे शक्तिशाली साम्राज्य मराठे और सिक्खों का था। आपसी फूट-संघर्ष के कारण 1803 के उसी तथा लासवारी युद्ध में तथा 1818 के चार युद्धों के बाद मराठों की शक्ति क्षीण हो गई। 1849 ईसवी में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् तथा सिक्खों को पराजित करने के बाद लगभग सम्पूर्ण देश अंग्रेजों के अधीन हो गया। रही-सही कसर लॉर्ड डलहौजी की विलय नीति ने कर दिया। विलय नीति की प्रतिक्रिया रूपरूप हुए 1857 के संघर्ष के फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी समाप्त कर दी गई और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया।

1857 ईसवी तक सम्पूर्ण भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन चुका था। पराजय- बोध ने भारतीयों के मन में राष्ट्रीय बोध बन कर उभरा। हिन्दी साहित्य पहली बार तत्कालीन समस्याओं से जुड़ा- यह जुड़ाव गद्य के माध्यम से हुआ, पद्य के माध्यम से नहीं। यह सही भी था क्योंकि विचार जल्दी बदलते हैं, संवेदना बाद में ढलती है। लेकिन यह समझना भूल होगी कि पद्य में बदलाव की प्रक्रिया थोड़े बाद में शुरू हुई । अनायास नहीं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र की कविता में राजभक्ति या राष्ट्रभक्ति का इन्द्व देखने को मिलता है।

3.3.3.2 आर्थिक परिस्थिति

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज में ग्रामीण- कृषि प्रधान व्यवस्था थी। भारत के गाँव आर्थिक रूप से स्वावलम्बी थे और अपने आप में पूर्ण आर्थिक इकाई थे। भारतीय गॉवों की अपरिवर्तनीय स्थिति पर चार्ल्स मेटाकफ ने लिखा है- ‘‘ गाँव छोटे-छोटे गणतंत्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जीती थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवंश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ, हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगड़े पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे। ’’

प्रारम्भ में अंग्रेज कम्पनी का उद्देश्य व्यापारकि था, किन्तु बाद में उन्होंने इस देश को अपना बाजार बनाया। भारत के उद्योग -धंधों और हस्तशिल्प को नष्ट करके अंग्रेजों ने यहाँ के बाजा़र को अपने अधीन कर लिया। भारतेन्दु हरिशचन्द्र तथा उनके सहयोगियों ने विदेशी आर्थिक शोषण का उल्लेख किया है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप् ब्रिटेन में कच्चे माल की खपत/ माँग बढी़। पराधीनता की इस स्थिति में भारत को अपना कच्चा माल इग्लैण्ड को देना पडा़। उसी कच्चे माल की खपत भारत के बाजारों में होने लगी। कच्चे माल से निर्मित वस्तुएँ भारतीय बाजा़रों में इंग्लैण्ड से दुगने दाम पर मिलने लगीं। शोषण के इस रूप की प्रतिक्रिया स्वदेशी आन्दोलन’ के रूप में हुई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन का घोषणापत्र अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया। 1793 ईसवीं में कार्नवालिस द्वारा बंगाल, बिहार और उडी़सा में जमींदारी प्रथा लागू करने

तथा 1830 में सर टॉमस मुनरो द्वारा इस्तमरारी बंदोबस्त लागू करने से मालगुजारी, लगान की नकारात्मक स्थितियाँ उत्पन्न हुई। रही- सही कसर देश में पड़े अकालों ने किया। लेकिन विश्लेषण का एक पक्ष और हो सकता है। कई विचारकों ने इस तथ्य की ओर संकेत किय है कि पुराने अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, वह शोषण पर आधारित होने के बावजूद, अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया से जुड़ गया।

डॉ0 नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में टिप्पणी की है- '' बहुत से शहरी उद्योग भी अंग्रेजों की कृपा से काल कवलित हो गए। फिर भी पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नई अर्थव्यवस्था को लागू किया गया। उससे अनजाने ही ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों की जड़ता टूटी। गाँव दूसरे गाँवों और शहर के सम्पर्क में आने के लिए बाध्य हुए। घेरे में बँधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुखी हो चली।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 443)। उपर्युक्त उदाहरण का सार यह है कि अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह नष्ट किया, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से लाभ यह हुआ कि भारतीय समाज व्यापार या दूसरे रोजगार के लिए गाँव से बाहर आया और उसमें एक राष्ट्रीय चेतना का जन्म हुआ।

3.3.3.3 धार्मिक परिस्थिति

अंग्रेजों शासन के आधिप्य ने हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म को गहरे रूप में प्रभावित किया। अंग्रेज जब भारत आये तब हिन्दु तथा मुस्लिम दोनों धर्म अपनी प्रगतिशीलता खो चुके थे। हिन्दू धर्म, जो कभी ज्ञान एवं समृद्धि का भण्डार माना जाता था, वह भी जाति-पात, छूआछूत एवं ब्राह्यआडम्बरों में सिमट कर रह गया था। नवीन धर्म-दर्शन की निष्पत्ति तो दूर की बात रही, पुराने ग्रन्थों की मौलिक व्याख्या भी प्रायः नहीं होती थीं। कहने का भाव यह है कि सामान्य हिन्दू जनता धार्मिक कर्मकाण्डों से तंग थी। उसी तरह मुस्लिम धर्म भी कई तरह की संकीर्णताओं के आबद्ध हो चुका था। हाँलाकि मुगल सत्ता के समय 'दीन-ए-इलाही' जैसी व्यापक अवधारणाएँ भी आईं थीं, लेकिन वह पूरे धर्म को प्रभावित करने में असफल रहीं, ऐसी स्थिति में दोनों धर्मों की संकीर्णताओं का लाभ उठाकर ईसाई मिशनरियों ने हिन्दु तथा मुस्लिम धर्म पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ईसाई धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए बाइबिल के हिन्दी अनुवाद वितरित किये जाने लगे। अपने धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने धन का प्रलोभन देना भी शुरू कर दिया। अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों से घिरी हिन्दू जनता ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट हुई। बहुत सी निर्धन जनता ने ईसाई धर्म स्वीकार की कर लिया। ईसाई धार्मिक प्रचार की कट्टरता ने हिन्दू पुनरूत्थान की भावना को विकसित किया। हिन्दू धर्म के गौरव पर नये सन्दर्भों में विचार किया जाने लगा। राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना कर हिन्दू धर्म की आधुनिक संन्दर्भों में व्याख्या की। इसी क्रम में प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसॉफिकल सोसाइटी ने धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर हिन्दू धर्म तथा भारतीय समाज को गहरे रूप में

प्रभावित किया। ईसाई धर्म के धार्मिक आक्रमण के फलस्वरूप हिन्दू चेतना से जुटे। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह के खिलाफ कानून इसी जागरूकता के प्रमाण थे। स्वामी विवेकानन्द के शिकागो (अमरीका) वक्तृत्व ने हिन्दू धर्म को पूरे विश्व में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित किया। अंग्रेजों का धार्मिक प्रचार हिन्दू धर्म के पुनरूस्थान से जुडा़। हिन्दू धर्म की जड़ता टूटी और वह गतिशील हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का साहित्य सेक्युलर दृष्टि से ओत प्रोत है, जिसके पीछे पुनजगिरण की भावना ही काम कर रही थी।

3.3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है, अंग्रजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज परम्परागत रूप का समाज था। भारतीय रहन-सहन, खान-पान का स्तर एवं जीविकोपार्जन का साधन परम्परागत थे, उनमें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का अभाव था। अंग्रेज आधुनिक विज्ञान के सम्पर्क में आते जा रहे थे। विज्ञान का उपयोग उन्होंने विश्व में वर्चस्व स्थापित करने में किया। रेल, यातायात के साधन, सड़कें, तार, डाक व्यवस्था जो आधुनिक प्रगति के वाहक थे, अंग्रजों के माध्यम से भारत में आये। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय समाज निर्धन था, या उनका आर्थिक स्तर निम्न था। क्योंकि आँकड़े कहते हैं कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में भारतीय हिस्सेदारी कई सम्पन्न देशों से ज्यादा थी। यहाँ परम्परागत समाज कहने से तात्पर्य यही है कि भारतीय समाज ग्रामीण व्यवस्था के ढंग में रंगा था। छोटे से जगह में उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाया करती थीं, हाँलाकि उस समय भी भारतीय व्यापार कई देशों में फैला हुआ था। भारत पर आधिपत्य स्थापित कर अंग्रेजों ने यहाँ की भाषा एवं संस्कृति पर भी श्रेष्ठता स्थापित करने की पहल करनी शुरू कर दी। लॉर्ड मैकाले की भाषा नीति ने भारतीय भाषाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया। 1800 ई0 में स्थापिम फोर्ट विलियम कॉलेज का उद्देश्य भी भारतीयों को ब्रिटिश प्रशासन चलाने के लिए अंग्रेजी भाषा सीखाना था। लेकिन इसी के साथ ही विलियम जोंस, मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने भारतीय भाषाओं की महत्ता को स्वीकार भी किया तथा अनेक ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये या करवाये। फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से भी अनेक अंग्रेजों ने हिन्दी भाषा सीखी। भाषा के प्रति गौरव-बोध ने सांस्कृतिक बोध को जन्म दिया।

भारतीय संस्कृति आध्यिक, आध्यात्मिक रूप से विकसित संस्कृति थी। संस्कृति के दो स्तर होते हैं- एक स्तरहै। बाह्य और दसरा है आन्तरिक। बाह्य स्तर के अतिरिक्त रहन-सहन , वेश-भूषा, खान-पान आते हैं तथा आन्तरिक स्तर के अन्तर्गत आत्मिक- आध्यात्मिक -बौद्धिक चेतना आती है। किसी समाज-संस्कृति के प्रभाव से बाह्य स्तर पहले प्रभावित होता है। यह प्रभाव चिंतनीय नहीं है। लेकिन अगर कोई संस्कृति किसी अन्य संस्कृति की जातीय चेतना पर आधिपत्य करना शुरू कर देती है तो वह ज्यादा गंभीर एवं खतरनाक होती है। अंग्रेजों ने अपनी औपनिवेशिक मानसिकता का आधिपत्य भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषाओं पर हमले करके स्थापित किया। इस

सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम हुआ कि भारतीय सामंती संस्कृति में हलचल हुई। अपने 'निज भाषा' एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता का भाव पैदा हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने घोषणा की - ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।'' जाहिर है सब उन्नति में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी शामिल है। यह निजता का भाव आधुनिक हिन्दी पद्य की पीठिका बनता है।

अभ्यास प्रश्न 2

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थान की पूर्ति दिए गए विकल्पों में से कीजिए।

1. भक्तिकाल..............................बोध से युक्त है। (भौतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक)

2. मध्यकाल की केन्द्रीय विशेषता.......................... निर्धारित होती है। (तर्क, भक्ति-श्रृंगार, कार्य-कारण सम्बन्ध)

3. ....भावना का संवेदनात्मक शब्द-चित्र है। (अलंकार, प्रतीक, बिंब)

4. मानवतावाद में ईश्वर, मनुष्य, प्रकृति, पशु-पक्षी सबके लिए जगह है, जबकि 'मानववाद'.......................केन्द्रित दर्शन है। (ईश्वर, मानव, प्रकृति)

5. आधुनिकीकरण का मख्य सम्बन्ध .... के भारत आगमन से जुडा़ हुआ है। (पुर्तगाली, फ्रांसीसीयों, अंग्रेजों)

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1. अंग्रजों के आगमन का प्रारंभिक उद्देश्य व्यापारिक था।

2. प्लासी का युद्ध सन् 1757 ई0 में हुआ।

3. वारेन हेस्टिंग्ज ने भारत में विलय-नीति प्रारम्भ की।

4. स्वदेशी वस्तुओं के प्रति सबसे पहले भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जागरूकता दिखाई

5. ब्रह्म समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।

3.4 आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियाँ

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि आधुनिक पद्य का सम्बन्ध पुनजगिरण वादी चेतना से हे। पुनजगिरण का अर्थ करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- '' पुनजगिरण का एक चिह्न यदि

दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट है तो दूसरा चिह्न यह भी कहा जाएगा कि वह मनुष्य के सम्पूर्ण तथा संश्लिष्ट रूप की खोज, और उसका परिष्कार करना चाहता है'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ 80)।

आधुनिकता के केन्द्र में मनुष्य रहा हैं हिन्दी साहित्य में मनुष्य की अवधारणा कई बार बदली हैं। जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इंगित किया है आदिकाल में मनुष्य का ईश्वर की महिमा से युक्त रूप में वर्णन हुआ है, जब कि भक्तिकाल में ईश्वर का चित्रण मनुष्य के रूप में हुआ है।

रीतिकाल में ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण हुआ है। तथा आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केन्द्र बनता है, और ईश्वर की धारण व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है, साहित्य या कि कलाओं में उसका चित्रण प्रासंगिक नहीं रह जाता। (चतुर्वेदी, रामस्वरूप, पृष्ठ 78-79) रामस्वरूप चतुर्वेदी के तर्क का सरल रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिन्दी कविता में मनुष्य की बदलती अवधारणा

आदिकालः	मनुष्य	ईश्वर
भक्तिकालः	ईश्वर	मनुष्य
रीतिकालः	ईश्वर+मनुष्य	मनुष्य
आधुनिककाल:	मनुष्य	मनुष्य

आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी का तर्क मोटे रूप में सही है। लेकिन इसे पूरी तरह मान लेना भी संगत नहीं है। जैसे आधुनिक काल की हम बात करें तो हम देखते हैं इस युग में मनुष्य के साथ ईश्वर का चित्रण भी हुआ है तथा रहस्वादी प्रवृत्ति की भी कमी नहीं है। यह अलग बात है कि पौराणिक-ऐतिहासिक संन्दर्भो की आधुनिक व्याख्या आधुनिकता की देन है। यहाँ इस बात का संकेत करके हम आधुनिक की मुख्य विशेषताओं की संक्षेप चर्चा करेंगे। चूँकि यह इकाई आधुनिक पद्य की पृष्ठ भूमि के रूप में है इसलिए आगे की कविता-प्रवृत्तियों की संक्षिप्त रूपरेखा ही यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

3.4.1 राष्ट्रीयता

आधुनिक हिन्दी पद्य का प्रारम्भ राष्ट्रीय भाव बोध से हुआ है। राष्ट्रीय भावबोध का प्रारम्भ भारतेन्दु के गद्य के माधम से हुआ। भारतेन्दु हरिशचन्द्र की इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध पंक्ति देखें-

''अँगरेज राज सुख साज सजै सब भारी

पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।''

इसी प्रकार अंग्रेजी राज्य के शोषण का संकेत भारतेन्दु ने अप्रत्यक्ष तरीके से इस प्रकार किया कि ''अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत विदेसा।।''

इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ''भात-दुर्दशा'' नाट्क की यह पंक्ति भी राष्ट्रीय बोध की ही निष्पत्ति हैः

''रोवहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।

हा ! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।''

यहाँ भारतेन्दु हरिशचन्द्र की चिन्ता कबीर की चिन्ता से मिल जाती है। 'दुखिया दास कबीर है जागे और रोवै' कहने वाले कबीर भारतेन्दु की पूर्ववर्ती प्रेरणा बनते हैं, यह ठीक ही है। भक्तिकाल जहाँ सांस्कृतिक जागरण है वहीं पुनजगिरण भौतिक-सामाजिक-ऐतिहासिक- सांस्कृति सभी प्राकर का जागरण है। 'प्रेमधन' ने भी अंग्रेजी सरकार के शोषण पर कटाक्ष करते हुए लिखा है- 'राओं सब मुंह बाया बाय हाय टिकस हाय हाय।'

राष्ट्रीयता की भावना 'द्विवेदी युग' में और तेज हुई, क्योंकि उस समय तक स्वतंत्रता आन्दोलन में और गति आ चुकी थी। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य राष्ट्रीय भाव-बोध से विशेष रूप से संचालित है। ''भारत-भारती'' काव्य अपने राष्ट्रीय बोध के कारण विशेष रूप से चर्चित हुआ। जिसके कारण उसे ब्रिटिश सत्ता ने प्रतिबंधित कर दिया था। 'भारत-भारती' का केन्द्रीय उद्बोधन है-

''हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी आओ, विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।''

द्विवेदी युग के बाद छायावादी आन्दोलन मूलतः सांस्कृतिक बोध का आन्दोलन कहा गया है। छायावादी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक जागरण के तत्वों से अनुस्यूत है। 'कामायनी' की प्रसिद्ध पंक्तियाँ देखें-

''शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त

विकल बिखरे हैं, जो निरूपाय,

समन्वय उसका करे समस्त

विजयिनी मानवता हो जाय।''

हिन्दी कविता में सही रूप से राष्ट्रीयता की अवधारणा फलीभूत होती है- 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक'क कविता आन्दोलन से। रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय कविताओं 'दिल्ली', 'हाहाकार', 'विपथगा', तथा 'समर शेष है' में राष्ट्रीय भाव बोध की प्रबलता है। इसके अतिरिक्त उनके विचार-प्रधान काव्य 'कुरूक्षेत्र' तथा 'रश्मिरथी' भी राष्ट्रीय भाव बोध से अछूती नहीं है। 'दिनकर' ने 'हुँकार' को राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह कहा है।- 'तिमिर ज्योति की सरमभूमि का मैं चारण' में वैताली।' यह 'दिनकर' का मूल स्वर है। माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता काफी लोकप्रिय हुई थी। सियारामशरण गुप्त की 'उन्मुक्त' और 'दैनिकी' राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच की कविताएँ हैं। बालकृष्ण शार्मा 'नवीन' की पंक्ति - 'कवि कुछ ऐसी तान सुनओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये' राष्ट्रीय भावधारा की ही अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार सुभ्रदाकुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी' तो राष्ट्रीय भावधारा का केन्द्रीय गीत ही बन गया। बुन्देलखण्डी लोकशैली में लिखी गई कविता- ''बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी। खूब लडी़ मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी। '' राष्ट्रीय आन्दोलन के समय काफी लोकप्रिय हुई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कविता में राष्ट्रीय भाव बोध की अभिव्यक्ति का स्वरूप बदल गया। राष्ट्रीय चेतना की कविता का सम्बन्ध प्रायः पराधीनता की स्थिति हुआ करती है, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विद्रोह- प्रतिकार का केन्द्र बदल गया। पहले विद्रोह क केन्द्र में ब्रिटिश साम्राज्य था, अब व्यवस्था आ गई। तय था कि अपने भीतर का संघर्ष बाहरी संघर्ष से ज्यादा जटिल होता है। फलतः कविता में भी सांकेतिकता, बिंब, अंतर्विरोध, तनाव, विसंगति, बिडम्बना का प्रयोग होने लगा। कह सकते हैं प्रगतिवादी धारा तक राष्ट्रीय भाव बोध की खुली अभिव्यक्ति होती रही किन्तु उसके बाद राष्ट्रीयता का स्वरूप सूक्ष्म हो गया। इस पर आगे की इकाइयों में विस्तार से विचार किया जाएगा।

3.4.2 समाज -सुधार

जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय पुनजगिरण का शुरूआती स्वरूप सुधारवादी चेतना से अनुप्राणित रहा है। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन जैसे ''समाज'' सुधारवादी प्रवृत्ति से ही संचालित रहे हैं। सती प्रथा कानून, विधवा विवाह अधिनियम, बाल-विवाह निषेध कानून जागरण-सूधार की ही व्यावहारिक निष्पत्तियाँ हैं। स्वंय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने स्त्री शिक्षा के प्रचारार्थ 'बालाबोधिनी' पत्रिका प्रकाशित की थी। आधुनिक हिन्दी पद्य का सम्बन्ध सुधारवादी चेतना से है। जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया है भारतेन्दु युग तक पद्य में आधुनिकता का संस्पर्श नहीं हो पया था, लेकिन स्वंय भारतेन्दु 'निजभाषा' की आवश्यकता एवं महत्व को महसूस कर रहे थे। भारतेन्दु की चेतना का विकास महावीरप्रसाद द्विवेदी के माधम से पद्य में फलीभूत हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ''कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए''। उपदेशजनक एवं नीतियुक्त प्रकृति के कारण ही 'द्विवेदी युग' की कविता को जागरण -सुधार नाम दिया गया है। द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं- मैथिलीशरण गुप्त। मैथलीशरण गुप्त के ऊपर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-''हिन्दी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह

कहे जा सकते हैं।'' 'भारतेन्दु' के समय में स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी उसका विकास 'भारतभारती' में मिलता है। इधर के राजनीतिक आन्दोलनों ने जो रूप धारण किया उसक पूरा आभास पिछली रचनाओं में मिलता है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यवाद, विश्वप्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति प्रेम और सम्मान, सबकी झलक हम पाते है।'' गुप्त जी का 'साकेत' ग्रन्थ व्यापक रूप से भारतीय नवजागरण के प्रभाव तले लिखा गया है। स्त्री संबधी सुधार या करूणा उनके काव्य की केंन्द्रीय विशेषताओं में से एक है। 'यशोधरा' खण्डकाव्य की पंक्ति बहुत प्रसिद्ध है-

''अबला हाय तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।''

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी युग में सुधारवादी भावना सौन्दर्यवादी चेतना से आप्लावित हुई। छायावाद ने कल्पना का व्यापक प्रयोग किया। द्विवेदी युग में जो नारी 'अबला' थी छायावाद में- 'देवि, माँ, प्राण, सहचरि प्रिये हो तुम।' वह कई रूपों में स्वीकार की गई। निराला ने इसी प्रकार वर्ग-वैषम्प का विरोध करते लिखा है- 'अमीरों की हवेली होगी/ आज होगी गरीबों की पाठशाला।' सामाजिक रूढ़ियों पर चोट करते हुए निराला ने लिखा है- 'तुम करो व्याह, तोड़ता नियम/ मैं सामाजिक योग के प्रथम।' श्रम सौन्दर्य पर निराला ने 'तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' कविता लिखकर प्रगतिवादी धारा का सूत्रपात कर दिया था। प्रगतिवादी साहित्य में कविता का स्वर प्रचारात्मक बना। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', अमृतराय, रांगेय राघव की कविता तत्कालीन व्यवस्था विसंगतियों पर चोट करती है। प्रगतिवाद के बाद का पद्य समाज सुधार के स्थूल आवरण से हटकर सूक्ष्म रूप से विसंगति-विडम्बना के माध्यम से पहल करता चाहता है। अतः हिन्दी पद्य जो समाज सुधार की भावना से प्रारम्भ हुआ था, क्रमशः वैचारिक होता गया। आज का पद्य तो दलित, स्त्री, आदिवासी विमर्श को अपने में समेटे हुए है। इस दृष्टि से हिन्दी कविता सामाजिक सरोकारों के प्रति पर्याप्त सजग रही है।

3.4.3 व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन

आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ व्यवस्था यर्थाथ के उद्घाटन से ही हुआ है। भारतेन्दु हरिशचन्द्र का 'भारत-दुर्दशा' तथा 'अंधेरे नगरी' नाटक व्यवस्था यर्थाथ उद्घाटन के ही तो प्रयास है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है भारतुन्दु युगीन कविता 'कहाँ करूणानिधि केशव सोये,' से आगे नहीं जा पाई थी, लेकिन उस युग का गद्य पयप्ति रूप से अपने युग के प्रति सजग था। द्विवेदी युगीन कविता पर भारतीय नवजागरणवादी चेतना का प्र्याप्त प्रभाव है। और सुधारवादी रूझानों से भी संयुक्त है, लेकिन व्यवस्था-उद्घाटन की तीव्रता का उसमें अभाव है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' कृति, जो युवा क्रान्तिकारियों के बीच काफी लोकप्रिय हुई थी, उसे भी हम जागरण- कृति

कह सकते हैं, व्यवस्था उद्धाटन की कृति नहीं। प्रश्न है जागरण कृति एवं व्यवस्था उद्धाटन कृति में क्या अन्तर है? वस्तुतः जागरण की भावना पूर्ववर्ती भावना है, जबकि व्यवस्था उद्धाटन की भावना पश्चवर्ती। जागरण होने के पश्चात् ही हम व्यवस्था की विसंगतियों, अंतर्विरोध या यर्थाथ को देख-समझ सकते हैं। अतः जागरण एवं व्यवस्था उद्धाटन एक ही प्रक्रिया की पूर्व एवं पर स्थितियाँ हैं। 'भारत-भारती' का जागरण व्यवस्था के यर्थाथ के कारण पैदा हुआ है। इसका अर्थ यह है कि पहले व्यवस्था के यर्थाथ का बोध होता है, फिर जागरण की भावना आती है तत्पश्चात् व्यवस्था के यर्थाथ का उद्धाटन होता है। व्यवस्था के यर्थाथ की विसंगति इसका अगला चरण है। द्विवेदी युग तक राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव से जागरणवादी भावना का आगमन हो चुका था। छायावाद युग में व्यवस्था की विसंगति के पर्याप्त चित्र हमें देखने को मिलते हैं। निराला की रचनाएँ इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चाहे वह 'भिक्षुक' हो या 'तोड़ती पत्थर' या 'कुकुरमुत्ता'। लेकिन अन्य रचनाकारों के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। जयशंकर प्रसद एवं महादेवी वर्मा का साहित्य व्यापक रूप से सौन्दर्यवादी-दार्शनिक रूझानों से गतिशील है वहीं सुमित्रानन्दन पन्त का साहित्य सौन्दर्य -चित्रों से होते हुए यर्थाथ के अंकन तक पहुँचा है। पन्त जी की कविता की पंक्ति देखें-

''साम्राज्यवाद था कंस, वन्दिनी

मानवता पशु बलाक्रांत

श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु

निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रांत

निराला ने इसी प्रकार लिखा है-

''रूद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,

अंगना-अंग से लिपटे भी

आतंक अंक पर काँप रहे हैं

धनी, वज्र-गर्जन से बादल

त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर

तुझे बुलाता कृषक अधीर

हे विप्लव के वीर! ''

या ' देखता रहा में खडा़ अपल

वह शरक्षेप, वह रणकौशल,

या ' ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार,

खाकर पत्तल में करें छेद, ''

× × ×

'दुःख ही जीवन की कथा रही/क्या कहूँ आज जो नहीं कही! '

जैसी पंक्तियाँ व्यक्तिगत जीवन से होती हुई सामाजिक - राष्ट्रीय यर्थाथ को बखूबी व्यक्त करती हैं। लेकिन छायावाद तक कविता का मूल स्वर आदर्शवादी एवं सौन्दर्यवादी ही था। प्रगतिवादी आन्दोलन के घोषणापत्र से एक नये प्रकार की चेतना की जन्म हुआ, जिसने व्यवस्था की विसंगति का पर्याप्त पर्दाफा़श किया। प्रगतिवादी साहित्य तथा मोहभंग की कविता इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं प्रगतिवादी धारा में नागार्जुन अपने व्यंग्यपरक रचनाओं, जो व्यवस्था की विसंगति पर आधारित हैं, के कारण विशेष रूप् से चर्चित रहे हैं। नागार्जुन की कविता के कुछ उदाहरण देखें-

''बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के।

सकल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के! ''

× × ×

'कई दिनों तक चल्हा रोया/चक्की रही उदास/

कई दिनों तक काली कुतिाया/ सोई उनके पास

× × ×

'धुन खाये शहतीरों पर बारहखडी़ विधाता बाँचे

फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे,

केदारनाथ अग्रवाल की कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें-

‘काटो, काटो , काटो, कदबी

मरो, मारो, मारो हँसिया

हिंसा और अहिंसा क्या है

जीवन से बढ़ हिंसा क्या है

× × ×

‘मिल के मालिकों को

अर्थ के पैशाचिकों को

भूमि के हड़पे हुए धरणीधरों को

मैं प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ’’

× × ×

‘मैंने उसको जब भी देखा/ लोहा देखा/

लोहा जैसे गलते देखा/ लोहा जैसे ढलते देखा/

लोहा जैसे चलते देखा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक व्यवस्था चित्रण का स्वरूप अलग किस्म का था और स्वतंत्रता पश्चात् व्यवस्था चित्रण का स्वरूप दूसरे प्रकार का। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व व्यवस्था के केन्द्र में ब्रिटिश सत्ता थी, जबकि उसके पश्चात् केन्द्र में शासन कर रही व्यवस्था, जिसमें कार्यपालिका, विद्यायिका एवं न्यायपालिका सभी आते हैं, आ जाती है। केन्द्र बदलते हैं तो परिधियाँ भी बदल जाती है। प्रारम्भ में कवियों का लक्ष्य सामाजिक यर्थाथ का चित्रण करना था, फिर राजनीतिक यर्थाथ की विसंगति पर ध्यान गया उसके पश्चात् विसंगति के प्रति क्रान्ति की भावना तक कवि दृष्टि गई। गजानन माधव ‘मुक्तिबोध’ की लम्बी कविता ‘अंधेरे में’ इस दृष्टि से प्रतिनिधि कविता कही जा सकती है। पूरी कविता जन-संगठन के क्रान्तिकारी तत्वों से आबद्ध है। ‘‘अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे/तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब। ’’ कविता की केन्द्रीय पंक्तियाँ हैं। इसके बाद हिन्दी कविता में ‘व्यवस्था से मोहभंग’ की बात सीधे-सीधे उठने लगी। मुक्तिबोध ने लोक युद्ध का सपना तो देखा लेकिन उन्होंने इसके लिए फैंटसी शिल्प (स्वप्न शैली) का सहारा लिया। लेकिन मोहभंग की कविता के सामने ऐसे किसी शिल्प की मजबरी न रह गई। अमरीकी कवि एलेन

गीन्सवर्ग से प्रभावित कवियों का एक वर्ग उभरा, जो व्यवस्था की विसंगतियों पर खुलकर चोट करता था। इस धारा में राजकमल चौधरी, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकान्त देवताले मगलेश डबराल इत्यादि प्रमुख कवि शामिल थे। इस धारा की अगुआई कवि राजकमल चौधरी ने तथा सबसे सशक्त कवि थे 'धूमिल'। 'मुझे अपनी कविताओं के लिए/ दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।'

× × ×

'अपने यहाँ संसद/तेली की वह घानी है/ जिसमें आधा तेल है/ और आधा पानी है' इसी क्रम में धूमिल की प्रसिद्ध कविता 'रोटी और संसद' देखें- 'एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है और न रोटी खाता है/ वही सिर्फ रोटी से खेलता है/ वह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है।'

3.4.4 विमर्श केन्द्रीयता

कविता अपने मूल रूप में भाव का परिष्कार एवं विस्तार करने वाली छांदिक एवं लययुक्त भाषा-विधान है। कविता सबसे पहले भाव निर्माण करती है। भाव निर्माण का कार्य कविता बिंब निर्माण करके करती है। युग-सन्दर्भ के अनुसार हाँलाकि कविता के औजार भी बदलते रहते हैं। 'विमर्श' शब्द उत्तर-आधुनिक युग की देन है। यह 'डिस्कोर्स' के हिन्दी पर्याय के रूप में प्रयोग होता है, जिसका अर्थ चर्चा-परिचर्चा के समतुल्य होता है। कविता और विमर्श का क्या सम्बन्ध है? कविता के लिए विमर्श की क्या आवश्यकता है? इन प्रश्नों को जानना जरूरी हो जाता है, क्योंकि कविता युगानुरूप अपने तेवर विमर्श से ही प्राप्त करती रहती है। 'विमर्श' आलोचना की पृष्ठभूमि है। समकालीन घटनाओं पर जन-प्रतिक्रिया का बौद्धिक हस्तक्षेप है। भारतेन्दु युग में समस्यापूर्तियाँ या काव्य गोष्ठियाँ विमर्श के ही प्रकार थे। संस्कृत साहित्य में राजेशेखर द्वारा वर्णित 'कविचर्चा' या ' विदग्ध गोष्ठी' विमर्श के ही प्राचीन नाम थे। अतः विमर्श साहित्य को तत्कालीन घटनाओं से जोड़ने का साधन हैं। भारतेन्दु का 'पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।।'' समकालीन विमर्श का साहित्यिक रूपान्तर ही तो है। भारतेन्दु के 'अंधेरनगरी' का रूपक विमर्श नहीं तो और क्या है। मैथिलीशरण गुप्त की नवजागरणवादी साहित्यिक पंक्ति देखें- 'राम तुम मानव है? ईश्वर नहीं हो क्या? / विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?/ तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करें,/ तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।

× × ×

'भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया!

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।,'

मैथिलीशरण गुप्त जी की यह पंक्ति बदलते युगीन संवदेना को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त करती है। छायावाद का मूल स्वर सांस्कृतिक पुनरूत्थान या सांस्कृतिक जागरण का बन जाता है। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक हों यो प्रसाद, निराला की लम्बी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण को बखूबी व्यक्त करती है। अनायास नहीं कि छायावाद युग में सर्वाधिक जागरण गीत लिख गये। जयशंकर प्रसाद के 'प्रथम प्रभात', 'आँखों से अलख जगाने को', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री'!, निराला के 'जागो दिशा ज्ञान', 'जागो जीवन धनिके,'! सुमित्रानन्दन पन्त के 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति भारत', तथा महादेवी वर्मा के 'जाग बेसुध जाग' तथा जाग तुझको दूर जाना' जैसी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण-विमर्श की रचनात्मक प्रतीतियाँ हैं। जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' खण्डकाव्य में ' जोगो, मेरे मधुवन में ' तथा निराला के 'तुलसीदास' के इन पंक्तियों में (जागो, जागो, आया प्रभात,/बीती वह, बीती अंध रात') जागरण का ही स्वर है। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि व्यवस्था चित्रण और विमर्श में स्वरूपगत भेद है। व्यवस्था चित्रण तत्कालीन घटना क्रम की सीधी अभिव्यक्ति है तो 'विमर्श' तत्कालीन घटना क्रम की साहित्यिक- सामाजिक पृष्ठभूमि। प्रगतिवादी साहित्य का वर्ग - वैषम्य उद्घाटन व्यापक रूप से 'साहित्य का उद्देश्य' शीर्षक विमर्श से जुड़ता है। 'प्रगतिशील लेखक संध (1936) के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचन्द्र के अध्यक्षीय संबोधन 'साहित्य का उद्देश्य' पूरे प्रगतिवादी साहित्य का विमर्श ही है। इसी प्रकार प्रयोगवाद का आधुनिक बोध पश्चिमी विचारधाराओं (मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद आदि का) के विमर्श का ही साहित्यिक रूपान्तरण है। धूमिल जैस कवि पर नक्सलवादी आन्दोलन का कितना प्रभाव पडा़ है, यह ध्यान देने वाली बात है। नागार्जुन जैसे कवि पर राजनीतिक घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव हम देख सकते हैं। सन् 1990 के बाद के साहित्य को हमने विमर्श केन्द्रित साहित्य का नाम ही दे दिया है। सन् 90 के बाद कई विमर्श भारत और विशेषकर हिन्दी साहित्य में उभरे। जैसे भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, उत्तर-आधुनिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। पहले के मुकाबले आज की राजनीतिक-भौतिक स्थिति में परिवर्तन आ चुका है। आत का युग संचार का युग है। संचार माध्यमों के प्रभाव से आज ढेरों घटनाएँ हमारे मन -मस्तिष्क का हिस्सा बनती है, किन्तु कम घटनाएँ ही हमारी संवेदना का हिस्सा बनती हैं। विमर्श के लिए संवेदना को घटना तक पहुँचना अनिवार्य है।

आधुनिक पद्य प्रवृत्तियों में 'विमर्श केन्द्रियता' मुख्य है। आधुनिक पद्य में स्वचेतन वृत्ति के कारण बदलाव की प्रक्रिया मध्यकालीन कविता से तीव्र रही है। आदिकाल एवं मध्यकालीन कविता शताब्दियों तक एक ही धारा में बहती रही हैं। आधुनिक काल के पश्चात् सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया भी तीव्र हुई। इस काल को सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर उत्तर-आधुनिकता कहा गया

है। विचारधारा के स्तर पर इसे भूमंडलीकरण- वैश्वीकरण कहा गया है। इसी दौर में विचारधारा का अन्त' 'लेखक की मृत्यु', कविता की मृत्यु' जैसी नकारवादी अवधारणाएँ भी सामने आई। 'विचारधार का अन्त' प्रतिबद्धता हीन समाज की विलय का ही संकेत समझना चाहिए। उपर्युक्त नकारवादी दर्शनों में आंशिक सच्चाई थी। ये ज्यादातर पश्चिमी देशों का सच था। 'नकारवादी दर्शन' में सब कुछ नकारात्मक हो, हम यह भी नहीं कह सकते। उत्तर-आधुनिक सैद्धान्तिकी (हांलाकि यह किसी भी सिद्धान्त को अन्तिम नहीं मानता) दबे हुए समाज/ हाशिये के समाज के लिए किसी वरदान से कम नहीं हुआ। अनुपस्थित की तलाश उन सारे सिद्धान्तों को चुनौती देता है जो श्रेष्ठता के मानदण्ड से स्थिर किये गये थे। अनुपस्थिति की तलाश का ही वैचारिक रूप 'विमर्श' है, जिसे पश्चिमी देशों में 'डिस्कोर्स' कहा गया। 'विमर्श की केन्दीयता के दबाव के चलते ही स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श , आदिवासी विमर्श, भाषा-विमर्श, संस्कृति-विमर्श इत्यादि नये रूप में हमारे साने आये। सन् 1990 के बाद भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य में उपर्युक्त विमर्श नये ढंग से विश्लेषित किये जाने लगे।

अभ्यास प्रश्न 3

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-छह पंक्तियों में दीजिए-

1. पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं?

....
....
....
....
....
....
....

2. हिन्दी कविता में मुनष्य की बदलती अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

....
....
....
....
....

....
....

ख) निम्नलिखित प्रश्नों के रिक्त स्थानों की पूर्ति दिए गय विकल्पों में से कीजिए।

1. ‘भारत दुर्दशा न देखी जाई’ पंक्ति के लेखक.. हैं। (मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिशचन्द्र)

3. सांस्कृतिक जागरण.......................की विशेषता है। (भारतेन्दु काल, द्विवेदी युग, छायावाद)

3. राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से .... उल्लेखनीय काव्यान्दोलन है। (छायावाद, राष्ट्रीय सांस्कृतिक, प्रयोगवाद)

4. ‘साकेत’ ग्रन्थ के रचनाकार.. हैं। (जयशंकर प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त)

5. ‘दुःख ही जीवन की कथा रही’ पंक्ति के लेखक.............................. है। (नागार्जुन, दिनकर, निराला)

3.5 आधुनिक हिन्दी पद्य का महत्व

अभी तक आपने हिन्दी कविता के सम्पूर्ण इतिहास का विस्तार से अध्ययन किया। इसी क्रम में आपने मध्यकालीन पद्य और आधुनिक पद्य के अन्तर का भी अध्ययन किया। आपने देखा कि मध्यकालीन पद्य के केन्द्र में भक्ति-नीति-श्रृंगार रहे हैं। मध्यकालीन समाज-संस्कृति और काल को देखते हुए इसे पिछडा़ हुआ नहीं कहा जा सकता । मध्यकाल के अन्तर्गत ‘भक्तिकाल’ एवं रीतिकाल’ दोनों आते हैं। कथ्य, संवेदना, लोकधर्मिता की दृष्टि के कारण महत्वपूर्ण है। फिर भी अपनी सारी लोकधर्मिता और ऐहिक दृष्टि के बावजूद भक्तिकाल और रीतिकाल के सारे मूल्य ईश्वर एवं सामन्तों से संचालित होते हैं और यही मध्यकाल की सीमा है। आधुनिक काल के केन्द्र में मानव केन्द्रित मूल्य, तर्क केन्द्रित वैज्ञानिक दृष्टि एवं वर्तमानकालिक चेतना रही है। आधुनिक कालीन हिन्दी कविता ने क्रमशः ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित किये। रामस्वरूप ईश्वर की जगह मानव केन्द्रित मूल्य विकसित कये। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ‘‘आधुनिक काल में मनुष्य सम्पूर्ण रचना और चिंतन के केन्द्र में हैं, ईश्वर अब व्यक्तिगत आस्था का विषय है, चित्रण का नहीं।’’ प्रियप्रवास की भूमिका में ‘हरिऔध ’ ने लिखा है- ‘‘मैने श्रीकृष्ण चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरूष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं।’’ हिन्दी के अन्य महत्वपूर्ण महाकाव्य ‘साकेत’ में मैथिलीशरण गुप्त ले ‘ईश्वर’ की भूमिका को लेकर उनर्मूल्यांकन का प्रयत्न किया है- ‘राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?’ मानव केंद्रित मूल्य में काव्य की अभिव्यक्ति

शैली ही बदल दी/ वर्तमानकालिक चेतना सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का आधुनिक संदर्भो में मल्यांकन करने की चेतना प्रदान की। हिन्दी पद्य ने नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप् सामंती मूल्यों का बहिष्कार कर लोकधर्मी मूल्य विकसित किये।

3.6 सारांश

- आधुनिक काल नवजागरणवादी चेतना से निसृत वैचारिक एवं प्रायोगिक दर्शन है। नवजागरणवादी चेतना सांस्कृतिक ऊर्जा से उत्पन्न चेतना है। अपनी जातीय चेतना, अस्मिता एवं संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन का सृजनात्मक प्रयत्न ही नवजागरण या पुनर्जागरण है।
- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल गद्य के माध्यम से आया। इसीलिए रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'गद्य काल' कहा है। गद्य विचार प्रधान रूप है, जबकि पद्य संवेदना प्रधान। पहले विचार बदलते हैं फिर संवेदना। इस दृष्टि से हिन्दी पद्य का विकास हिन्दी गद्य के पश्चात् हुआ।
- प्राचीन एवं मध्यकालीन कविता का काव्य प्रवाह कई वर्षो तक एम-सा ही चलता रहा है, लेकिन आधुनिक हिन्दी कविता बदलती काव्य चेतना के कारण कई प्रवृत्तियों से होकर गुजरी है।
- आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न नामकरण को बदलती हुई साहित्यिक यात्रा का ही संकेत समझना चाहिए। नामकरण में भी कहीं साहित्यकार व्यक्तित्व (भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग) कहीं साहित्यिक प्रवृत्ति (छायावाद, नयी कविता, हालावाद, प्रयोगवाद, मोहभंग की कविता इत्यादि) कहीं सामाजिक - सांस्कृतिक परिस्थिति (पुनजगिरण, प्रगतिवाद, उत्तर-आधुनिकता इत्यादि) का मुख्य योगदान रहा है।
- खडी़ बोली हिन्दी कविता का आगमन अकस्मात नहीं हुआ है कि इसके पीछे सामजिक, राजनीतिक, धार्मिक -सांस्कृतिक परिस्थितियों की मुख्य भूमिका थी।
- हिन्दी कविता आधुनिक बोध से युक्त रही है। आधुनिक बोध से युक्त होने का अर्थ है वर्तमानकालिक, तर्क केन्द्रित दृष्टि सम्पन्न होना।
- आधुनिक हिन्दी पद्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता, समाज सुधार, व्यवस्था यर्थाथ का उद्घाटन एवं विमर्श केन्द्रीयता मुख्य रहे हैं।

3.7 शब्दावली

1. वर्तमानबोध - अपने समय की गति से परिचित होना।

2. स्वच्छंदतावाद- रूढ़ियों से मुक्ति का आन्दोलन

3. ऐंद्रियता - इस लोक के प्रति चेतना का भाव।

4. सेक्युलर - धार्मिक कट्टरता से परे का दर्शन

5. संश्लिष्ट - सम्पूर्ण, व्यापक रूप

5. विसंगति - सामाजिक व्यवस्था में संगति न होना

7. बिडम्बना - जीवन/समाज की चिन्तनीय स्थिति

8. लोकधर्मिता - लोक संवेदना का अनुभव।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 (ख)

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2 (क)

1. ऐतिहासिक 2. भक्ति श्रृंगार 3. बिम्ब 4. मानव 5. अंग्रजों

(ख) 1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3 (ख)

1. भारतेन्दु हरिशचन्द्र 2. छायावाद 3. राष्ट्रीय- सांस्कृतिक

4. मैथिलीशरण गुप्त 5. निराला

3.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिका सभा।

3. (सं) डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पब्लिकेशन।

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

3.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वर्मा, सं, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन

2. तिवारी, रामचन्द्र, रामचन्द्र शुक्लः आलोचना कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी पद्य की पृष्ठभूमि पर निबन्ध लिखिए।

2. मध्यकालीन कविता और आधुनिक कविता का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

3. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।

इकाई 4– खड़ी बोली हिंदी कविता का आरम्भ

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 आधुनिक हिंदी साहित्य

4.3.1 आधुनिक हिंदी कविता की पृष्ठभूमि

4.3.2 ब्रजभाषा साहित्य : गद्य एवं पद्य

4.4 ब्रजभाषा कविता औश्र खड़ी बोली की कविता

4.4.1 ऐतिहासिक विवाद एवं संवाद

4.5 खड़ी बोली हिंदी कविता का आरम्भ

4.5.1 खड़ी बोली हिंदी कविता का उद्भव

4.5.2 खड़ी बोली हिंदी कविता का विकास

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.9 संदर्भ ग्रंथ

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4. प्रस्तावना 1

इस पुस्तक में अब तक आपने भारत की आधुनिकता का अध्ययन किया है। इसी के साथ साथ आपने आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि और उसका प्रारम्भिक विकास का भी अध्ययन किया है। आपने देखा होगा कि यूरोप विशेषत: ब्रिटिश प्रभाव के कारण आधुनिक, पूंजीवादी और औद्यौगिक सभ्यता का प्रवेश भारत और विशेषत: हिंदी भू-भाग पर किस तरह

हुआ। इस सभ्यता ने न केवल सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर अपना प्रभाव डाला बल्कि वैचारिक और साहित्यिक स्तर पर भी अपनी स्पष्ट छाप छोड़ी। तत्कालीन ब्रिटिश शासन की विशेष भाषा नीति ने हिंदी साहित्य को भीतर तक प्रभावित किया तथा विभिन्न नवीन विधाओं को भी जन्म दिया।

प्राचीन और मध्यकालीन हिंदी साहित्य के कविता प्रधान रूप में बदलाव आया तथा हिंदी साहित्य अब गद्य प्रधान साहित्य बनने लगा गद्य साहित्यिक भाषा के स्तर पर भी आधुनिक हिंदी कविता पारम्परिक देशी भाषाओं विशेषकर ब्रजभाषा के स्थान पर आधुनिक खड़ी बोली को अपनाने लगी।

आधुनिक हिंदी कविता का उद्भव ब्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच एक गहरे विवाद के साथ हुआ। खड़ी बोली हिंदी कविता का विकास भाषा, शिल्प और नवीन विधाओं जैसे बाहरी स्वरूपों के साथ-साथ रचना और उसमें व्यक्त नवीन विचारों जैसे भीतरी परिवर्तनों के साथ हुआ। प्रस्तुत इकाई में आप इन्हीं बिंदुओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

4. उद्देश्य 2

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- आधुनिक हिंदी कविता की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे
- ब्रजभाषा के गद्य और पद्य साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ब्रजभाषा काव्य और खड़ी बोली हिंदी कविता के विवाद का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- खड़ी बोली हिंदी कविता का उद्भव एवं विकास को जान सकेंगे।

4. आधुनिक हिंदी साहित्य 3

इकाई के इस भाग में आप हिंदी साहित्य के आधुनिक कालीन स्वरूप के एक संक्षिप्त रूपरेखा का परिचय प्राप्त करेंगे। इस विषय में इस इकाई से पहले भी आपने विस्तार से इस विषय का अध्ययन किया है (याद करें इकाई संख्या – 01) आधुनिक हिंदी साहित्य के उद्भव को समझने के लिए हमें इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि हम जिस काल खण्ड का ज्ञान पा्रप्त करना चाहते हैं उस कालखण्ड की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति कैसी थी।

आधुनिक काल को साधारणत: ब्रिटिश काल से जोड़ कर देखने की प्रवृति है हालांकि यह एक बहुत साधारण सरलीकरण है लेकिन फिर भी मोटे तौर पर समझने के लिए हम इस दृष्टि का उपयोग कर लेते हैं। मध्यकाल के अंत के साथ ही यूरोप में औद्यौगिक सभयता और पूंजी पर आधारित

समाज की स्थापना हुई। भारत में मुगलकाल के साथ –साथ डचों, पुर्तगालियों, फ्रांसिसीयों और फिर अंत में अंग्रेज व्यापारियों का आगमन हुआ। अपनी आपसी लड़ाईयों के बाद अन्ततः अंग्रेज भारत में जम गए और व्यापार के साथ-साथ धीरे-धीरे अपना राजनैतिक प्रभाव भी बढ़ाने लगे।

मुगलकाल के अंत के साथ-साथ अंग्रेज पहले बंगाल फिर उत्तर भारत में सबसे बड़ी राजनैतिक, आर्थिक और सैन्य शक्ति बनते गए और उनके प्रभाव से उत्तर भारत में समाज, शिक्षा, राजनीति और आर्थिक क्षेत्रों में बड़े और स्थाई परिवर्तन होने लगे।

अध्ययनकर्ताओं ने इन परिवर्तनों को देखते हुए इनका बिंदुवार विश्लेषण यों किया –

1. नवीन शासन एवं न्याय-पद्धति। साथ ही सामन्तवाद का अन्त, मध्यम वर्ग का जन्म और साम्राज्यवादी राजनीतिक एवं आर्थिक शोषण और फलतः देश की अभूतपूर्व निर्धनता।
2. नवीन शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-विशेषतः रेल, तार और प्रेस जैसे वैज्ञानिक अविष्कारों का प्रचार।
3. नवोन शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान के प्रचार तथा देश के प्राचीन गौरव की स्मृति के फलस्वरूप सुधारवादो आन्दोलनों और नवोत्वान वा जन्म।
4. व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, स्वच्छन्द विचारों और अखण्ड राष्ट्रीयता का जन्म।
5.गद्य का हिन्दी साहित्य का अनिवार्य अंग बनना

6. साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की स्थापना (पहले गद्य और फिर कविता के क्षेत्र में)।
7. गद्य और काव्य-क्षेत्रों में विविध रूपों और साहित्य एवं कलात्मक आन्दोलनों का जन्म।
8. हिन्दी भाषा और साहित्य पर यूरोपीय विशेषतः अंगरेजी भाषा और साहित्य का प्रभाव।
('लक्ष्मीसागर बार्ष्णेय' पृष्ठ 234 – 235)

श्री लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने आधुनिक काल के हिंदी साहित्य की क्रमिक प्रगति को बहुत मनोरंजन और सरल रेखांकन के माध्यम से समझाने की कोशिश की है। विद्यार्थियों के उपयोग के लिए यहां उसको उद्धृत किया जा रहा है।

सुविधा की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी को आधुनिक काल का प्रारम्भ और क्रमशः भारतेन्तु युग और बींसवी शताब्दी को क्रमशः महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके बाद के हिंदी साहित्य का काल मानकर विद्यार्थियों को इस कालखण्ड को समझना होगा।

ब्रिटिशकाल

उन्नीसवीं शताब्दी

पूर्वार्द्ध	उत्तरार्द्ध

पद्य	गद्य	गद्य	पद्य
ब्रजभाषा	खड़ीबोली और स्फुट रूप में ब्रजभाषा	खड़ीबोली	ब्रजभाषा और खड़ीबोली

ब्रिटिशकाल

बीसवीं शताब्दी (प्रथम सैंतालीस वर्ष)

गद्य		पद्य	
खड़ीबोली		खड़ीबोली	स्फुट रूप में ब्रजभाषा

वही, वार्ष्णेय – पृष्ठ 235

इस प्रकार अब तक के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी आधुनिक हिंदी साहित्य तथा उसके एक अंग के रूप में आधुनिक हिंदी कविता की पृष्ठभूमि को जान चुके होंगे। अब हम आधुनिक हिंदी कविता की पृष्ठभूमि के एक और अंग के रूप में ब्रजभाषा साहित्य में लिखित गद्य एवं पद्य का परिचय प्राप्त करेंगे।

4.3.1 आधुनिक हिंदी कविता की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि की जानकारी हम सीधे हिंदी के सर्वमान्य आलोचक – इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल (4 अक्टूबर 1884-2 फरवरी 1941) द्वारा लिखित ख्यातनाम पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (प्रथम सं 1929) के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं।

2025 के पुनर्नवा संस्करण में पृष्ठ सं 449 में लिखा है कि "आधुनिक काल के पूर्व हिंदी गद्य का अस्तित्व किस परिमाण और किस रूप में था, संक्षेप में इसका विचार कर लेना चाहिए। अब तक साहित्य की भाषा व्रजभाषा ही रही है. इसे सूचित करने की आवश्यकता नहीं । अतः गद्य की पुरानी रचना जो थोडी-सी मिलती है वह व्रजभाषा ही में। हिंदी पुस्तकों की खोज में हठयोग, ब्रह्मज्ञान आदि से संबंध रखनेवाले कई गोरखपंथी ग्रन्थ मिले हैं जिनका निर्माण-काल संवत् 1407 के आसपास है। किसी-किसी पुस्तक में निर्माण-काल दिया हुआ है। एक पुस्तक गद्य में भी है जिसका लिखनेवाला 'पूछिबा', 'कहिबा' आदि प्रयोगों के कारण राजपूताने का निवासी जान पड़ता है। इसके गद्य को हम संवत् 1400 के आसपास के व्रजभाषा-गद्य का नमूना मान सकतेहैं"।

आगे आचार्य शुक्ल लिखते हैं - इसी प्रकार कि व्रजभाषा गद्य कि कुछ पुस्तकें इधर-उधर पाई जाती हैं जिनसे गद्य का कोई विकास प्रकट नहीं होता। साहित्य की रचना पद्म में ही होती रही। गद्य का भी विकास यदि होता आता तो विक्रम की इस शताब्दी के आरंभ में भाषा-संबंधिनी बड़ी विषम समस्या उपस्थित होती। जिस धड़ाके के साथ गद्य के लिये खड़ी बोली ले ली गई उस धड़ाके के साथ न ली जा सकती। कुछ समय सोच-विचार और वाद-विवाद में जाता और कुछ समय तक दो प्रकार के गद्य की धाराएँ साथ-साथ दौड लगातीं। अतः भगवान् का यह भी एक अनुग्रह समझना चाहिए कि यह भाषा-विप्लव नहीं संघटित हुआ और खड़ी बोली, जो कभी अलग और कभी व्रजभाषा की गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे-धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नए मैदान में दौड़ पड़ी।

व्रजभाषा गद्य का विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं - "गद्य लिखने की परिपाटी का सम्यक् प्रचार न होने के कारण व्रजभाषा-गद्य जहाँ का तहाँ रह गया। उपर्युक्त 'वैष्णव वार्ताओं' में उसका जैसा परिष्कृत और सुव्यवस्थित रूप दिखाई पड़ा वैसा फिर आगे चलकर नहीं। काव्यों की टीकाओं आदि में जो थोड़ा-बहुत गद्य देखने में आता थ वह बहुत ही अव्यवस्थित और अशक्त था। उसमें अर्थों और भावों को संबद्ध रूप में प्रकाशित करने तक की शक्ति न थी। ये टीकाएँ संस्कृत की 'इत्यमरः' और 'कथं भूतम्' वाली टीकाओं की पद्धति पर लिखी जाती थीं। इससे इनके द्वारा गद्य की उन्नति की संभावना न थी। भाषा ऐसी अनगढ़ और लद्धड़ होती थी कि मूल चाहे समझ में आ जाय पर टीका की उलझन से निकलना कठिन समझिए।

4.3.2 व्रजभाषा साहित्य : गद्य एवं पद्य

आज हिंदी गद्य साहित्य बहुत विकसित रूप में हमारे सामने है। लेकिन इस विकसित रूप को प्राप्त करने में उसे लम्बा सफर तय करना पड़ा। आइए देखें कि वर्तमान रूप में आने से पहले हिंदी गद्य को किन-किन रास्तों से गुजरना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले विभिन्न भारतीय भाषाओं की तरह हिंदी भाषा में भी गद्य रचनाएँ बहुत कम पायी जाती थीं। आज वर्तमान समय में हिंदी में

जितनी भी साहित्यिक रचनाएँ हो रही हैं वह खड़ी बोली में ही हो रही हैं। किन्तु प्राचीन काल में खड़ी बोली की रचनाएँ नगण्य रूप में ही पायी जाती हैं। उस समय साहित्य की भाषा ब्रजभाषा थी। बहुत दिनों तक ब्रजभाषा में ही साहित्यिक रचनाएँ होती रहीं। भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम काव्य रचना ही थी, किन्तु विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक अलग प्रकार की भाषा का प्रयोग होता था। बोलचाल का रूप लिए हुए यह भाषा गद्यात्मक भाषा ही थी। इस गद्यात्मक ब्रजभाषा में हमें कुछ रचनाएँ मिलती हैं। हिंदी गद्य साहित्य के विकास में ऐसी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्यतः समाज में दो प्रकार की भाषा का प्रचलन होता है। एक तो जनसाधारण की भाषा होती है और दसरी विद्वानों की। विद्वानों की भाषा आम आदमियों की भाषा से भिन्न होती है। प्रायः साहित्य में ऐसी ही भाषा का प्रयोग होता है। जनसाधारण की भाषा बोलचाल की होती है। विद्वानों को अपनी बात जनता तक पहुँचाने के लिए जनसाधारण की बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करना होता है। आरंभिक दिनों में उपदेशक या विद्वान अपने संदेश को जनता तक पहुँचाने के लिए जनसाधारण की बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करते थे। इस प्रकार गद्यात्मक भाषा का प्रयोग शुरू हुआ। इस प्रकार की गद्यात्मक भाषा द्वारा लेखक अपना संदेश जनता तक सुगमता से पहुँचा सकते हैं। आरंभिक ब्रजभाषा गद्य इसी रूप में पाया जाता है। काव्य ग्रंथों में व्यक्त विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए ग्रंथों की टीकाएँ गद्य की भाषा में ही लिखी गई। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "हिंदी साहित्य" के इतिहास में इसी प्रकार की एक गद्य रचना का उदाहरण दिया है। उनके अनुसार इस प्रकार के गद्य पुस्तक संवत् 1400 के आसपास का है और रचनाकार राजपूताने का निवासी जान पड़ता है।

इस प्रकार ब्रजभाष। गद्य रचना के छिटपुट उदाहरण हमें मिल जाते हैं। किन्तु इसकी विकसित परंपरा नहीं मिल पाती। प्रश्न उठता है कि आखिर ब्रज भाषा गद्य का विकास क्यों नहीं हो पाया। विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं, कि ब्रजभाषा में परिमार्जित गद्य क्षमता का विकास नहीं हो पाना ही इसके विकास में बाधा बनी। ब्रजभाषा में गद्य क्षमता का विकास क्यों नहीं हो पाया। हुआ यूँ कि ब्रजभाषा अपने सीमित क्षेत्र में ही बनी रही। भाषा के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसका संपर्क भाषा के रूप में विकास हो। यह प्रक्रिया ब्रजभाषा में नहीं हो पायी फलतः अपने क्षेत्र में ही उसे लोकप्रियता मिली बाहर नहीं। यही कारण है कि इसमें गद्य की क्षमता का विकास नहीं हो पाया। ब्रजभाषा काव्य के लिए तो बनी रही किन्तु गद्य का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया। चूँकि खड़ी बोली का विकास संपर्क भाषा के रूप में हुआ। अतः इसमें गद्य की क्षमता का विकास होता गया और आने वाले समय में यह गद्य साहित्य का आधार बन गई। पं. रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन कितना सटीक है कि "खड़ी बोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा की गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे-धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नए मैदान में दौड़ पड़ी। **इग्नू 'पृष्ठ 60-61**

4. ब्रजभाषा कविता और खड़ी बोली की कविता 4

शिक्षार्थी का इस बात पर ध्यान देंगे कि संसार की या हमारे देश की और किसी भी साहित्यिक परंपरा के साथ ऐसा बहुत कम ही होता है कि उसे साहित्यिक परंपरा में गद्य लिखने की भाषा अलग हो और पद्य लिखने की भाषा अलग हो (आशा है कि शिक्षार्थी गद्य और पद्य का अर्थ समझते होंगे) यह बहुत आश्चर्य की बात है कि खुद हिंदी की अपनी प्राचीन, आदिकालीन, भक्तिकालीन या रीतिकाल कविता परंपरा में भी गद्य पद्य जितना भी कम या ज्यादा लिखा जाता था उसकी भाषा एक ही होती थी।

प्रादेशिक भेद होते थे जैसे अवध प्रांत में अवधि का प्रयोग और ब्रज प्रांत में ब्रज का प्रयोग लेकिन ऐसा नहीं होता था की गद्य तो अवधि में ही लिखा जाए लेकिन पद्य ब्रजभाषा में।

लेकिन दुर्भाग्यवश आधुनिक हिंदी कविता के आरंभ में हम लगभग तीन दशकों तक असमंजस की यह स्थिति बनी रही और हिंदी साहित्यकारों के बीच गद्य और पद की भाषा अलग-अलग रहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे लक्षित करते हुए 'पुरानी काव्य धारा'और 'नई काव्य धारा' पर अलग-अलग विचार किया था। यदि विद्यार्थी हिंदी के साहित्य के इतिहास ग्रथों में इस कालखंड को खोजेंगे तो उन्हें आसानी से यह बात समझ आ जाएगी की हिंदी साहित्य आधुनिक काल के आरंभ में हिंदी में खड़ी बोली हिंदी की कविता भी लिखी जा रही थी और साथ ही ब्रजभाषा में भी कविता लिखी जा रही थी।

इस संबंध में सबसे दिलचस्प बात यह है कि उस समय के कई बड़े स्थापित साहित्यकार, कवि, संपादक आदि ब्रजभाषा में कविता को प्रोत्साहन दे रहे थे और खड़ी बोली हिंदी का विरोध कर रहे थे।

आइए, इकाई के अगले भाग में हम खड़ी बोली हिंदी कविता और ब्रजभाषा कविता के मध्य चल रहे विवाद का परिचय प्राप्त करें।

4.4.1 ऐतिहासिक विवाद एवं संवाद

शिक्षार्थी ध्यान देंगे कि हमारी परंपरा जिसको समग्र रूप में भारतीय साहित्यिक परंपरा (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश सहित समस्त प्रादेशिक साहित्यिक परम्पराएं) कहते हैं। इस परम्परा में गद्य और पद्य की स्थिति क्या है। बहुत हल्के विश्लेषण से ही पता चल जाता है कि इस परम्परा में कविता का स्थान गद्य के स्थान से बहुत ऊंचा और परिमाण में बहुत अधिक भी है। कविता की बहुत समृद्ध और विशाल परम्पराएं हैं। यही बात हिंदी साहित्यिक परम्परा पर भी लागू होती हैं। आधुनिक काल से ही व्यवस्थित गद्य लेखन की परम्परा का आरंभ होता है। इससे पहले गद्य लेखन कीपरम्परा बहुत क्षीण और छिटपुट ही रही है।

(इकाई के प्रारंभिक भाग को आप पुन: देख सकते हैं और आचार्य रामचंद्र शुक्ल उद्धत वाक्यों का पाठ फिर से कर सकते हैं)

इसलिए आधुनिक हिंदी साहित्य में जब नवीन गद्य लेखन की परम्परा का आरंभ किया तो प्राचीन गद्य लेखन परम्परा का कोई खास दबाव महसूस नहीं किया गया और हिंदी के लेखकों, विचारकों और पत्रकारों में बहुत आसानी से गद्य लेखन के लिए खड़ी बोली हिंदी को अपना अपना लिया गया लेकिन यह बात हिंदी कविता लेखन के लिए नहीं हो पाई।

रीतिकाल के अंत में और आधुनिक काल के प्रारंभ में ब्रजभाषा कविता की लगभग पांच छह शताब्दी पुरानीसुस्पष्ट, महान और स्थापितपरम्परा विद्यमान थी । साहित्यकारों, कवियों, आलोचकों और संपादकों के साथ-साथ रसिकों, आश्रयदाताओं और सामान्य पाठकों तक के मन में कविता की भाषा के रूप में ब्रजभाषा सम्मान सहित गहरे अंदर तक स्थापित थी। उसे महान काव्य भाषा परम्परा के स्वरूप को त्यागने और तोड़ने को कोई भी एक ही बार में तैयार नहीं हो सका। इसलिए बहुत दिनों तक हमारा हिंदी साहित्य का संसार खड़ी बोली हिंदी के गद्य साहित्य परम्परा के रूप में प्रतिष्ठा के बाद भी कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली हिंदी को स्वीकारने में झिझकता रहा। इस झिझक के साथ ही भारतेंदु ने स्वयं खड़ी बोली में कविता लिखने के प्रयास किए। अपने नाटकों में भी काव्यांक्षों में खड़ी बोली हिंदी को स्थान दिया लेकिन स्वयं को खड़ी बोली के लिए समर्पित नहीं किया और साथ ही लगभग प्रत्यक्ष ढंग से खड़ी बोली हिंदी को कविता के लिए अनुपयुक्त बता दिया।

हिंदी के आलोचक डॉक्टर बच्चन सिंह की एक किताब है **आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास** (शिक्षार्थियों से अनुरोध है कि वह अपने आसपास के पुस्तकालय से अथवा इंटरनेट के माध्यम से उसे किताब को खोजें और उसका अध्ययन करें) खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखते हुए खुद अपना बनाया हुआ एक दोहा उदधृत करते हुए उन्होंने लिखा –

भजन करो श्री कृष्ण का मिलकर के सब लोग

सिद्ध होगा कम और छूटेगा तब सोग

अब देखिए यह कैसी भोडी कविता है। उक्त निबंध में ही उन्होंने कहा है जो हो मैंने कई बार परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाउं पर वह मेरे चितानुसार नहीं (पृष्ठ 99)

हरिश्चंद्र उस समय हिंदी साहित्य संसार के स्थापित धुरी थे। जब उनका चित्त खुला ढंग से खड़ी बोली हिंदी के पक्ष में नहीं दिखा तो तत्कालीन हिंदी संसार के बहुत से मान्य साहित्यकारों, कवियों, संपादकों ने खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखने से खुद को पीछे कर लिया। इतना ही नहीं खुले तौर पर खड़ी बोली हिंदी कविता के विरोधियों ने खड़ी बोली पद्य का जमकर विरोध भी किया।

लेकिन श्री अयोध्या प्रसाद खत्री, श्रीधर पाठक जैसे कुछ मान्य साहित्यकारों ने खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखने के प्रयासों को सहारा भी दिया और स्वयं खड़ी बोली हिंदी में कविता लिखी भी। "मुजफ्फरपुर निवासी अयोध्याप्रसाद खत्री को गद्य-पद्य कि अलग अलग भाषा देखकर बहुत दुःख होता था। बोलचाल की भाषा यानी खड़ी बोली में कविता लिखने के लिए उन्होंने एक आन्दोलन ही खड़ा कर दिया। खत्रीजी ने खड़ी बोली पद्य की एक पुस्तक तैयार की जिसमें बहुत लोगों की रचनाएँ संग्रहीत की गयीं। सन् 1887 में इसका प्रकाशन हुआ। भारतेन्द्र का उल्लेख करते हुए प्रतापनारायण मिश्र और ग्रियर्सन ने इस प्रयास को कोई महत्त्व नहीं दिया। इस आन्दोलन को लेकर 'हिन्दोस्तान' में (नवंबर, 1887 से अप्रैल, 1888 तक) छह महीने तक विवाद चलता रहा। श्रीधर पाठक और अयोध्याप्रसाद खत्री ने खड़ी बोली का पक्ष लिया तथा प्रतापनारायण मिश्र और राधाकृष्ण गोस्वामीनेब्रजभाषाका। (हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह, पृष्ठ 309/310)

यह सब होते हुए भी भारतेन्दु मंडल के अधिकांश लोगों ने खड़ी बोली में पद्य लिखे। किन्तु 'सरस्वती' के प्रकाशन के पूर्व तक गद्य-पद्य की भाषा की समस्या हल न हो सकी। इस समस्या का हल महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ही किया।

हम अपने विद्यार्थियों से आशा करते हैं कि वह हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों को खोज कर खड़ी बोली हिंदी और ब्रजभाषा कविता के मध्य चले इस महत्वपूर्ण और मनोरंजन विवाद को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे। शिक्षार्थियों की सहायता के लिए इकाई के अंत में उपयोगी पुस्तकों को खोज कर पढेंगे।

4. खड़ी बोली हिंदी कविता का आरंभ 5

भविष्य में तय कर दिया कि निश्चित ही खड़ी बोली हिंदी के समर्थकों की दिशा सही थी। समय खड़ी बोली हिंदी के तरफ ही जा रहा था जब राजकाज और समाज की भाषा गद्य और सार्वजनिक क्षेत्र में खड़ी बोली हिंदी की थी तो कविता कब तक उस प्रभाव से अछूती रहती। धीरे-धीरे ब्रजभाषा कविता के समर्थकों की स्थिति क्षीण होती गई और खड़ी बोली हिंदी कविता हिंदी साहित्य और हिंदी समाज के मंच पर स्थापित हो गई और निश्चित ही (जैसा कि शिक्षार्थियों में ऊपर पड़ा) इस क्रमिक विकास प्रक्रिया में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1884 -1938) और उनकी सर्व प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका सरस्वती (1903) और उससे पूर्व स्थापित संस्था नागरी प्रचारिणी सभा (1893) की भूमिका महत्वपूर्ण है नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना बाबू श्याम सुंदर दास, श्री राम नारायण मिश्र और श्री शिव कुमार सिंह के प्रयासों से हुई। नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोजऔर महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन का महत्वपूर्ण कार्य किया। इसी संस्था ने सन् 1910 में हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना की। जब इंडियन प्रेस इलाहाबाद के श्री चिंतामणि घोष ने 'सरस्वती'

का प्रकाशन प्रारंभ किया तो सर्वप्रथम बाबू श्याम सुंदर दास ने इसका संपादन किया था। सन् 1903 से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती का संपादन आरंभ किया और नए हिंदी निबंधकारों और खड़ी बोली हिंदी के कवियों को न केवल प्रोत्साहित किया बल्कि एक संपादक के रूप में हिंदी कविता के विषयों, शिल्प एवं भाषा नीति को हिंदी पाठकों के समक्ष रखा। कहना ना होगा कि महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बहुत सफलतापूर्वक हिंदी गद्य एवं पद्य के विकास में अपनायोगदान दिया।

4.5.1 खड़ी बोली हिंदी कविता का उद्भव

खड़ी बोली हिंदी कविता का अपना क्रमबद्ध इतिहास रहा है। आधुनिक काल से बहुत पहले ही आगरा और दिल्ली के आसपास की बोली से इसका विकास हुआ। आठवीं नवी शताब्दी के आसपास प्रचलित अपभ्रंश पर इसका प्रभाव देखा गया है। हिंदी के आदिकालीन कविता और गद्य साहित्य की रचनाओं में हिंदी के भाषा रूपों को देखा जा सकता है। नाथों, सिद्धों, जैन कवियों से लेकर हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण तक इसके कतिपय रूपों को खोला जा चुका है। अमीर खुसरो की कविता मैं खड़ी बोली हिंदी भाषा का कंचित स्पष्ट रूप पाया गया है। 14-15 वीं शताब्दी के दक्षिण के मुसलमान कवियों की कविताओं में दक्खिनी हिंदी के रूप में भी खड़ी बोली हिंदी के क्रमिक विकास और विस्तार के उदाहरण हैं। खड़ी बोली के भाषा रूपों का यही विस्तार महाराष्ट्र के भक्ति कालीन कविता में देखा जा सकता है। इस सब को पृष्ठभूमि के रूप में बहुत संक्षेप में शिक्षार्थियों को बताने का उद्देश्य मात्र इतना है कि आधुनिक काल और भारतेंदु युग और उसके पश्चात के खड़ी बोली हिंदी कविता के उद्भव एवं विकास को समझने में सहायता होगी। शिक्षार्थियों को इस विकास को समझने के क्रम में यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि आधुनिक हिंदी कविता में प्रत्यक्ष काव्य भाषा के रूप में स्थापित होने से पहले ही खड़ी बोली हिंदी ने लोकनाट्य, लोक रागों और साथ ही उर्दू काव्य परंपरा के भीतर अपना स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रभाव बना लिया था। यदि शिक्षार्थी 18वीं 19वीं शताब्दी के लोकनाट्य पारसी थिएटर लावणी दादर ठुमरी ख्याल के साथ ही अमीर ग़ालिब और अन्य उर्दू कवियों की कविताओं को ध्यान में लेंगे तो वह इस क्रमिक विकास को और अधिक आसानी से समझ सकेंगे।

4.5.2 हिंदी कविता का विकास

आपने इकाई के अब तक के अध्ययन से जाना कि खड़ी बोली हिंदी कविता की पृष्ठभूमि क्या थी। खड़ी बोली हिंदी कविता का संघर्ष क्या था, खड़ी बोली हिंदी कविता ने लगभग 1000 साल तक धीरे-धीरे कैसे यात्रा की और अंततः 19वीं शताब्दी के बाद उसकी कैसे कविता की मुख्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठा हुई। भारतेंदु युग में खड़ी बोली हिंदी कविता ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। भारतेंदु की झिझक के बाद कई लेखकों ने इसका विरोध किया लेकिन श्री अयोध्या प्रसाद खत्री

और हिंदी से भी फ्रेडरिक के सैद्धांतिक संघर्ष और श्रीधर पाठक के सृजनात्मक कार्यों ने खड़ी बोली हिंदी कविता परंपरा में प्राण छोड़ दिए श्रीधर पाठक के किए गए अनुवाद के रूप में एकांतवासी योगी (1866) से उजड़ ग्राम और जगत सच्चाई सार (1987) ने खड़ी बोली हिंदी को भविष्य में हिंदी कविता की मूल भाषा के रूप में स्थापित करने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4. सारांश 6

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- आधुनिक हिंदी कविता की पृष्ठभूमि को समझ गए होंगे
- ब्रजभाषा के गद्य और पद्य साहित्य का परिचय से अवगत हो गए होंगे ।
- ब्रजभाषा काव्य और खड़ी बोली हिंदी कविता के विवाद का परिचय प्राप्त कर लिया होगा।
- खड़ी बोली हिंदी कविता का उद्भव एवं विकास जान लिया होगा।

4. शब्दावली 7

1- **औद्योगिक सभ्यता** – उद्योग और कारखानों पर आधारित समाज व संस्कृति

2- **गद्य** – लेखन की वह शैली जिसमें छंद और तुकांत नहीं होते, सीधा-सरल गद्य रूप।

3- **पद्य** – कविता का रूप, जिसमें छंद, लय और तुकांत का प्रयोग होता है।

4- **ब्रजभाषा** – हिंदी की एक प्राचीन साहित्यिक भाषा, मुख्यतः ब्रज क्षेत्र में प्रचलित।

5- **खड़ी बोली** – आधुनिक हिंदी की आधारभूत बोली, दिल्ली–मेरठ क्षेत्र में विकसित।

6- **संपर्क भाषा** – वह भाषा जो विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों के बीच संचार का माध्यम बनती है।

7- **प्रभाववाद** – किसी विचार, संस्कृति या भाषा का दूसरे पर असर डालना।

8- **आलोचक** – साहित्य या कला की समीक्षा करने वाला विद्वान।

4. अभ्यास प्रश्न 8

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास ग्रन्थ का नाम बताइये ?

2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास किसने लिखा ?

3. खड़ी बोली कविता के समर्थक कवि का नाम बताइये |

4. कड़ी बोली के सैधांतिक समर्थक का नाम बताइये |

4. संदर्भ ग्रन्थ 9

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल -
2. हिंदी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मीसागर बार्ष्णेय
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डा. बच्चन सिंह
4. परस्पर – राजीव रंजन गिरी

4.10 **निबंधात्मक प्रश्न**

1. खड़ी बोली हिंदी कविता के उद्भव एवं विकास पर एक निबन्ध लिखिए |

इकाई 5 हिंदी कविता की भाषा का संदर्भ:प्रयोग एवं समस्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 हिंदी कविता की भाषा का संदर्भ: प्रयोग एवं समस्या

5.3.1 भाषा और समाज

5.3.2 कविता की भाषा: प्रयोग एवं समस्या

5.3.3 हिंदी कविता की भाषा

5.4 हिंदी कविता की भाषा का ऐतिहासिक संदर्भ

5.4.1 प्राचीन कालीन हिंदी कविता की भाषा

5.4.1.1 आदिकालीन कविता की भाषा

5.4.1.2 भक्तिकालीन कविता की भाषा

5.4.1.3 रीतिकालीन कविता की भाषा

5.4.2 आधुनिक हिंदी कविता की भाषा

5.4.2.1 स्वतंत्रता पूर्व हिंदी कविता की भाषा

5.4.2.2 स्वतंत्रता पश्चात हिंदी कविता की भाषा

5.5 हिंदी कविता की भाषा का आलोचनात्मक संदर्भ

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास क्रम में मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार है - भाषा। भाषा ही वह माध्यम है जो हमें अभिव्यक्त करता है। किसी व्यक्ति की पहचान इससे हो सकती है कि वह किस भाषा (शब्द , प्रतीक , विंब, मुहावरें - लोकोक्तियां) का प्रयोग करता है। किसी जाति (संस्कृति) की मुख्य पहचान यह हो सकती है कि वह किस भाषागत प्रत्ययों का प्रयोग करता है यानी अभिव्यक्तिकरण का मुख्य साधन भाषा ही है। इस दृष्टि से किसी समृद्ध साहित्य की

मुख्य पहचान यह हो सकती है कि वह भाषागत दृष्टि से कितना समृद्ध है। उस साहित्य में उस देश -प्रदेश के सपने - आकांक्षा , हर्षोल्लास, आनंद -उमंग, जीवनेच्छा किस हद तक अभिव्यक्त हो सके हैं। समाज - संस्कृति- साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी तय होती है भाषा से। भाषा सांस्कृतिक - कर्म है। कह सकते हैं कि साहित्य संस्कृति का उच्च अंश है, समृद्ध अंश है। अतः साहित्य की भाषा के संदर्भ पर विचार करना अपने आप में महत्वपूर्ण बिन्दु है।

5.2 उद्देश्य

आधुनिक एवं समकालीन कविता की इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

- भाषा और समाज के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- सामान्य भाषा और साहित्य की भाषा का अन्तर समझ सकेंगे।
- हिंदी कविता की भाषा के सामान्य एवं विशिष्ट स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- हिदीं कविता के प्राचीन एवं नवीन स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी कविता के भाषागत प्रयोगो की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- हिंदी कविता के भाषागत प्रदेश को समझ सकेंगे।
- हिंदी कविता के विभिन्न प्रयोगों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.3 हिंदी कविता की भाषा का संदर्भ

प्रयोग एवं समस्या किसी भी समृद्ध समाज एवं संस्कृति की एक मुख्य पहचान हो सकती है कि वह परिवर्तन शीलता को कितना धारण किए हुए है। क्योंकि अपने मूल रूप में समाज - संस्कृति परिवर्तनशीलता प्रक्रिया है।

कार्ल मार्क्स और फेड्रिक एंगेल्स को ऐतिहासिक भौतिकतावाद के तहत अब तक के समाज को विकसनशील क्रम मे कई मंजिलों में विभाजित किया है। और दिखाया है कि हर युग के अन्दर ही भावी युग के विकास के चिह्न मौजूद होते हैं। पिछले युग के अंतविरोध के बीच अगले युग का जन्म होता है। विकास की यह प्रक्रिया इतिहास में हमशा चलती रहती है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को हम भाषा के माध्यम से सबसे अच्छी तरह समझ सकते है। उसमें साहित्य की भाषा का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि इतिहास की भाषा तथ्यों पर आधारित होती है साहित्य , की भाषा सर्वाधिक सृजनात्मक होती है क्योंकि साहित्य की भाषा संवेदना पर आधारित होती है। साहित्य में भी कविता की भाषा में कम - से - कम शब्दों में अधिक -से -अधिक अर्थ ग्रहण करने की क्षमता होती है। एक युग के बदल जाने पर साहित्य - कविता का आना स्वाभाविक है। साहित्यिक अध्ययन के दौरान समस्या तब पैदा होती है जब युग समाज की बदली हुई मनोवृत्ति

को कविता की भाषा में पूरी तरह संगति नहीं दिखाई देती । कविता बदले हुए युग - समाज की मनोवृत्ति को पकड़ने की सृजनात्मक प्रयास है। सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में संक्रान्तिकाल की भाषा अस्पष्टता लिए हुए होती है। कभी -कभी खुद लेखक /कवि के विचार अस्पष्ट होते है। कभी कविता में युग-संदर्भ का सांकेतिक प्रयोग होता है तो कभी बोली - भाषा का गूढ़तम प्रयोग। कभी ऐसी भी स्थिति आती है जब भाषा में लेखक निजी प्रयोग करता है और वह प्रयोग अस्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार कविता की भाषा प्रयोगों की अनवरत श्रृंखला है। प्रयोग की विविधता उसे वैविध्य और विस्तार दोनों करती है।

5.3.1 भाषा और समाज

भाषा और समाज का संबंध अनिवार्य रूप से एक दूसरे की विकास प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। अपने प्राथमिक रूप में भाषा सम्प्रेषण का साधन है, अपने व्यावहारिक रूप में भाषा मानसिक संकल्पना है। अपने उद्देश्यपरक रूप में भाषा सामाजिक गतिविधियों को संचालित करने वाला माध्यम है तथा अपने उच्च रूप में भाषा संस्कृति को धारण करने वाली क्रिया । भाषा न केवल व्याकरणिक इकाई है बल्कि संस्थागत प्रतीक होने के साथ ही सामाजिक अस्मिता का सशक्त माध्यम भी है। हर भाषा में निश्चित समुदाय के व्यक्तियों की भावना , चिंतंन और जीवन-दृष्टि के धरातल पर एक-दूसरे के नजदीक लाती है और उन्हें जोड़ती है।कह सकते है कि हर समाज की संस्कृति को प्रतिविम्बित करने वाली वस्तु भाषा ही है।

5.3.2 कविता की भाषा: प्रयोग एवं समस्या

बोलचाल की भाषा और साहित्य की भाषा में मूलतः कोई अंतर नहीं है। दोनों का आधार समान है और उनका उद्देश्य सम्प्रेषण ही है। लेकिन अपनी प्रक्रिया और अभिव्यक्ति में काव्यभाषा सामान्य बोलचाल की भाषा से भिन्न हो जाती है। सामान्य बोलचाल के शब्दों को अधिक अर्थवान , सार्थक ,सृजनात्मक , अर्थगर्भी , क्रियाशील बनाने की प्रक्रिया में कविता की भाषा का जन्म होता है।इस प्रकार दोनो का मूल स्रोत समाज ही है , लेकिन दोनों में बहुत अन्तर है। सामान्य बोलचाल की भाषा स्थूल ,तथ्यात्मक होती है। वह अर्थ के धरातल पर बहुरूपता को धारण नहीं करती । जबकि काव्य भाषा सूक्ष्म, अनुभवधर्मो तथा बहुअर्थी होती है। आनन्दवर्द्धन तथा अभिनवगुप्त ने काव्यभाषा का प्राण व्यंजना को माना है, जिसके अनुसार काव्यभाषा अर्थ की वृहत्तर छवियों को अपने आप में धारण किए हुए होती है। भामह अलंकार के तत्व को प्रधान मानते है वहीं कुन्तक वक्रोक्ति को काव्यभाषा का प्रधान गुण मानते हैं। वामन ने काव्य भाषा का प्रधान गुण रीति को माना है। संस्कृत काव्यशास्त्र में अदोष कविता को ही महत्वपूर्ण समझा गया है। काव्यगुणों की परिकल्पना इसी संदर्भ में की गई है। काव्यगुण का अर्थ है- कविता की भाषा में मार्धुय , ओज और प्रसाद गुणों की उपस्थिति । यानी कविता की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो मधुरता , ओजत्व एवं व्यपकत्व के गुणों को अपने मे धारण कर सके। आनन्दवर्द्धन ने काव्य भाषा

का प्रधान गुण झटिति भासित को माना है। झटिति भासित का अर्थ तुरन्त समझ में आ जाए , ऐसे काव्यगुण ये है। आई.ए रिचर्डस ने काव्य भाषा को चार गुणों से युक्त माना है - अभिधेयार्थ ,भावना , पाठक के प्रति वक्ता की अभिवृत्ति तथा उद्देश्य आचार्य विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्यभाषा में चमत्कार को मुख्य माना है। चमत्कार के तत्वों में उन्होंने विस्मय , चित्त-विस्मय, तीव्र भावबोध , लोकोतरत्व , रमणीयत्व , अलंकारित्व , रसाप्मकता ,अंतश्चमत्कार रूप आननदानुभूति , आह्लादजनक, वक्रता और उक्ति वैचित्य को माना है। काव्य भाषा के संदर्भ में ही काव्य दोषों पर भी विचार किया गया है। काव्य भाषा के परम्परागत रूपों के अतिरिक्त आधुनिक युग में साहित्य शास्त्रियों ने भाषा पर नये ढंग से विचार किया है। काव्यभाषा के संदर्भ में अग्रगामिता शब्द का प्रयोग शैली विज्ञान में किया गया है। कवि जब सामान्य भाषा की घिसी-पिटी अभिव्यक्तियों और संप्रेषण के नियम को तोड़ता हुआ कवि ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, तब उसे अग्रगामिता कहा जाता है। कथन की भंगिमा का महत्व ही इसके केंद्र में है। इसके पैटर्न में सामानान्तरता सर्वाधिक उल्लेख है। काव्यभाषा की समझ के लिए एक दूसरा शब्द दिया गया है। - अनेकार्थता / अस्पष्टता का । इसे समीक्षात्मक शब्दावली बनाने का श्रेय विलियम एम्पसन को है। उन्होंने सन् 1930 में ‘ सेविन टाइम्स ऑफ एम्बिग्युइटी ‘ नामक पुस्तक में इस शब्द पर विचार किया है। अरन्तु ने इसे दोष माना है। भाषागत अस्पष्टता को भारतीय काव्यशास्त्र में भी दोष ही माना गया है। भाषा -वैज्ञानिकों ने साहित्यक भाषा के सामान्यतः दो स्तर माने हैं।- उपरली संरचना (सरफेस स्ट्रक्चर) और आंतरिक संरचना (डीप स्ट्रक्चर) ,एम्बिग्युइटि का संबंध आन्तरिक संरचना के विभिन्न अर्थ - स्तरों से है। अनेकार्थता का संबंध भारतीय काव्यशास्त्र की शब्द शक्तियों से काफी साम्य रखता है। आधुनिक समीक्षा में इल्लॉजिकल मीनिंग की चर्चा की गई है। हिंदी मे इसे ‘ काव्य न्याय ’ कहा गया है। वस्तुतः काव्य का न्याय शास्त्र के न्याय से भिन्न होता है। काव्यन्याय का मूल आधार डॉ0बच्चन सिंह ने वक्रोक्ति’ को माना है , किन्तु इसमें बदली हुई युग संवेदना की अभिव्यक्ति मुख्य होती है न कि कथन - भंगिमा की ।

इसी संदर्भ में ‘ ग्रामर ऑफ पोएट्री ‘ की चर्चा भी हुई है। श्रेष्ठ कविता केवल व्याकरणिक रूप से ही उत्तम नहीं होती बल्कि शब्दों में प्रयोजन की गरिमा भी होनी चाहिए। काव्य भाषा के संदर्भ में नाद एव लय की चर्चा भी होती रही हैं। नाद के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - ‘ नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढती है। नाद का अर्थ ध्वनि से ही है। भाषा के संदर्भ में लय का प्रयोग आचार्य अभिनवगुप्त ने भी किया है। काव्य भाषा के संदर्भ में लय पर नये ढंग से छायावादी कविता मे विचार किया गया है। पंत के ‘पल्लव’ की भूमिका तथा निराला के ‘ गीतिका’ में ‘नवगति ,नवलय ,ताल, छंद नव’ का प्रश्न उठाया गया है। पश्चिम और बंगला मे भाषा के संदर्भ में लय और संगीत के काफी प्रयोग हुए हैं। काव्य के संदर्भ में ‘तनाव’ पर भी लम्बी चर्चा हुई है। जान डेवी , हूल्मे , कॉलरिज , हेनरी जेम्स ने भी इस सम्बन्ध मे विचार किया है। एलेन टेट ने तनाव की सैद्वान्तिकी गढ़ी है। तनाव का अर्थ है - टकराहट , संघर्ष। काव्य भाषा में कवि एक

अभिधार्थ का प्रयोग करता है, दूसरे एक आन्तरिक अर्थ की भी सृष्टि करता है। अभिधार्थ को एलेट टेट 'एक्सटेंशन' कहता है तथा आन्तरिक अर्थ को 'इन्टेंशन' । 'एक्सटेंशन' तथा 'इन्टेंशन' भारतीय काव्यशास्त्र के अभिधार्थ तथा व्यग्यार्थ के जैसे ही हैं , किन्तु युगीन संरचना में भाषा का कार्य बदल गया है ।

काव्य भाषा की सैद्वान्तिकी पर संक्षिप्त चर्चा के बाद आइए अब हम कविता की भाषा के प्रयोगात्मक समस्या पर निर्भर करें । हम जानते हैं कि साहित्य की भाषा सामाजिक गतिशीलता के कारण नित्य नये-नये रूप ग्रहण करती रहती है । कविता भाषा की प्रयोगशीलता सप्य के अन्वेषण का मार्ग है। कविता का विषय और कविता की भाषा का संबंध गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। विषय के अनुसार रूप या भाषा का निर्माण होता है तथा भाषा विषय को संयोजित करती है। इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। समस्या तब खड़ी होती है जब बदली हुई विषय वस्तु को भाषा पूरी तरह सम्प्रेषित नहीं कर पाती । कभी - कभी ऐसा भी होता है कि भाषा बनने की प्रक्रिया में हो और उसमें अस्पष्टता रहे । किसी कवि या लेखक के व्यक्तिगत प्रयोगों के कारण भी भाषागत समस्या होती है । हर युग में काव्य के प्रयोग पाठक के सामने समस्या उत्पन्न करते है।

5.3.3 हिन्दी कविता की भाषा -

हिंदी कविता की भाषा के संदर्भ में प्रयोग एवं समस्या पर विचार करना कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। हिंदी कविता की भाषा अपने प्रारम्भिक समय ये ही कई प्रकार की बोलियों - भाषाओं से प्रेरणा - ऊर्जा ग्रहण करती रही है। सही ढंग से कहा जाय तो यह कि हिंदी कविता लम्बे सांस्कृतिक संपर्क का परिणाम हैं। हिंदी भाषा के विकास क्रम को देखने से यह बात और स्पष्ट हो जाती है

हिंदी भाषा का विकास क्रम

1500 ई.पू.	**-**	**500 ई.पू.**	**-**	**संस्कृत**
500 ई.पू.	**-**	**1 ई.**	**-**	**पालि**
1 ई.	**-**	**500 ई.**	**-**	**प्राकृत**
500 ई.	**-**	**1000 ई.**	**-**	**अपभ्रंश**
1000	**-**	**1200ई0**	**-**	**अवहट्ट/पुरानी हिन्दी**

पुरानी हिन्दी वस्तुतः संधिकाल की भाषा है, जब अपभ्रंश हिंदी में ढल रही थी । कहने का अर्थ यह है कि हिंदी भाषा और हिंदी कविता कोई एक विषय नहीं हैं, यह एक संस्कृति है ।

वैसे तो हर समृद्व भाषा एक संस्कृति का ही प्रतिनिधित्व करती है , किन्तु हिंदी भाषा सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। हिंदी भाषा की इसी व्यापकता को ध्यान में रखकर ही डॉ0रामविलास शर्मा जैसे उद्भट विद्वान हिंदी को मात्र एक भाषा तक सीमित न रखकर उसे एक 'जाति' की संज्ञा देते हैं और 'हिंदी जाति' कहते हैं। यह 'हिंदी जाति' जातीय चेतना का प्रतीक भी है और सांस्कृतिक कृतित्व का परिचायक भी है।

प्रयोग की दृष्टि से भी हिंदी कविता पर्याप्त समृद्व रही है। हर वह व्यक्ति , जाति , समाज ,राष्ट्र उन्नित के शिखर को छूता है जो प्रयोगशील होता है। भाषा के संदर्भ में भी यही नियम लागू होता है। प्रयोगशीलता भाषा के संदर्भ में बहुत महत्व रखती है , क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में मानवीय अनुभूतियों की बदलाव प्रक्रिया भी चलती रहती है। अनुभूति के बदलाव प्रक्रिया भी चलती रहती है अनुभूति के बदलाव प्रक्रिया को समृद्व भाषा ही पकड़ सकती है । हिंदी भाषा के लगभग 1000 वर्षो का इतिहास प्रयोग वैविध्य का सुन्दर नमूना हैं। आगे के बिन्दुओं में हम हिंदी कविता के भाषा परिवर्तन एवं वैविध्य का अध्ययन करेंगे ।

अभ्यास प्रश्न 1-

(क) सत्य/ असत्य बनाइए:-

(1) भाषा सांस्कृतिक - कर्म हैं ।

(2) सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए भाषा सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है।

(3) कविता की भाषा के निश्चित अर्थ होते है।

(4) कविता की भाषा सांकेतिक होती है।

(5) आई0ए0 रिचर्ड्स ने काव्य भाषा के गुणों पर विचार किया है।

(ख) निचे दिये गये वाक्यों को सही शब्द का चुनाव कर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए ।

1) भारतीय काव्यशास्त्र में मुख्यतः........................गुणों पर विचार किया गया है।

2)................................ ने काव्यभाषा का प्रधान गुण 'झटिति भासित' माना है।

3)................................. ने काव्यभाषा में चमत्कार को मुख्य माना है।

4) 'अग्रगामिता' शब्द का प्रयोग .... में किया गया है।

5) 'सेविन टाईम्स ऑफ एम्बिग्युइटी' पुस्तक के लेखक.............................. हैं।

5.4 हिंदी कविता की भाषा का ऐतिहासिक संदर्भ

पिछले विन्दु में आपने हिंदी भाषा की सांस्कृतिक पीठिका का अध्ययन कर लिया है। इस विन्दु में आइए हम हिंदी कविता की भाषा को उसके ऐतिहासिक संदर्भो में समझें और विश्लेषित करें। अब तक आपको ज्ञात हो चुका है कि हिंदी कविता का इतिहास लगभग 1000 वर्षो का है। इतने लम्बे समय मे भारतीय समाज राजपूत काल से लेकर सल्तनत काल , लोदी वंश ,गुलाम वंश ,मुगल वंश के अतिरिक्त ब्रिटिश औपनिवेशिक दासता का साक्षी रहा है। सामाजिक-घात- प्रतिघात की इस प्रक्रिया में भाषाई बदलाव कम नहीं हुए हैं। मुस्लिम सत्ता स्थापित होने के बाद जहॉ भारतीय भाषाओ के ऊपर अरबी-फारसी भाषा का प्रभाव पड़ा है, वहीं अंग्रेजी शासनकाल के प्रभाव से यूरोपीय भाषाओं ,विशेषकर अंग्रेजी भाषा , के शब्द भी बहुतायत आ गये है। सन्1990 के बाद भूमण्डलीकरण -वैश्वीकरण के प्रभाव से अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग का प्रयोग ज्यादा ही तेज हो गया है। भाषाई चिन्हों में आये बदलाव की यह प्रक्रिया सांस्कृतिक बदलाव की ही सूचक हैं। आगे हम हिंदी कविता के व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से हिंदी कविता की भाषा के सृजनात्मक अंशों का साक्षात्कार करेंगे।

5.4.1 प्राचीन कालीन हिंदी कविता की भाषा

हिंदी साहित्य या कविता के काल विभाजन के संदर्भ में मोटे तौर पर प्रथमतः दो विभाजन किये जाते हैं - प्राचीन साहित्य या कविता का और आधुनिक साहित्य या कविता का। इस विभाजन के पीछे तर्क यह है कि विषयवस्तु, रूप तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से नयी कविता या आधुनिक कविता प्राचीन कविता से भिन्न किस्म की कविता रही है। प्राचीन कविता संबंधित इसी अवधारणा के चलते ही हमने आदिकालीन , भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कविता को प्राचीन कालीन हिंदी कविता के अंतर्गत रखा है। कुष्ठ लोग आदिकाल को प्राचीन कविता तथा भक्तिकाल एवं रीतिकाल की कविता को मध्यकालीन कविता के अंतर्गत रखते हैं। ‘मध्यकाल’ की जगह हमने ‘प्राचीन’ शब्द रखा है। आधुनिक कालीन कविता की संवेदना और अभिव्यक्ति कई दृष्टि से प्राचीन कविता से भिन्न रही है। प्राचीन कविता की वह कौन सी अंतर्निहित विशेषता रही है , जिसके कारण अलग किस्म की , अलग मूड की कविता दिखती है , आइए अब हम प्रमुख कविता आन्दोलन की भाषा के संदर्भ से भारतीय समाज को समझने का प्रयास करें।

5.4.1.1 आदिकालीन कविता की भाषा

आदिकाल का समय लगभग 1000 वर्ष से 1400 ईसवीं तक का माना जाता है। कुछ लोग 1350 ईसवीं तक भी समाप्त काल स्थिर करते हैं। हमे स्मरण रखना चाहिए कि यह काल भयानक रूप से अशान्ति का काल रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे ‘ स्वतोन्याघातों का युग ‘ कहते हैं। अस्थिरता की इस प्रवृत्ति का आदिकालीन कविता की भाषा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। काव्यगत

प्रवृत्ति की ही तरह आदिकालीन कविता की भाषा को भी हम स्थिर नहीं कर सकते। सिद्वों की भाषा अपभ्रंश के निकट है तो नाथों की राजस्थानी - पंजाबी के। जैन कवियों की भाषा पर गुजराती प्रभाव है तो रासों काव्य पर दिल्ली और राजस्थान का संयुक्त प्रभाव। इन सबके साथ लोकभाषा तो चल ही रही थी। फिर आदिकाल के काल-विभाजन के संदर्भ में विद्वानों में एक साथ नहीं है। रामकुमार वर्मा , डॉ0 नगेन्द्र,मिश्रबन्धु , राहुल सांकृत्यायन जैसे अहयेता 7वीं शताब्दी से आदिकाल की शुरूआत मानते हैं जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामस्वरूप चतुर्वेदी,रामविलास शर्मा जैसे विद्वान 10-11 वीं शताब्दी से। इस मत- भिन्नता के मूल में यह प्रश्न है कि अपभ्रंश को हिंदी साहित्य में शामिल किया जाये या नहीं। रामकुमार वर्मा, डॉ0नागेन्द्र , मिश्रबन्धु ,राहुल सांकृत्यायन जैसे अध्येता 7वीं शताब्दी से आदिकाल की शुरूआत मानते हैं जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी ,रामस्वरूप चतुर्वेदी,रामविलास शर्मा जैसे विद्वान 10 वीं 11वीं शताब्दी से। इस मत भिन्नता के मूल मे यह प्रश्न है कि अपभ्रंश को हिंदी साहित्य में शामिल किया जाये या नहीं। 7वीं शताब्दी से आदिकाल का प्रारम्भ करने वाले अध्येयता अपभ्रंश को आदिकाल में समाविष्ट करते हैं जबकि 10-11वीं शताब्दी से आदिकाल मानने वाले अध्येता खड़ी बोली से हिंदी साहित्य का प्रारम्भ मानतें है। आदिकाल की भाषा के संदर्भ में हम महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान खोजनें की कोशिश करें , उससे पूर्व आइए , हम आदिकाल की भाषा - विभिन्नता को एक तालिका के माध्यम से देखें -

आदिकाल की कविता: भाषाई भिन्नता

सिद्ध साहित्य ↓ **नाथ साहित्य** ↓ ↓ **जैन साहित्य** ↓ **रासो साहित्य** ↓
लौकिक साहित्य

अपभ्रंश भाषा अपभ्रंश प्रभावित राजस्थानी गुजराती अपभ्रंश
राजस्थानी पूर्वो भाषा

5.4.1.2 भक्तिकालीन कविता की भाषा

पिछली इकाईयों में आपने भक्तिकालीन साहित्य के भेद एवं उपभेदों का अध्ययन कर लिया हैं। अब हम भक्तिकालीन कविता के संदर्भ में उसकी भाषाई भिन्नता का अध्ययन करेंगे। भक्तिकालीन कविता का समय मोटे तौर पर 1350 या 1400 ई0से लेकर लगभग 1650 ई0तक माना गया हैं। इस लम्बें समय में आन्तरिक समाज में बदलाव की प्रक्रिया तो चल ही रही थी , बाहर के देशों से शब्दों का आयात भी हो रहा था। थी, बाहर के देशों से शब्दों का आयात भी हो रहा था। जैसा कि आपने भक्तिकाल की प्र-शाखाओं का अध्ययन कर लिया है। हम देखते है कि भक्तिकाल की विभिन्न शाखाएँ केवल प्रवृत्तिगत दृष्टि से ही एक दूसरे से अलग नहीं है , बल्कि क्षेत्रगत एवं भाषागत दृष्टि से भी उनमें अंतर है।ज्ञानमार्गी कविता जिसे संतकाल भी कहा गया है, में काव्यभाषा

का सर्वाधिक वैविध्य देखने को मिलता है। चूकिं 'संत कवि' घुमक्कड़ वृत्ति के थे , इसलिए उनकी भाषा में /कविता मे कई भाषाओं के शब्द मिलते है। राजस्थानी , पंजाबी, खड़ी बोली, ब्रज, अवधी एवं पूर्वी प्रयोग इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबीर मे मिलते हैं। कबीरदास के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- 'पूरब में भोजपुरी से लेकर पश्चिम में राजस्थानी तक उनका भाषिक - संवेदनात्मक विस्तार है।' कुल मिलाकर संत काव्य भाषा की रचना है। जैसा कि कबीरदास जी ने लिखा भी है -संस्किरित है कूप- जल,भाषा बहता नीर ।शायद इसीलिए लोक तत्व से युक्त होने के कारण संत काव्य सर्वाधिक जीवंत काव्य है। प्रेममार्गी कविता की भाषा मुख्यतः अवधी रही है। अवधी मे भी इस धारा के कवियों ने ठेठ अवधि का प्रयोग किया हैं । जबकि तुलसीदास ने संस्कृतिक अवधि का प्रयोग किया है।जबकि तुलसीदास ने संस्कृतिक अवधी का प्रयोग किया है। प्रेममार्गी कवियों ने अवधी के साथ ही दकनी का भी प्रयोग किया है चूँकि ज्यादातर सूफी कवि मुस्लिम धर्म को माननेवाले थे, इसलिए संस्कार और लोक-आग्रह के कारण उन्होंने दोनों भाषा का प्रयोग किया है। रामभक्ति शाखा का मुख्य क्षेत्र अयोध्या या अवधमण्डल था ,इसलिए उस क्षेत्र की भाषा 'अवधी' को उन्होंने अपनी रचना का विषय बनाया । इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' गीतावली, कृष्णगीतावली, जैसी रचनाएँ ब्रजभाषा में भी कीं। प्रबन्ध के लिए तुलसी ने अवधी भाषा को अपनाया और मुक्तको के लिए ब्रजभाषा को। कृष्णभक्ति शाखा के रचनाकारों ने मुख्यतः ' ब्रजभाषा' को अपनी अपनी रचना का आधार बनाया ।अष्टछाप के कवियों ने (सूर, कुंभन, कृष्णदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, धीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, नन्ददास) केवल ब्रजभाषा का प्रयोग किया, क्योंकि उनकी रचना-भूमि ब्रजमण्डल है, लेकिन कृष्णभक्ति शाखा की महत्वपूर्ण कवियित्री मीराबाई ने सफलतापूर्वक राजस्थानी (छुसमण,वैठ्यॉ) ब्रजभाषा,पंजाबी (जुल्फॉ, करियॉ) एवं गुजराती भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है।

भक्तिकाल की काव्यभाषा के विस्तार का रहीम बखूबी प्रतनिधित्व करते हैं। रहीम ने अपने काव्य में संस्कृत,फारसी एवं हिंदी भाषा का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है। हिंदी भाषा में भी .... ब्रजभाषा ,अवधी एवं खड़ी बोली को कुशलतापूर्वक रहीम ने साधा है। रहीम के दोहे ब्रजभाषा में, बरवै अवधी में एवं मदनाष्टक खड़ी बोली में है।

5.4.1.3 रीतिकालीन कविता की भाषा -

रीतिकाल के संदर्भ मे आपने अध्ययन किया है कि इस युग की कविता में 'वाग्धारा बॅधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी।' वर्ण्य - विषय के संकोच के वातावरण में यह स्वाभाविक था कि कवियों का ध्यान भाषा एवं शैली पर टिक जाता। रीतिकालीन कवियों ने काव्यभाषा का विस्तार किया। उसे उन्होंने ललित कलाओं के संस्पर्श और और जीवंत बनाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को हांलाकि रीतिकालीन कविता से यह शिकायत है कि इस समय तक काव्यभाषा का रूप स्थिर हो जाना चाहिए था जो नही हो पाया । शायद इसका कारण यह भी रहा था कि रीतिकाल तक

आते-आते काव्यभाषा के रूप में केवल ब्रजभाषा ही रह गई। भक्तिकाल में जैसे ब्रजभाषा और अवधी भाषा दो भाषाएँ मानक काव्यभाषाओं के रूप में स्वीकृत थीं, वैसा रीतिकाल में नहीं हुआ। रीतिकाल में केवल ब्रजभाषा ही मानक काव्यभाषा के रूप में स्वीकृत रही इस युग तक ब्रजभाषा सामान्य काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। लेकिन इस संदर्भ में एक दिलचस्प तथ्य यह है कि ब्रजभाषा में रचने करने वाले अधिकांश कवि ब्रजभाषा क्षेत्र से बाहर के थे। जैसा कि इस तथ्य का संकेत करते हुए 'काव्य निर्णय' ग्रन्थ में आचार्य भिखारी दास ने लिया है-

''ब्रजभाषा हेत ब्रजबास ही न अनुमानौ,

ऐसे ऐसे कविन की वानी हूँ सों जानिए।''

भाषा - क्षेत्र - विस्तार के वावजूद इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि रीतिकालीन कविता की भाषा का रूप क्रमशः स्थिर और शास्त्रीय होता गया।

अभ्यास प्रश्न -2)

(क) सही मिलान कीजिए।

समय	**भाषा**
1. 1500 ई.पू. -500 ई.पू.	पालि
2. 500 ई - 1000 ईसवीं	ब्रजभाषा
3. 1000-1200ईसवीं	संस्कृत
4. 1650 - 1850 ईसवीं	अवहट्ट
5. 500 ई.पू. - ईसवीं तक	अपभ्रंश

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

1) लौकिक संस्कृति में वेदों की रचना हुई हैं।

2) अवहट्ट को ही कुछ लोगों ने पुरानी हिंदी कहा है।

3) हिंदी भाषा के लिए' हिंदी जाति ' शब्द का प्रयोग रामविलास शर्मा ने किया हैं।

4) आदिकाल का समय 1000-1400 ईसवीं तक है।

5) कृष्णभक्ति काव्य अवधी में लिखे गये हैं।

5.4.2 आधुनिक हिंदी कविता की भाषा

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं अपितु संस्कृति भी होती है। मध्यकाल तक काव्यभाषा का माध्यम ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, बुन्देली, बिहारी, भोजपुरी इत्यादि चलते रहे है। खड़ी बोली के शब्द तो बीच -बीच मे मिल जाते है किन्तु काव्यभाषा के व्यापक स्वरूप के धरातल पर खड़ी बोली प्रतिष्ठित नहीं हो पाई थी । हर युग अपने कथ्य के अनुरूप ही भाषा चुनता है। वेद की भाषा संस्कृत, बौद्ध साहित्य की पाली, जैन काव्य की प्राकृत, बौद्ध धर्म के संक्रान्ति काल (हिन्दू धर्म के भी) की भाषा अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्य भाषा काल की भाषा क्षेत्रीय बोलियाँ बनती है। ये क्षेत्रीय बोलियॉ हिंदी भाषा की ही क्षेत्रीय अभिव्यक्तियॅा है। आधुनिक काल अपनी संपूर्ण चेतना में अखिल भारतीय स्वरूप लेकर विकसित हुआ (राष्ट्रीय आन्दोलन - 1857 का स्वतंत्रता संग्राम) इसलिए अखिल भारतीय भाषा की आवश्यकता भी पहली बार महसूस की गई । लेकिन खड़ी बोली हिंदी कविता को अपनाने में लगभग 50 वर्ष समय लगा। भारतेन्दु काल में खड़ी बोली का माध्यम गद्य बना , पद्य नहीं। पद्य का माध्यम ब्रजभाषा बनी रही । भाषा संबंधी यह द्वैत क्यों बना ? आधुनिक काल (1850 तक) आते-आते विचारधाराएँ बदलने लगी थी । विचार धाराओ के निर्वहन के लिए ब्रजभाषा अपूर्ण सिद्व होने लगी, क्योंकि ब्रजभाषा की संरचना मूल तौर पर नायिका - भेद, नीति, भक्ति, श्रंगार इत्यादि के ज्यादा अनुकूल थीं। जबकि खड़ी बोली गद्य की भाषा बनी । गद्य में विचार व्यक्त होता है, जबकि पद्य में भाव । भारतेन्दु कालीन साहित्य में गद्य खड़ी बोली में लिखा गया जबकि पद्य ब्रजभाषा में । एक में विचार है दूसरे मे भाव । स्वंय भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने लिखा- ‘‘ जो हो, मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊॅ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं ।’’ भारतेन्दु काल में खड़ी बोली कविता में पहल करनेवाले सर्वप्रथम श्रीधर पाठक हुए ।

श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली में ‘एकान्तवासीयोगी (1886) ‘जगत सचाई सार’ को अनुवाद कर खड़ी खड़ी बोली कविता को बढ़ावा दिया। 1887 ई. में अयोध्याप्रसाद खत्री ने खड़ी बोली की पॉच स्टाइल का जिक्र किया। खड़ी बोली औेर ब्रजभाषा के प्रयोग को लेकर ‘ हिन्दुस्तोस्थान ‘ पत्रिका में नवम्बर 1887 से अप्रैल 1888 तक वाद-विवाद चलता रहा। इस सबके बावजूद भारतेन्दु युग तक खड़ी बोली कविता को लेकर संशय की स्थिति बनी रही। भाषा संबंधी यह द्वैत द्विवेदी युग में समाप्त हुआ। डॉ0बच्चन सिं ने लिखा है- गद्य -पद्य की भाषा खड़ी बोली हो गयी। इसका श्रेय द्विवेदी जी को ही है। आगे बच्चन सिंह ने भारतेन्दुकाल एवं द्विवेदी काल की कविता की तुलना करते हुए लिखा - ‘‘ भारतेन्दु मंडल के लोगों ने खड़ी बोली में जो पद्य रचनाएं की , उनमें ब्रजभाषा का मिश्रण तो था ही , संज्ञाओं और क्रियापदों के रूप भी बिगाड़ दिया गया था। उदाहरणार्थ - दुनिये (दुनिया),असिल (असली),नेंव (नींव), इस्से जिस्सें (इससे, जिससे) आदि

शब्दों को देखा जा सकता है। भाषा संबंधी इस अव्यवस्था को दूर करने का जो प्रयास द्विवेदी जी ने किया, वह स्मरणीय रहेगा। छायावाद तक आते-आते हिंदी कविता की भाषा समृद्ध हो चली थी। द्विवेदी युग में 'हरिऔध' को प्रियप्रवास महाकाव्य के साथ लम्बी भूमिका लिखनी पड़ी, केवल यह सिद्ध करने के लिए कि खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है। इसी प्रकार का प्रयास सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव की भूमिका' (1926 ई.) में किया । छायावाद की भाषा तत्सम निष्ठ ज्यादा है। उसके बाद की कविता की भाषा जैसे प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में लोकान्मुख है।

5.5 हिंदी कविता की भाषा का आलोचनात्मक संदर्भ -

किसी भी भाषा की आलोचना का सही आधार यह हो सकता है कि उस भाषा ने अपने युग की संवेदना को सही पकड़ा है या नही ? किसी समृद्ध भाषा के मूल्यांकन की एक कसौटी यह भी हो सकती है कि उस भाषा ने सामाजिक परिवर्तन की गतिशीलता के अनुरूप अपने को ढाला कि नहीं ? किसी भी समृद्ध भाषा के मूल्यांकन की एक कसौटी यह हो सकती है कि उसकी शब्द - सम्प्रदा समृद्ध है की नहीं । किसी भी समृद्ध भाषा के मूल्यांकन की एक कसौटी यह हो सकती है उस भाषा में श्रेष्ठ साहित्य है या नहीं । किसी समृद्ध भाषा की कसौआी और भी हो सकती है। इस संदर्भ में एक मानक हो सकते हैं और एकाधिक भी । किसी एक देश के भाषा सिद्धान्त दूसरे देशों के संदर्भ में हम हू-ब-हू लागू कर सकते है, यह बात भी नहीं है। हर जाति, प्रान्त,देश की भाषा वहॉ की सामाजिक - सांस्कृतिक -ऐतिहासिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होती है। इसलिए भाषा संबंधी भाषा-वैज्ञानिक कारणों के इतर भी सामाजिक कारण होते है जो किसी भाषा को अन्य भाषा से अलग करते है और महत्वपूर्ण बनाते हैं। आदिकालीन कविता की भाषा अपभ्रंश - अवहट्ट-पुरानी हिंदी के क्रम से चली है। आदिकाल के केंद्र में धार्मिक -राजनीतिक परिस्थितियॉ मुख्य रूप से रही है। धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित बौद्ध-जैन एव नाथ काव्य रहा है, जबकि राजनीतिक परिस्थितियॉ से प्रभावित रासो साहित्य। भारत पर आक्रमण राजस्थान की ओर से ही ज्यादा हुए हैं और उसका केंद्र दिल्ली और उसके आसपास का क्षेत्र रहा है, जहॉ रासो काव्य सृजित हुए हैं। पूरे आदिकालीन परिस्थितियों का संकेत आदिकालीन भाषा करती है इसी भक्तिकाल के मूल में प्रपत्ति, दैन्य, त्याग, नीति , सत्चरित्र की भावना व भावनात्मक उद्देश्य रहा है। चाहे निर्गुण कविता हो या सगुण कविता दोनों में भाषा अपनी भूमिका बखूबी निभाती है। कबीरदास की कविता में विविध भाषाएँ उनकी विविध मनोदशाओं के कारण ही पाई जाती हैं। भक्तिकाल के सगुण काव्य की भाषा ब्रज एवं अवधी रही है। अवधी प्रबंध के लिए अनुकूल रही है और ब्रज मुक्तक के। अवधी भाषा राम के व्यक्तित्व से जुड़ी हुई है जबकि ब्रजभाषा कृष्ण के। इसलिए रामभक्तिशाखा ने अवधी को अपनाया और कृष्णभक्तिशाखा ने ब्रजभाषा को। रीतिकालीन साहित्य में केवल ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। ब्रजभाषा के इस विस्तार का फल यह हुआ कि ब्रजभाषा के ही क्षेत्रीय भेद इस काल की कविता में हमें देखने को मिलते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3)

क) नीचे दिये वाक्यों की रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. भारतेन्दुकालीन कविता की भाषा .... है।

2. द्विवेदीयुगीन कविता की भाषा ....है।

3. छायावादी कवि .... ने ब्रजभाषा को सांमती अवधारणा का प्रतीक बताया।

4. रासो काव्य .... परिस्थितियों से प्रभावित रहा है।

5. राम काव्य अधिकांश .... रूप में लिखे गये हैं।

5. कृष्ण काव्य अधिकांश .... रूप में लिखे गये हैं।

7. रीतिकालीन साहित्य की भाषा .... रही हैं।

5.6 सारांश

- किसी समृद्व भाषा की यह पहचान हो सकती है कि उसमें उस प्रदेश ,जाति,राष्ट्र के सपने, आकांक्षा, हर्षोल्लास,आनन्द,जीवनेच्छा किस हद तक अपने उच्च रूप में अभिव्यक्त हो सके हैं।
- साहित्य उच्च सांस्कृतिक - कर्म है। इस दृष्टि से साहित्य की भाषा का अध्ययन अपने आप में महत्वपूर्ण है। कविता की भाषा सर्वाधिक सृजनात्मक अर्थ को अपने में समेटे हुए होती है।
- कविता की भाषा युग-समाज की बदलती हुई संवेदना को पकड़ने का सृजनात्मक प्रयास है।
- परिवर्तनशील समाज की मनस्थिति को पकड़ने के प्रयास में कविता की भाषा में भी कई प्रयोग करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति मे कभी काव्य भाषा में अस्पष्टता आ जाती है, कभी भाषा का सांकेतिक प्रयोग होता है। प्रयोगत वैविध्यता से काव्यभाषा समृद्ध होती है।
- सामान्य भाषा और काव्य -भाषा में अन्तर होता है सामान्य भाषा सरल, एक अर्थो एवं उक्ति–वैचित्र्य से हीन होती है , जबकि काव्य भाषा जटिल, विंब -प्रत्यय से युक्त , बहुअर्थी होती है।

- हिंदी भाषा का विकास-क्रम संस्कृत -पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-अवहट्ट एवं पुरानी हिंदी से होता हुआ अपने उन्नत स्वरूप को प्राप्त हुआ है।
- भाषा की दृष्टि से हिंदी कविता को मुख्यतः दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है- प्राचीन हिंदी कविता एवं आधुनिक कविता। कविता सम्बन्धी इस विभाजन के पिछे मुख्य तर्क यह है कि प्राचीन कविता का प्रतिपाद्य विषय भक्ति, नीति, श्रृंगार एवं वीरता है, जबकि आधुनिक कविता का प्रतिपाद्य मानववाद, बौद्धिकता, तर्क, नवजागरणवादी चेतना इत्यादि रहे हैं।
- आदिकालीन कविता से लेकर आधुनिक कालीन कविता तक हिंदी जातीय को बखूबी व्यक्त करती हैं।

5.7 शब्दावली

1. अभिव्यक्त - मनोभाव को प्रकट करना

2. संक्रान्तिकाल - बीच की अवस्था,जिसमें भाषा – प्रवृत्ति स्पष्ट न हो।

3. अलंकारवादी - भारतीय काव्यशास्त्र का सिद्वान्त वाला सम्प्रदाय, काव्य में अलंकारों को मुख्य मानने वाला

4. आनन्दानुभूति - कविता/साहित्य पढ़ने के बाद उत्पन्न अनुभूति।

5. 'झटिति भासिति'- तुरन्त समझ मे आने वाली कविता

5. अग्रगामिता - शैली विज्ञान का पारिभाषिक शब्द

7. काव्य न्याय - भामह द्वारा प्रयुक्त शब्द, उचित शब्द चुनाव ही काव्य न्याय हैं

8. नाद - ध्वनि, काव्य में संगीतात्मक ध्वनि का प्रयोग

9. अभिधार्थ - काव्य की प्रथम शब्द शक्ति, प्रत्यक्ष कथन,वक्ता के कथन का सीधा अर्थ निकालने वाली उक्ति

10. व्यंग्यार्थ - काव्य की तीसरी शब्द शक्ति

11. स्वत्रोव्याघात- किसी युग, साहित्य के भीतर परस्पर विरोधी स्थितियों का पाया जाना

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न (1) (क)

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य

(ख) 1. तीन 2. आनन्दवर्द्धन 3. पण्डितराज जगन्नाथ 4. शैली विज्ञान

5. विलियम एम्पसन

अभ्यास प्रश्न 2) (क)

1. संस्कृत 2. अपभ्रंश 3. अवहट्ट 4. ब्रजभाषा 5. पालि

(ख) 1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 3)

1. ब्रजभाषा 2. खड़ी बोली 3. सुमित्रानंदन पंत

4. राजनीतिक 5. प्रबन्ध 5. मुक्तक 7. ब्रजभाषा

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा,काशी।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली।

4. द्विवेदी, (सं) हजारी प्रसाद, नाथ-सिद्धों की बानिंया, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

5.10 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री-

1. द्विवेदी, (सं) हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,मुबंई।

2. द्विवेदी, (सं) हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।

3. सांकृत्यायन, राहुल, हिंदी काव्यधारा, किताब महल, इलाहाबाद।

4. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पव्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भाषा और समाज के अंतर्सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

2. भाषिक प्रयुक्तियों पर चर्चा कीजिए।

3. हिंदी कविता की भाषा पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 6 - आधुनिक हिंदी कविता: भारतेन्दु युग

इकाई का स्वरुप
6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 आधुनिक हिन्दी कविता: भारतेन्दु युग
6.3.1 जीवन परिचय
6.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व
6.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ
6.6.1 परम्परागत विषय की कविताएँ
6.6.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ
6.6.1.2 रीति संबंधी कविताएँ
6.6.2 नवीन विषय वस्तु की कविताएँ
6.6.2.1 राष्ट्रीयता
6.6.2.2 सामाजिक चेतना
6.5 शिल्प पक्ष
6.5.1 भाषा
6.5.2 काव्य शिल्प
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री
6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

आपने पूर्व की इकाई 'हिन्दी साहित्य का आधुनिककाल: पद्य का अध्ययन कर लिया है उस इकाई के माध्यम से आपने यह जाना है कि आधुनिक काल की पृठभूमि क्या थी तथा वह कौन सी परिस्थितियाँ थी, जिसके कारण आधुनिकता का विकास हुआ। तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों से किस प्रकार आधुनिक काल का पद्य निर्मित हुआ, आपने पिछली इकाई में यह जाना। इसके अतिरिक्त आधुनिक पद्य का काल विभाजन एवं मुख्य प्रवृत्तियों को भी आपने अध्ययन किया। आधुनिक साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को दिया गया है। क्योंकि समाज की विकसनशील स्थितियों से साहित्य को पहली बार भारतेन्दु ने ही जोड़ा। आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल ने इस संबंध में टिप्पणी की हैः ‘‘ भारतेन्दु हरिचन्द्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों का बड़ा (दोनों पर) गहरा पड़ा। उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया, उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके भाषा संस्कार की महता को सब लोगों ने मुम्तखंड से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने गये। .... भाषा का निखरा हुआ सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पद्य की ब्रजभाषा का भी बहुत संस्कार किया। पुराने पड़े हुए शब्दों को हटाकर काव्यभाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और सफाई लाये। इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। नयी शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चुकी थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नयी उमंगें उत्पन्न हो रही थीं। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गये थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था........... भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत करने वाले हरिश्चन्द्र ही हुए।” (‘हिंदी साहित्य का इतिहास ’,पृष्ठ 404) । तय है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। लेकिन कविता की दृष्टि से भी उनका साहित्य कम मूल्यवान नहीं है। काव्य में भी भारतेन्दु ने कम प्रयोग नहीं किए हैं ।

इसके अतिरिक्त पत्र- पत्रिकाओं के प्रकाशन से भारतेन्दु ने कविता को समसाकयिक विषयों से जोड़ने का ऐतिहासिक कार्य भी किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से समूह हैं। कवि के रूप में उन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों भाषाओं में कविताएँ लिखी हैं। जिनमें स्वरूपगत भेद है। भारतेन्दु हरिश्चन्दु के काव्य में व्यक्त राष्ट्रीयता, समाज सुधार, राजभक्ति, भक्ति ,नीति, श्रंगार आदि विविध विषयों से संबन्धित कविताओं को अध्ययन कर हम उनके रचना -कर्म को जानेंगे तथा यह समझने को प्रयत्न करेंगे कि हिन्दी साहित्य-संस्कृति में भारतेत्दु का क्या महत्व है। आइए हम भारतेन्दु कृतित्व के आस्वादन-अवलोकन से पूर्व उनकी जीवनी संक्षेप में जानें।

6.2 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने मध्यकालीन पद्य ओर आधुनिक पद्य का काल- विभाजन, आधुनिक पद्य की प्रवृत्तियों आदि का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। आधुनिक पद्य की शुरूआत भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से होती है। अब आप आधुनिक हिंदी कविता के संदर्भ में भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप:

- भारतीय नवजागरण की पीठिका को समझ सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण के स्वरूप से परिचित हों सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण के साथ भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के अन्र्तसम्बन्ध को जान सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य की मूल अंतः संबंधों को जान पायेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के सामाजिक साहित्यिक प्रदेय से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेत्दु हरिश्चन्द्र के माध्यम से आधुनिक हिन्दी कविता की पारिभषिक शब्दावली से परिचित हो सकेंगे।

6.3 आधुनिक हिन्दी कविता: भारतेन्दु युग

6.3.1 जीवन - परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर सन् 1850 ई0 में हुआ था। आप 18 - 19 वीं शताब्दी के जगत् - सेठों के एक प्रसिद्ध परिवार से सम्बन्ध रखते हैं। आपके पूर्वज सेठ अमीचन्द का उत्कर्ष भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय में हुआ था। सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष होने पर अमीचन्द ने अंग्रजों की सहायता की थी, यह अलग बात है कि उसके बाद भी अंग्रेजों ने उनके साथ प्रतिकूल आचरण किया । उसी परिवार में सेठ अमीचन्द के प्रपौत्र गोपानचन्द (उपनाम गिरिधरदास, 1844 जन्म) का जन्म हुआ । गिरिधरदास जी अपने समय के प्रसिद्ध कवि तथा कवियों - लेखकों के आश्रयदाता थे। गिरिधरदास जी का लिखा नहुष काव्य नाटक ब्रज भाषा में लिखा, हिन्दी के प्रारंभिक नाटकों में से एक है। इन्ही गिरिधरदास जी के ज्येष्ठ पुत्रके रूप में भारतेत्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था। इस प्रकार हम देखते है कि भारतेत्दु को दो चीजें विरासत में मिलीं । एक उनके घर का साहित्यिक संस्कार दूसरे, धन की उपलब्धता। धन की उपलब्धता ने ही ' भारतेत्दु - मण्डल ' के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतेत्दु हरिश्चन्द्र जी का पारिवारिक जीवन दुखमय रहा। पाँच वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता पार्वती देवी तथा दस वर्ष की अवस्था में उनके पिता का देहान्त हो गया। विमाता के तिक्त व्यवहार से भी उन्हें बहुत कष्ट हुआ। पिता की अकाल मृत्यु के कारण भारतेन्दु जी की शिक्षा व्यवस्थित रूप से संपन्न नहीं हो पाई। पिता की मुत्यु के पश्चात् उन्होने काशी के क्वीन्स कॉलेज में अध्ययन किया, लेकिन अध्ययनको क्रमिकता प्रदान नहीं कर सके। कॉलेज छोड़ने के पश्चात् भारतेत्दु जी ने स्वाध्याय से हिन्दी, संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। उस समय काशी के राजा शिवप्रसाद सिंह 'सितारे हिंद' प्रतिष्ठित

विद्वान थे भारतेत्दु जी ने सितारे हिंद से भी शिक्षा ग्रहण की। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह काशी के लाला गुलाबराय की पुत्री मन्ना देवी से हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में भारतेत्दु जी सपरिवार जगन्नाथ यात्रा पर गये। इस यात्रा का भारतेत्दु जी के व्यक्तित्व पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। जगन्नाथ यात्रा के पश्चात् भारतेत्दु जी कानपुर, लखनऊ, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृमसर, दिल्ली, अजमेर, प्रयाग, पटना, कलकत्ता, बस्ती, गोरखपुर, बलिया, वेद्यनाथ, उदयपुर आदि अनेक स्थानों की यात्रा पर गये। इन यात्राओं से भारतेत्दु का साहित्यिक ओर सांस्कृतिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ। विशेषतौर से भारतेत्दु की बंगाल यात्रा ने उनको नवीन विषयों - विधाओं की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1880 में पं0 सुधाकर द्विवेदी पं. रघुनाथ तथा पं0 रामेश्वरदत्त व्यास के प्रयासों से उन्हे ' भारतेत्दु ' की उपाधि प्रदान की गई। 6 जनवरी 1885 ई. को अल्पायु में ही भारतेत्दु जी का देहावसान हो गया।

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी बहुमुखी प्रंतिभा के धनी थे। नाटक निबंध, कविता के क्षेत्र में आपका अमूल्य योगदान तो है ही, इसके अतिरिक्त आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, इतिहास, कहानी जैसी साहित्यिक विधाओं के प्रवर्तक भी बने। भारतेन्दु जी का पूरा जीवन दूसरों की सहायता करने में तथा साहित्य की सेवा में व्यतीत हुआ। साहित्य की तरह ही आपका पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी महत्वपूर्ण योगदान है। भारतेन्दु ने चार पत्रिकाओं प्रकाशन संपादन किया था। साहित्य - पत्रकारिता के अतिरिक्त सामाजिक - सांस्कृतिक सुधार के कार्यो में भी आप अग्रणी थे। चाहे वह धर्म के प्रचारार्थ स्थापित 'तदीय समाज' हो या महिला शिक्षार्थ प्रकाशित 'बालाबोधिनी' पत्रिका। इस प्रकार भारतेत्दु हिरश्चन्द्र का जीवन-विवके ऐतिहासिक आवश्यकता की माँग के कारण निर्मित हुआ था। प्राचीन और नवीन काव्यधाराओं का मणिकांचन योग भारतेत्दु के व्यक्तित्व में उपस्थित हुआ है। भारतेत्दु अपनी भक्ति - नीति, देश - प्रेम एवं भाषा-साहित्य प्रेम के कारण प्रसिद्ध रहे है। भारतेत्दु में राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति का द्वन्द्व भी देखने को मिलता है। यहाँ हमने भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी के कृतित्व को समझने के लिए उनके जीवन का संक्षिप्त अध्ययन किया। अब हम भारतेत्दु हिरश्चन्द्र के कृतित्व की संक्षिप्त रूपरेखा देखेंगे।

6.3.2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कृतित्व

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी की अल्पायु को देखते हुए उनका विपुल साहित्य आश्चर्यचकित करता है। न केवल परिमाण की दृष्टि से वरन गुणवता की दृष्टि से भी भारतेनदु जी का कृतित्व 2 लाघनीय है। भारतेन्दु जी के कृतित्व संबंधी विशेषताओं का विश्लेषण हम आगे के बिन्दुओं में करेंगे, यहॉ हम उनके साहित्य की एक झलक मात्र का एक अवलोकन करेंगे।

गद्य साहित्यः भारतेन्दु हरिश्चन्द् का गद्य साहित्य हिन्दी साहित्य की एक निधि है। चाहे वह नाटक हो, निबंद्य हो या पत्रकारिता। सर्वत्र उनके मौलिक विचारों का दर्शन हमें होता है। गद्य साहित्य में सर्वप्रथम भारतेत्दु जी ने नाटकों की रचना की। उनकी नाट्य कृतियो को तीन भागों में विभक्त

किया गया है - अनुदित, मौलिक और अपूर्ण। विषय की दृष्टि से इन्हें ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं पौराणिक में विभक्त किया गया है -

भारतेत्दु हिरश्चन्द्र जी की अनुदित रचनाओं में है।

- 'विद्यासुन्दर'(1868 ई, संस्कृत रचना 'चौरपंचाशिका' के बंगला संस्करण का अनुवाद)
- 'पाखण्डविडम्बन' (1872 ई, कृष्ण मिश्रकृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तृतीय अंक का अनुवाद)
- 'धनंजय - विजय (1874 ई, कंचन कविकृत व्यायोग' का अनुवाद)
- 'कर्पूर - मंजरी' (1875 ई, राजशेखर कविकृत प्राकृत सट्टक का अनुवाद)
- 'भारत जननी' (1877 ई, नाट्य गीत)
- 'मुद्राराक्षस'(1878 ई, विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद)
- 'दुर्लभ बंधु' (1880 ई, में प्रथम दृश्य 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका मे प्रकाशित हुआ। यह कृति शेक्सपियर के 'मर्चेण्ट आर्फ वेनिश' का अनुवाद है, रमाशंकर व्यास तथा राधाकृष्णदास ने इस कृति को पूर्ण किया।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मौलिक नाट्य रचनाएँ -

- 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1874 ई.,प्रहसन)
- 'सत्य हरिश्चन्द्र' (1875 ई,)
- 'श्री चन्द्रावली' (1876 ई,नाटिका)
- 'विषमौषधम्' (1876 ई, भ्राण)
- 'भारत-दुर्दशा (1880 ई, नाट्य रासक)
- 'नीलदेवी' (1881 ई, प्रहसन)
- 'प्रेमजोगिनी' (अपूर्ण, 1875 ई. नाटिका, प्रथम अंक के केवल चार दृश्य का लेखन)
- 'सती प्रताप' (1875 ई, (1875 ई, गीतिरूपक, केवल चार अंक)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कई आधुनिक गद्य विधाओं के भी प्रवत्तक रहे है। भारतेन्दु ने उपन्यास, नाटक, इतिहास, जीवनी, आत्मकथा जैसी विधाओं की शुरूआत भी की थी। भारतेन्दु का उपन्यास 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' मराठी उपन्यास के आधार पर लिखा गया है। भारतेन्दु की अन्य गद्य रचनाएँ हैं -

- भाषा संबंधी - 'हिन्दी भाषा'
- नाट्यशास्त्र - 'नाटक'
- इतिहास और पुरातत्त्व - कश्मीर कुसुम
- महाराष्ट्र देश का इतिहास
- रामायण का समय
- अग्रवालों की उत्पत्ति
- खत्रियों की उत्पत्ति
- बादशाह दर्पण
- बूंदी का राजवंश
- उदय पुरोदय
- पुरावृत्त संग्रह
- चरितावली
- पंच पवित्रात्मा
- दिल्ली दरबार दर्पण
- कालचक्र
- पत्र - पत्रिकाएँ: कविवचन सुधा
- हरिश्चन्द्र मैगजीन
- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका
- बालाबोधिनी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य साहित्य विपुल है, यहॉ उसकी केवल संक्षेप में सूची प्रस्तुत की गई है, क्योंकि यहाँ हमारे अध्ययन का विषय भारतेन्दु की काव्य रचनाएँ हैं। आइए अब हम भारतेन्दु जी का काव्य रचनाओ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें -

परम्परानुरूप् साम्प्रदायिक पुष्टिमार्गोय रचनाएँ :-

- भक्ति सर्वस्व (1870 ई.)
- कार्तिक स्नान (1872 ई.)
- वेशाख माहात्मय (1872 ई.)

- देवी छद्म लीला (1874 ई.)
- प्रातः स्मरण मंगल पाठ (1874 ई.)
- तन्मय लीला (1874 ई.)
- दान लीला (1874 ई.)
- रानीछद्मलीला (1874 ई.)
- प्रबोधिनी (1874 ई.)
- स्वरूप (1874 ई.)
- श्रीपंचमी (1875 ई.)
- श्रीनाथ स्तुति (1877 ई.)
- अपवर्गदाष्टक (1877 ई.)
- अपवर्ग पंचक (1877 ई.)
- प्रातः स्मरण स्तोत्र (1877 ई.)
- वैष्णव सर्वस्व
- वल्लीभ सर्वस्व
- तदीप सर्वस्व
- भक्ति सूत्र वैजयन्ती आदि।

भक्ति तथा दिव्य-प्रेमसंबंधी रचनाओं में

- प्रेम मालिका (1871 ई.)
- प्रेम सरोवर (1874 ई.)
- प्रेमाश्रु-वर्णन (1874 ई.)
- प्रेम माधुरी (1875 ई.,यह भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के कवित्त सवैयों का एकमात्र संग्रह है। यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का रीतिवादी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भारतेन्दृ ने धनानंद, ठाकुर, बोधा, रसखान द्वारा वर्णित प्रेम विरह के समान ही विरह की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।)
- प्रेम-तरंग (1877. ई यह ग्रन्थ भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि यह पदों की नही बल्कि गानों का संग्रह है। इस ग्रन्थ में, जनता में

प्रचलित लोक गीतों को साहित्यिक रूप दिया गया है। इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा, खड़ी बोली, उर्दू, बंगला, पंजाबी, आदि कई भाषाओं की रचनाओं का समावेश है।)

- प्रेम प्रलाप (1877 ई.)
- होली (1879 ई.)
- मधु मुकुल (1880 ई.)
- वर्षा विनोद (1880 ई.)
- विनय प्रेम-पचासा (1880 ई.)
- फूलों का गुच्छा (1882 ई.)
- प्रेम फुलवारी(1884 ई., 'प्रेम फुलवारी' 94 पदों का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में दैन्य भाव के विरह संबंधी, प्रीति संबंधी एवं राधा-स्तुति तथा कृष्ण-स्तुति के पद हैं यह पदों की विशुद्ध शैली में रचित भारतेन्दु जी के प्रोढ़ ग्रन्थौ में है। 'चन्द्रावली नाटिका मे। इस ग्रन्थ्र के अनेक पद रखे गये हैं।)
- कृष्णचरित्र (1884 ई.)
- जैन कुतूहल (1874ई.)

परम्परागत रचनाएँ :-

- उत्तर भक्तमाल (1876-1877 ई.)
- गीत गोविन्दानन्द (1877-1878 ई.)
- सतसई श्रृंगार (1875-1878 ई.)

नवीन प्रकार की रचनाएँ :-

- स्वर्गवासी श्री अलवरत वर्णन अन्तर्लायिका (1861 ई.)
- श्री राजकुमार सुस्वागत पत्र (1869 ई.)
- सुमनांजलि (1871 ई, प्रिस आर्फ वेल्स के पीड़ित होने पर)
- मुह दिखावनी' (1874 ई.)
- श्रीराम कुमार शुभागमन वर्णन' (1875 ई.)
- भारत भिक्षा' (1875 ई.)
- मानसोपायन' (1875 ई.)

- मनोमुकलमाला' (1877 ई.)
- भारत वीख्य'(1878 ई.)
- विजय वल्लरी' (1881 ई.)
- विजयिनी-विजय पताका या वैजयन्ती' (1882 ई.)
- नये जमाने की मुकरी' (1884 ई.)
- जातीय संगीत' (1884 ई.)
- रिपनाष्टक' (1884 ई.)

ऊपर हमने भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित ग्रन्थ की सूची देखी। इसके अतिरिक्त भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र के भक्ति, प्रेम, श्रृंगार और नवीन विषयों पर स्फुद दोहे, कवित, सवैया, पद, गजल, भी मिलते हैं। व्यंग्य और हास्य की दृष्टि से उर्दू भाषा में लिखित 'स्यापा' (1874 ई.) तथा 'बंदर सभा'(1879 ई.) उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दृ हरिश्चन्द्र कृत रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि जीवन क्षेत्रों को स्पर्श कर सकी है। भारतेन्दु के काव्य साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि एक ओर उन्होंने जहाँ परम्परागत विषयों पर अपनी लेखनी चलाई वहीं दूसरी ओर तत्कालीन समस्याओं का समावेश करते हुए नवीन काव्य प्रयोग भी किये। आगे की बिंदुओ में हम भारतेन्दु हरिशचन्द्र के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 1

क) निम्नलिखित कथनों में कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। कथन के सामने उचित चिन्ह लगाएँ।

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तक हैं। ( )

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जीवन और साहित्य के विच्छेद को दूर किया, यह कथन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। ( )

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र का जन्म ९ सितम्बर १९५0 ई. को हुआ था ( )

४. भारतेन्दु उपाधि हिरश्चन्द्र को १८८0 ई. में दी गई। ( )

५. भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने चार पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। ( )

(ख) सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:

१. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का .... की अल्पायु में स्वर्गवास हो गया।

(३४, ३७, ४0, ४५)

२. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी का प्रथम नाटक .... था।

(भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, विद्यासुंदर, दुर्लभ बंधु)

३. भारतेन्दु हरिशचन्द्र जी के पिता .... भाषा के अच्छे कवि थे।

(मराठी, बंगला, ब्रजभाषा, अवधी)

४. .... नाटक शेक्यपियर के नाटक का अनुवाद है।

(अंधेर नगरी, प्रेम योगिनी, दुर्लभ बंधु, भारत दर्दशा)

6.4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्यगत विशेषताएँ

किसी भी युग-समाज में या कहें कि इतिहास में बदलाव की प्रक्रिया अनायास नहीं होती। उसके ठोस भौतिक कारण होते है। सामाजिक-राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियांे में हुए परिवर्तन से साहित्य भी प्रभावित होता है, क्योंकि साहित्य अंततः सांस्कृतिक क्रिया ही है। जैसा कि कहा गया इतिहस में बदलाव न तो अचानक प्रकट हाता है, न ही उसकी प्रक्रिया यकायक होती है। बदलाव या परिवर्तन लम्बे राजनीतिक – सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम होता है। 1850.ई. के लगभग समय भी इतिहास में कुछ ऐसा ही 'पार्ट' अदा करता है। एक ओर रीतिकाल की समाप्ति की समय दूसरी ओर आधुनिक नवजागरण की उत्पत्ति का समय। नये युग का साहित्य नये रूप् की माँग भी करता है।इसलिए यह सोचना गलत होगा कि विषय वस्तु और रचना-शैली में कोई अंतर नहीं है। या रचना शैली व्यक्तिगत होती है। यह सही है कि हर लेखक अपनी भाषा एवं शैली में विशिष्ट होता, किन्तु उसेक व्यक्तिगत शैली पर भी युगीन रचना एंव लेखक के परिवेश का गहरा असर होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य का साहित्यिक महत्व इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो उठता है कि हिन्दी साहित्य में पहली बार विषय वस्तु के बदलाव के साथ काव्यरूप का चुनाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। हालांकि उन प्रयोगों का काव्य में वे उतना व्यवस्थित नहीं कर पाये, लेकिन उनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद रूप से उच्चे स्थान का अधिकारी है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जब रचनाक्षेत्र में आये, तब ब्रजभाषा के संबंध में यह दृढ़ मान्यता थी कि वह भक्ति - नीति -श्रृंगार की भाषा है। ब्रजभाषा में जो मधुरता, सरलता एवं प्रवाह है वह किसी दूसरी भाषा में नही है, ऐसे समय मे खड़ी बोली में कविता करना आसान काम नहीं था। भारतेन्दु हरिचन्द्र जी के लिय यह आसान रहा भी नहीं। स्वंय भारतेन्दु ने मात्र सत्तर कविताएँ खड़ी बोली में लिखीं । लेकिन खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है, यह ऐतिहासिक कार्य उन्होंने प्रारम्भ किया। जैसा कि कहा गया भारतेन्दु के साहित्य में पर्दापण के समय रीतिवादी कविता का प्रचलन था। स्वय।

भारतेन्दु जी के पिता गिरिधरदास जी पुराने ढंग के अच्छे कवि थे। भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार वैष्वव भक्ति का था। अतः

भक्ति -नीति का संस्कार उनके ऊपर परम्परा से ही पड़ गया था। इसके अतिरिक्त आधुनिक विचारधारा के दबाव के कारण उन्होंने कविता में राष्ट्रीयता समाज-सुधार जैसे विषयों को शामिल भी किया। काव्य-प्रयोग की दृष्टि से भी भारतेन्दु ने कई प्रयोग किए। चाहे लोक गीतों को साहित्य में ढालने का कार्य हो या छन्द संबंधी प्रयोग सर्वत्र भारतेन्दु जी की काव्य सजगता देखी जा सकती है। भारतेन्दु के काव्य संबंधी संक्षिप्त प्रस्तावना के बाद आइए हम भारतेन्दु काव्य की प्रमुख प्रवृतियों को जानें। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की कविता के मुख्य दो स्वरूप् स्वीकार किये गए हैं। एक मे उनके प्राचीन ढंग की कविताएँ हैं। दूसरी नई प्रवृतियों से संचालित कविताएँ हैं।

6.6.1 परम्परागत विषय की कविताएँ

जैसा कि पूर्व में संकेत किया गया कि भारतेन्दु प्राचीन एवं नवीन के संधिस्थल पर खड़े थे। अतः उन्में परम्परा और नवीनता दोनों के तत्व मिलते हैं। परम्परागत प्रवृतियों में भी उनकी कविता में वैविध्य देखने को मिलता है। एक ओर वे वैष्णव भक्ति की कविताएँ लिखते हैं, दूसरी ओर रीतिकालीन मनोवृति की यहॉ हम भारतेन्दु हरिश्चन्दु के परम्परागत कविताओं को स्वरूप् देखेंगे तथा उसकी विशेषताओं से परिचित होंगे।

6.6.1.1 भक्ति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का परिवार वैष्णव भक्ति से संबंधित था। स्वंय भारतेन्दु जी बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे। भारतेन्दु जी की पुरी यात्रा के संदर्भ को हमने पढ़ा, उस यात्रा का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे भी, जैसा कि टी.एस.इलियट ने लिखा है कि श्रेष्ठ साहित्यकार की मज्ना में उसकी परम्परा अनुस्यूत रहती है। भारतेन्दु में पूर्ण मध्यकालीन परम्परा को हम देख सकते है। वल्लभ संप्रदायके अतिरिक्त भारतेंन्दु ने राम काव्य, जैन काव्य पर भी कविताएँ लिखी हैं। भक्ति के पदों में भी एकरसता नहीं मिलती, उसमें भी भावों एवं अनुभूति-अभिव्यक्ति की विविधता देखने को मिलती है। भारतेन्दु के ऊपर सूर, तुलसी, मीरा, कबीर का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारतेन्दु का विनय पद देखिय, जिस सूर तुलसी का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है -

''हरि लीला सब विधि सुखदाई।''

× × ×

नहि ईश्वरता अँटकी वेद में

तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मतभेद में।।''

× × ×

'हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? '

× × ×

''खोजत वसन ब्रज की बाल

निकसिकै सब लेहु, छिपिकै कह्यो स्याम तमाल

सुनत चेचलहित चुहँ दिसि चकित निरख्तनारि

मधुर बैननि हिओ फरकत जानिकै बनवारि

कदम पर ते दरस दीनो, गिरिधरन धनश्याम ''

उपर्युक्त उद्धरण देखने से सहज ही संकेत मिलता है कि भारतेन्दु जी के भक्ति पद कही देन्य-विनय के हैं, कहीं प्रेमाभक्ति के।

6.6.1. रीति संबंधी कविताएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को रीतिकाल की श्रृंगारिकता परम्परा से या कहें कि विरासत में मिली थी। भारतेन्दु जी के पिता का दरबार लगा करता था। स्वंय भारतेन्दु जी के यहाँ साहित्यकारों का जमघट लगा करता था। 'भारतेन्दु-मण्डल' का इस दरबार से घनिष्ठ संबंध था। हम कह सकते हैं कि 'भारतेन्दु-मण्डल' के निर्माण में इस दरबारी मनोवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ था। 'भारतेन्दु के समय कविता का एक स्वरूप् समस्यापूर्ति भी था। समस्यापूर्ति का संबंध ज्यादातर श्रृंगार से ही है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताएँ मतियम, घनानन्द, देव, पद्माकर, की परम्परा में है। भारतेन्दु जी की श्रृंगारिक कविताओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

'ब्रज के लता पता मोहि कीजे

गोपी - पद -पकंज पावन की रज जामेसिर भीजे।।'

× × ×

'सिसुताई अजों न गई तन तें, तऊ जोबन जोति बटोरे लगी।

सुचि के चरचा हरिचन्द की, कान कछूक दे, भौहं मरोरे लगी।

बचि सासु जेठानिनि सौ, पियते दुरि घुंघट में दृग जोरे लगी।

दुलही उलही सग अंगन तें , दिन द्वै तै पियूस निचारे लगी।

× × ×

कूकें लगी कोइलें कदम्बन पै बैठि फेरि

कि धोए धोए पात हिलि हिलि सरसै लगै।

बोले लगे दादुर मयूर लगे नाचे फेरि

देखि के सँयोगी जन हिय हरसै लगे।

हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी

लखि हरिचन्द फेर प्रान तरसे लगे।

फेरि झूमि झूमि बारसा की रितु आई फेरि

बदर निगोरे झूकि झूकि बरसै लगै।।

यह संग में लागिये डोले सदा बिन देखे न धीरेज आनती हैं।

छिन हू जो वियोग परै न झपै उझपैं पल में न समाइबो जानती है।

पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया डुखियॉ नही मानती है।

× × ×

लाज समान निवारि सबै प्रन प्रेम को प्यारे पसारन दीजिये।

जानन दीजिये लोगन को कुलटा कहि मोहि पुकारन दीजिये।।

प्यों हरिचन्द सबै भय टारि के लालन घूँघट टारन दीजिये।

छांड़ि संकोचन चन्द मुखै भरिलोचन आज निहारन दीजिये।।

6.6.2 नवीन विषयक्स्तु की कविताएँ

हमने पूर्व में अध्ययन किया कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। साहित्य -समाज के अंतर्सम्बन्ध को स्थापित करने की दृष्टि से आपका महत्व ऐतिहासिक एवं युगान्तकारी है। इस दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गद्य विशेष महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली पद्य भारतेन्दु ने बहुत कम लिखा है,

कारण यह कि भारतेन्दु जी का क्र्व्य - विषय (भक्ति-नीति-श्रृंगार) ब्रजभाषा के निकट ज्यादा रहे है। बावजूद इसके भारतेन्दु के काव्य में आधुनिकता के दर्शन य़त्र-तत्र हो ही जाते है। देशभक्ति भारतेन्दु साहित्य का मुख्य विषय रहा है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुधार आपकी रचनाओं की मुख्य विषय वस्तु है। भारतेन्दु के व्यंग्य, उनकी भाषा-शैली सब कुछ अपने ढंग की अलग विशेषता रखते हैं। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य की प्रमुख विशेषता से परिचय प्राप्त करें।

6.6.2.1 राष्ट्रीयता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राष्ट्रीयता को लेकर कई तरह के भ्रम फैलाये गये हैं (देखें रस्साकस्सी-वीरभारत तलवार की पुस्तक)। कुछ लोगों की नजर में भारतेन्दु राजभक्त हैं तो कुछ की दृष्टि में सच्चे राष्ट्रभक्त। इस संबंध में हमें पूर्वाग्रह मुक्त होकर भारतेन्दु साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता सरकारी कर्मचारी थे। इसलिए सवभावतः भारतेन्दु जी राजभक्ति की ओर झुके, लेकिन क्रमशः उन्हे विक्टोरिया साम्राज्य की वास्तविकता का भान होने लगां। राष्ट्रीयता के चित्रण में भारतेन्दु जी कई बार पौराणिक इतिवृतों से प्रेरणा लेते हैं और कई बार तत्कालीन समस्याओं से । भारतेन्दु ने अतीत को प्रेरणा के रूप में ग्रहण किया है। प्रबांधिनी’ में लिखित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ये छन्द देखिए -

सीखत कोउ न कला, उदर भरि जीवन केवल।

पसु समाज सब अन्न खात पीउत गंगा जल।।

धन विदेस चलि जात तऊ पिय होत न चंचल।

जड़ समान हवे रहत अकिल हत रच न सकल कल।

जीवन विदेस की वस्तु लै ता बिनु कक्षु नहिं कर सकत।

जागो - जागो अब साँवरे सब कोउ रूख तुमरो तकत।।

× × ×

कहां गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर

चन्द्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करिके थिर

कहँ क्षत्ती सब मरे जरे सब गए किते गिर

कहां राज को ताने साज, जेहि जानत है चिर

कहं दुर्ग सन - धन, बल गयों, धुरहि धूर दिखात जग

जागो अब तो खले बल दलन रक्षहु अपुनी आर्य मग।''

अतीत को स्मरण करना पुनजगिरणवादी चेतना है। भारतेन्दु हरिश्चन्द ने इसीलिए विभिन्न कविताओं के माध्यम से अपने गोरवशाली अतीत को स्मरण किया है। अतीत के गोरवशाली परम्परा को भारतेन्दु जी ने कई बार-बार स्मरण किया है, किन्तु कई बार वे सीधे - सीधे भारत - दुर्दशा को स्मरण करते है, यहाँ अकी लेखकी ज्यादा समसामयिक है -

जो भारत जंग में रहयो सबसों उत्तम देश

तहि भारत में रहयो अब नहिं सुख को लेस।

× × ×

रोअहु सब मिलके आवहु भारत भाई

हा। हा। भारत दुर्दशा ने देखी जाई

× × ×

कठिन सिपाही द्रोह अनज जा जन बल नासी।

जिन भय सिर न हिलाइ सकट कहुँ भारतवासी।।

× × ×

हाय सुनत नहि, निठुर भय क्यों परम दयाल कहाई

उठहु वीर तलवार खीचं माऊ धन संगार।

× × ×

वीरो की प्रशंसा - कहा तुम्है नहि खबर जय की छूट ग्वाई।

जीति मिसर में शत्रु - सेन सब दई भगाइ।

तड़ित तार के द्वार मिल्यो सुभ समाचार यह।

भारत सेना कियो घोर संग्राम मिश्र मह।

× × ×

''अरे बीर इक बेर उठहु सब फिर कित सोए।

लेहु करन करवालि काढ़ि रन - रंग समोए।

चलुह बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ायो।

लेहु म्यान सों खंडा खींचि रन रंग जमाओ।

अपने सिंहनाद से शत्रुओं के ह्रदय को दहला दो।

मारू बाजे बजे कहो धौसां घहराहीं

उडहि पताका सत्रु - ह्रदय लसि लखि थहराहीं। ''

6.6.2.2 सामाजिक चेतना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी नवजागरणवादी चेतना के रचनाकार थे। नवजागरण एक प्रकार से सांस्कुतिक जागरण लेकर आया। समाज और संस्कुति का गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक चेतना राष्ट्रीयता की ही अभिव्यक्ति होती है। जिस व्यक्ति में राष्ट्रीय भाव बोध जितना गहरा होगा, उसकी ही तीव्र होंगे। उसकी कविता में सामाजिक परिस्थितियों के चित्र उतने ही तीव्र होगे। जैसा कि पूर्व मे कहा गया है हक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में राजभक्ति - राष्ट्रभक्ति दोनों के तत्व है, इसलिए उनकी सामाजिक चेतना पूरी तरह क्रान्तिकारी नहीं है, बल्कि सुधारात्मक है। भारतेन्दु की सामाजिकता में सामाजिक – सांस्कृतिक - आर्थिक - राजनीतिक सुधार की आकांक्षा व्यक्त की गई है। कुछ उदाहरण इष्ट्रवय है -

(आर्थिक) ''अंग्रेज राज सुस साज सजे सब भारी।

पे धन विदेश चलिजात इहै अति खारी।। ''

× × ×

मारकीन मलमल बिना चलत कहू नहि काम

परदेशी जुलाहन के मानहुँ भए गुलाम

(विदेशीवस्तुं) वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौन आदि

आवत सब परदेश सो नितहि जहाजन लादि

× × ×

(सामाजिक यहि असार संसार में चार वस्तु है सार

व्यवहार) जुआ मदिरा मांस अरू नारी संग विहार

× × ×

(कूपमंडूकता) रोकि विलायत गमन इप मंडूक बनायो

ओरन को ससंर्ग घुड़ाई प्रचार घटायो।

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) रिक्त स्थानो में उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए:

1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के पिता का नाम .... था।

2) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य मे पर्दापण के समय .... प्रवृत्तिया प्रचलित थीं।

3) भारतेन्दु जी के परिवार का संस्कार .... भक्ति का था।

4) ’हमन है .... क्या ?

5) ’ब्रज के लता .... मोहिं कीजै,

(ख) टिप्पणी लिखिए: नीचे दिये गये शब्दो पर 5 पंक्तियों मे टिप्पणी लिखिए।

1) भारतेन्दु - मण्डल

----

2) आधुनिक गद्य विधाएँ

----

3) राष्ट्रीयता

6.5 शिल्प पक्ष

साहित्य में विषय वस्तु एवं रूप - गठन दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। विषय वस्तुका संबंध जहाँ बदलती सामाजिक प्रवृत्तियों से है वहीं रूप का संबंध बदलती सामाजिक अभिरूचियों की स्थिरता से है। अर्थात् रूप् तभी बदलते हैं जब सामाजिक रूप से समाज में आधार भूत परिवर्तन उपस्थित हो जाते हें। ज्यादातर ऐसा होता है कि कथ्य रूप - निर्माण में अपनी प्रभावी भूमिका निभाता है या विधान वर्ण्य - वस्तु को संयोजित करने में अपनी भूमिका निभाये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का समय संधिकाल का समय है। एक ओर ब्रजभाषा का संस्कार (भक्ति - नीति - श्रृंगार की प्रवृत्तियाँ) तो दूसरी ओर आधुनिकता (नवजागरण) का आभास । एक ओर विचार दूसरी ओर संस्कार । स्वाभाविक था कि ऐसे समय में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अभिव्यक्त किया गया साहित्य संकान्तिकालीन चेतना से युक्त होता। आइए अब हम भारतेन्दु साहित्य को समझने के लिए उनके शिल्प - विधान का संक्षिप्त रूप में अवलोकन करें।

संरचना या शिल्प की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुछ परम्परागत तत्वों का प्रयोग किया और कुछ नवीन प्रयोग किये। संरचना के अंतर्गत मुख्यतः भाषा, शैली, रस, छंद, अलंकार इत्यादि की गणना की जाती है। आइए हम भारतेन्दु काव्य संरचनागत विशेषताओं का अध्ययन करें -

6.5.1 भाषा

भारतेन्दु युग के काव्य की सर्वप्रमुख भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा उस युग के साहित्य की भाषा थी। हर युग के समाज में मुख्यतः दो भाषाएँ अनिवार्य रूप से होती ही है । एक उस समाज के आभिजात्य वर्ग की भाषा या साहित्य की भाषा और दूसरे जन सामान्य के दैनिक कार्य - व्यवहार की भाषा । भारतेन्दु काल में ब्रजभाषा काव्य की भाषा थी और खड़ी बोली बोलचाल की। इसी बीच गद्य खड़ी बोली में लिखा जाने लगा था। इस द्वैतपूर्ण स्थिति में कविता करना कठिन कार्य था। भारतेन्दु की काव्य भाषा में भी यह द्वैतपूर्ण स्थिति हमें देखने को मिलती है। उन्होने ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में काव्य रचना की है। बावजूद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र विनम्रतावश यह लिखते हैं

कि उनकी अभिरूचि खड़ी बोली कविताओं के अनुकूल नहीं है। सन् 1881 में भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने खड़ी बोली की कविताएँ 'भारत मित्र' में प्रकाशनार्थ भेजी थी। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका मे उनकी प्रसिद्ध कविता 'मंद मंद आवे देखे प्रात समीरन' छपी थी। 'हिंदी भाषा ' निबन्ध के नई भाषा की कविता में उन्होने अपना दोहा उद्धृत किया है -

भजन करो श्रीकृष्ण का मिल कर सब लोग।

सद्ध होयगा काम और छुटेगा सब सोग।।

पर इस टिप्पणी देते हुए भारतेन्दु जी ने लिखा है - अब देखिए, कैसी भौंडी कविता है ! आगे भारतेन्दु ने लिखा है 'जो हो, मैने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ी बोली में कुछ कविता बनाऊ पर वह मेरे चिन्तानुसार नही'। भारतेन्दु की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के बावजूद उन्होने लगभग 70 कविताएँ खड़ी बोली में लिखी हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि भरतेन्दु हरिष्चन्द्र के काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही है। भारतेन्दु ने साहित्य के रूप् में स्वीकृत ब्रजभाषा को और परिष्कृत किया। भारतेन्दु के काव्य में कई भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं, जैसे अंग्रेजी (पोर्ट, शैंपेन, ब्रांडी), उर्दू (खाना, तमाशा, ऐश-आराम, बेकाम इत्यादि) भाषाओं के अतिरिक्त स्थानीय भोजपुरी शब्दों को प्रयोग भी मिलता है।

6.5.2 काव्य – शिल्प

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने व्यवस्थित रूप से प्रबन्ध काव्य तो नही लिखा लेकिन प्रबन्ध एवं मुक्त काव्य रूप के क्षेत्र में उन्होने काफी प्रयोग किये है। भारतेन्दु जी के काव्य रूपों में निबंध काव्य, वर्णनात्मक काव्य, विवरणात्मक काव्य एवं मुक्तक काव्यों की गणना की जाती है। निबंध काव्यों में बकरी विलाप, प्रातः समीर, रिपनाष्टक, वर्णनात्मक काव्यों में होली लीला, मधुमुकुल छंद, हिंडोला, विवरणात्मक काव्यों में विजयिनी विजय वैजयंती, भारत वीरत्व, भारत शिक्षा, मुक्तक काव्यों में प्रेम मालिका, कार्तिक स्नान, प्रेमाश्रु वर्णन, जैन कुतूहल, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप, गीत-गोविदानंद, होली , मुधु मुकुल, राग सग्रहं वर्षा विनोद, विनय - प्रेम पचासा, प्रेम फुलवारी, कृष्णचरित, देवी छद्मलीला, दैन्य प्रलाप, तन्मय लीला, बोधगीत, भीष्मस्वराज इत्यादि रचनाएँ शामिल हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने काव्य क्षेत्रं में कभी परम्परागत रूप - विधान का परिपालन किया है और कभी अपनी ओर से नवीन प्रयोग किया हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रयुक्त छंद - विधान, रस एवं अलंकारों के प्रयोग से हम उनकी शिल्प - कला को ओर बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

छंद :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुख्य काव्य भाषा ब्रजभाषा थी। स्वाभाविक था कि वे ब्रजभाषा काव्य में प्रयुक्त विविध काव्य - छंद का प्रयोग करते। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ब्रजभाषा काव्य के दोहा, कवित्र, सवैया, चौपाई, पद, छप्पय, घनाक्षरी, कुण्छलियाँ, सरोठा के साथ ही लोकगीतों के लावनी, कजली, होली इत्यादि छन्दों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अधिकांश पद्य साहित्य प्रगीत मुक्तक रूप में है। इनकी रचनाओं में अधिकांश विषम मात्रिक छंद का प्रयोग मिलता है।

अलंकार:

ब्रजभाषा काव्य परम्परा के अनुकूल भारतेन्दु ने अपने काव्य में कई अलंकारो का प्रयोग किया है। अनुप्रास, यमक, पुनरूक्ति प्रकाश , उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, संदेह आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

अभ्यास प्रश्न 4

(क) निर्देश : नीचे दिये गए कथन में कुछ सही हैं ओर कुछ गलत। वाक्य के सामने उपयुक्त चिह्न लगाइए।

1) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र का समय संधिकाल का है। (   )

2) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता की मुख्य भाषा खड़ी बोली है। (   )

3) मन्द मन्द आवे देखो प्रात समीरन ’कविता हरिष्चन्द्र चन्द्रिका में छपी थी। (   )

4) भारतेन्दु हरिष्चन्द्र की कविता में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं। (   )

5) बकरी विलाप रचना वर्णनात्मक काव्य रूप में है। (   )

(ख) ’क’ और ’ख’ वर्गों का सही मिलान कीजिए।

‘क’	‘ख’
1) कविवचन सुधा	काव्य
2) अंधरे नगरी	पत्रिका
3) दानलीला	इतिहास
4) कश्मीर कुसुम	उपन्यास

5) पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा नाटक

6.6 सारांश

- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्न्तक हैं। नवजागरणवादी चेतना से पहली बार साहित्य को जोड़ने का काम भारतेन्दु जी ने ही किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि भारतेन्दु ने साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे षिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वालें हरिश्चन्द्र ही हुए।
- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी का जन्म काषी के प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। आपके पिता ब्रजभाषा के प्रतिष्ठित कवि थे। इस प्रकार साहित्यिक माहौल भारतेन्दु जी को बाल्यकाल से ही मिला।
- भारतेन्दु हरिष्चन्द्र जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी सहित्यकार थे। 45 वर्ष की अल्पायु में ही आपने हिन्दी साहित् को जो सेवा की है, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। आपने हिन्दी की कई गद्य विधाओं का प्रवर्तन किया। उपन्यास, निबंध, आत्मकथा, आलोंचना,यात्रा - साहित्य जैसी विधाएँ आपके कारण हिन्दी साहित्य में आई।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी साहित्यिक पत्रकारिता के भी जनक हैं। 'कविवचन सुधा', हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', हरिश्चन्द्र मेगजीन' एवं ' बालावोधिनी' पत्रिका के माध्यम से आपने साहित्य को तत्कालीन समस्याओं से जोड़ा।
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य को हम मुख्यत: दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। भाषा की दृष्टि से भी आपने दो भाषाओं का प्रयोग किया है। प्राचीन या परम्परागत विषयों भक्ति - नीति - श्रृंगार की रचनाएँ आपके कविता ससहितय का मूल हैं। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समस्याओं विदेशी वस्तु के प्रयोग, देश के धन का बाहर जाना, लूट - खसोट, सामा्रज्यवादी नीति का विरोध भी आपकी रचनाओं की मख्य विशेषता है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त आपने खड़ी बोली कविता में भी रचनाएँ की हैं, लेकिन खड़ी बोली गद्य की तरह वह महत्वपूर्ण नहीं है।
- हिन्दी कविता के विषय भक्ति - नीति - श्रृंगार ही माने जाते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने हिन्दी कविता के अंतर्गत राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार जैसे विषयों को शामिल कर दिया। यह आपकी हिंदी कविता को युगान्तकारी देन है।

6.7 शब्दावली

- संस्कार -किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार को परिष्कृत, शुद्ध करने की क्रिया
- विच्छेद - अलगा
- प्रवृत्त - झुकाव, करने की दिशा
- समसामयिक - अपने युग का
- बहुमुखी प्रतिभा - किसी व्यक्ति में कई विशेषताओं का पाया जाना
- मणिकांचन योग - सुन्दर संयोग
- द्वन्द्व - दो विरोधी वस्तुओं के बीच संघर्ष
- श्लाघ्यनीय - श्रेष्ठ प्रयत्न
- निर्विवाद - बिना किसी विवाद के
- पर्दापण - आगमन
- अनुस्यूत - लगा रहना, साथ होना
- संधिकाल - बीच का समय
- संक्रान्तिकालीन चेतना - अवरुद्धपूर्ण समय

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1)

(क) (१) ✓ (२) × (३) ✓ (४) ✓ (५) ✓

(ख) (१) – 44 (२) – विद्यासुन्दर (३) – ब्रजभाषा (४) - दुर्लभ बंधु

अभ्यास प्रश्न 2)

(क) (१) – गिरिधरदास (२) – रीतिकालीन (३) - वैष्णव

(४) - हमन है मस्त मस्ताना हमन को होशियारी क्या? (५) - 'ब्रज के लता पता मोहिं कीजे'

अभ्यास प्रश्न 4)

(क) (१) ✓ (२) × (३) ✓ (४) ✓ (५) ✓

(ख) (1) – पत्रिका (2) – नाटक (3) – काव्य (4) – इतिहास (5) - उपन्यास

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, किशोरी लाल, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।

2. शर्मा, (सं.)हमेन्त, भारतेन्दु समग्र, हिन्दी प्रचारक संस्थान।

3. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन,दिल्ली।

6. आधुनिक काव्य (भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी) – इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विष्वविद्यालय, नई दिल्ली।

6.10 सहायक/ उपयोगी पाठय सामग्री

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कृतित्व का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य प्रवृत्तियों का विशेषता बताइए।

इकाई 7: हिंदी कविता का द्विवेदी युग:परिचय एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 हिंदी कविता का द्विवेदी युग: परिचय

    7.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन

    7.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त

7.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ

7.5 मैथलीशरण गुप्त : रचनागत संदर्भ

7.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

    7.5.1 राष्ट्रीयता

    7.5.2 सुधार

    7.5.3 नवजागरण

    7.5.4 इतिवृत्तात्मकता

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस युग का नामरकण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान एवं सम्मान को ध्यान में रखते हुए किया गया है। हिंदी कविता में भारतेन्दु युग के बाद के काल को ‘द्विवेदी युग’ कहा गया है। नामकरण के संबंध में आपने पूर्व में अध्ययन किया कि इसके कई आधार होते है। रचनाकार-व्यक्तित्व, युग की प्रवृत्ति और सामाजिक-राजनीतिक कई कारण होते हैं जिससे नामकरण स्थिर किया जाता है। पिछले खण्ड में आपने आधुनिकता की विशेषता एवं उसकी प्रवृत्ति का अध्ययन किया। आपने देखा कि आधुनिकता की अवधारणा के मूल में आधुनिक वैचारिक और ज्ञान-विज्ञान की महती भूमिका रही है। आधुनिकता तर्क, बुद्धि एवं मानव केंद्रित चिंतन से विकसित हुआ प्रत्यय है। आधुनिकता की अवधारणा पश्चिम में सर्वप्रथम विकसित हुई। पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के घात-प्रतिघात से भारतीय आधुनिकता का उदय हुआ

है, जिसे भारतीय संदर्भों में पुनर्जागरण कहा गया है। पुनर्जागरण को हिंदी साहित्य में लाने का श्रेय भारतेन्दु हरिशचंद्र को है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र की सृजनात्मक परम्परा के वाहक महावीर प्रसाद द्विवेदी बनते है। भारतेन्दु युग गद्य की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है लेकिन उसकी कविता का पक्ष उतना सशक्त नहीं है। हिंदी साहित्य में इस अभाव की पूर्ति महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक एवं युगप्रवर्त्तक व्यक्तित्व के माध्यम से हुआ, इसीलिए उनके योगदान को बाद के सभी प्रगतिशील रचनाकारों ने स्मरण किया है। भारतेन्दु की परम्परा और महावीर प्रसाद द्विवेदी की परम्परा एक ही है। दोनों के मूल में भारतीय नवजागरण की भूमिका ही काम कर रही है। इस इकाई में हम द्विवेदी युग के रचनाकारों, उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियों एवं भारतीय चिंताधारा के संदर्भ में उनके योगदान का रचनात्मक मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

7.2 उद्देश्य

आधुनिक एवं समकालीन कविता शीर्षक प्रश्न पत्र की यह 5 वीं इकाई है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृत्तिव से परिचित हो सकेंगे।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी के हिंदी साहित्य (कविता) में किये गए योगदान को समझ सकेंगे।
- द्विवेदी-युग के प्रमुख रचनाकार मैथिलीशरण गुप के रचनात्मक-कर्म से परिचित हो सकेंगे।
- द्विवेदी युग के रचनात्मक प्रदेय का मूल्यांकन कर सकेंगे।

7.3 हिंदी कविता का द्विवेदी युग: परिचय

हिंदी कविता का द्विवेदी युग इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसी युग में आकर भाषागत-द्वैत समाप्त हुआ। भारतेन्दु-युग तक हिंदी कविता में दो भाषाएँ चलती रहीं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली के द्वैत और संघर्ष से भारतेन्दुकालीन कविता प्रभावित और संचालित हुई है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जब हिंदी साहित्य के रचना क्षेत्र में आये तो उन्होंने सर्वप्रथम यह महसूस किया कि भाषाई-द्वैत को बिना समाप्त किये हिंदी कविता का वास्तविक विकास संभव नहीं है। ब्रजभाषा की समाप्ति केवल भाषाई मुक्ति नहीं थी। भाषा और संस्कार, भाषा और संस्कृति अविभाज्य हैं। साहित्यिक संस्कृति बिना सांस्कृतिक चेतना के संभव नहीं है और सांस्कृतिक उन्नति बिना साहित्यिक दाय से पूरी नहीं हो पाती। हिंदी कविता का प्रारम्भिक समय भारतीय जनजागरण से सीधे प्रभावित होता है। कम-से-कम छायावाद तक का काव्य भारतीय नवजागरण की प्रेरणा से सृजित हुआ है, जबकि उसके बाद का काव्य तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक

परिस्थितियों एवं आधुनिक विचारधारा से। इस दृष्टि से द्विवेदी युगीन की मूल आत्मा को हम आलोचनात्मक ढंग से समझने का प्रयास करेंगे।

7.3.1 नामकरण एवं काल विभाजन

जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान को लक्ष्य करके इस युग को 'द्विवेदी युग/काल' कहा गया है। नामकरण के संदर्भ में हमें यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि साहित्यिक नामकरण में उस युग की रचनात्मक प्रवृत्ति ही सबसे ज्यादा उपयुक्त होती है। रचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर स्थिर नामरकण उस काल के साहित्य से सीधे जुड़ता है। जबकि किसी रचनाकार-व्यक्तित्व के प्रभाव से किया गया नामरण ऐतिहासिक चेतना से सीधे नहीं जुड़ता बल्कि वह रचनाकार-व्यक्तित्व के माध्यम से जुड़ता है। इसे हम इस प्रकार समझा सकते हैं –

ऐतिहासिक चेतना

↓

रचनाकार-व्यक्तित्व

↓

प्रवृत्ति निर्धारण

लेकिन यदि साहित्यिक क्षेत्र में इस प्रकार की घटना घटे कि किसी रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग की प्रवृत्ति से बड़ा दिखे तो दो बातें ध्वनित होती है। एक, उस युग की प्रवृत्ति से कहीं बड़ा रचनाकार का व्यक्तित्व है। और दूसरे, युग की प्रवृत्तियॉ अपने विकासमान स्थिति में हैं। अधिकांश ऐसा देखा गया है कि किसी विधा के आरंभिक दौर में उस विधा को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले रचनाकार का व्यक्तित्व उस युग में केंद्रीय हो उठता है। किसी विधा के पर्याप्त विकसित होने के उपरान्त बड़े रचनाकार उसे विकसित करने में और बढ़ाने में अपना योगदान देने के बाद केन्द्रिय भूमिका से हट जाते हैं और रचनागत प्रवृत्ति केंद्र में आ जाती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के माध्यम से खड़ी बोली हिंदी कविता साहित्य में स्थापित होती है, अत: यह नामकरण उचित ही है। इस युग का एक नामकरण 'जागरण-सुधार काल' भी किया गया है (देखें –डॉ0 नगेन्द्र का 'हिंदी साहित्य का इतिहास') जो महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की ही एक प्रमुख विशेषता है। केन्द्र में जिस प्रकार परिधि सम्मिलित हो जाती है। उसी प्रकार महावारी प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व में जागरण-सुधार सम्मिलित हो जाते हैं। जागरण का तात्पर्य जहॉं नवजागरणवादी मनोवृत्ति है, वहीं जागरण के पश्चात् पैदा हुई सामाजिक-साहित्यिक सुधार की भावना ही, 'जागरण-सुधार' है।

द्विवेदी युग का काल मोटे तौर पर 1900 ई0 से लेकर 1918 या 1920 ईसवी तक निर्धारित किया गया। हालांकि कुछ जगह काल सीमा की समाप्ति सन् 1925 तक भी स्थिर की गई है। ''द्विवेदी-युग उनके सम्पादन काल के प्रारम्भ (1903 ई0) से 1925 ई0 के लगभग तक माना जाता है।'' (देखें-हिंदी साहित्य कोश, भाग एक, पृष्ठ 264) यहाँ द्विवेदी-युग का समय 1903 से 1925 तक स्थिर किया गया है, जो व्यावहारिक नहीं है। आधुनिक इतिहासकारों ने 1901 से 1920 तक के समय को 'द्विवेदी युग' कहा है। कुछ इतिहासकारों ने 18 वर्ष की एक पीढ़ी के आधार पर का तर्क देकर तथा 1918 से छायावादी प्रवृत्तियों की शुरूआत देखते हुए इस काल को 1901 से 1918 ईसवी तक स्थिर किया है। हम जानते हैं कि इतिहास में किसी खास तिथि से कोई प्रवृत्ति न प्रारम्भ होती और न समाप्त होती है। ईसवी या तिथि इतिहास में लचीलेपन से युक्त होने चाहिए क्योंकि वे सुविधापूर्ण ढंग से विश्लेषित किये जाते हैं। 1903 ई0 में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बनते हैं और 1920 तक वे अनवरत सरस्वती का संपादन करते हैं। उसके पश्चात् कुछ अंतराल के बाद पुन: संपादन कर्म से जुड़ते हैं और 1925 तक वे 'सरस्वती' से जुड़े रहते हैं। तो क्या 'द्विवेदी काल' का प्रारम्भ 1903 से माना जाए। सरस्वती पत्रिका 1900 ई0 से विधिवत रूप से प्रकाशित होना प्रारम्भ होती है। 1900 से 1902 ईसवी तक श्यामसुंदर दास 'सरस्वती' का सम्पादन करते हैं। हमने पहले ही कहा कि काल-विभाजन में सुविधा एवं लचीलापन होना चाहिए। सन् 1901 से 'द्विवेदी काल' मानने से दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं। 1920 ईसवी तक छायावादी प्रवृत्तियाँ उभार लेने लगती हैं और यही वह वर्ष है जब द्विवेदी जी सरस्तवी के सम्पादन कार्य से मुक्त होते हैं, अत: सन् 1901 से 1920 ईसवी के बीच के समय को 'द्विवेदी काल' कहा जा सकता है।

7.3.2 द्विवेदी युग का रचना वृत्त

जिस प्रकार ग्रह के प्रभाव से उपग्रह निर्मित हो जाते हैं, उसी प्रकार बड़े रचनाकार के सृजनात्मक व्यक्तित्व से लेखकों का एक वर्ग निर्मित हो जाता है। हिंदी कविता में मध्यकाल तक इस प्रकार का रचनात्मक वलय धार्मिक-दार्शनिक नेताओं के इर्द-गिर्द निर्मित होता था, जैसे – रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानंद, मध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि। चूँकि मध्यकाल तक रचनात्मक ऊर्जा के मूल में धार्मिक-आध्यात्मिक प्रेरणा मुख्य हुआ करती थी, इसलिए धार्मिक नेतृत्वकर्त्ता एक रचनात्मक मण्डल तैयार किया करते थे। आधुनिक कालीन कविता में धर्म हट गया, उसका स्थान नवजागरणवादी चेतना ने ले लिया। इस युग में जो रचनाकार नवजारगण की सृजनात्मक ऊर्जा को जितने अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सका, वह अपने आस-पास रचनाकारों का मण्डल निर्मित करने में उतना ही समर्थ हुआ है। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र के रचनात्मक व्यक्तिव के प्रभाव से 'भारतेन्दु मण्डल' निर्मित हुआ, ठीक उसी प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्यिक अनुशासन एवं सृजन ने 'द्विवेदीवृत्त' को जन्म दिया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में कवियों का कइ वर्ग सम्मिलित था। कुछ तो द्विवेदी जी के प्रभाव से रचना कर रहे थे तो कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक रचनात्मकता के प्रभाव वश। यहॉं हम द्विवेदीकालीन प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे। श्रीधर पाठक वैसे तो भारतेन्दु कालीन कवि हैं। उनकी प्रसिद्ध कविताऍं जगत सच्चाई सार, उजड़ग्राम, श्रांतपथिक एकान्तवासी योगी 1886 ई0 के लगभग ही प्रकाशित हो चुकी थी, लेकिन उनका रचनात्मक कर्म द्विवेदी-युग में भी सक्रिय रहा। श्रीधर पाठक ने मुख्यत: प्रकृति प्रेम की कविताऍं लिखी हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त आपने सामाजिक सुधार से संबंधित भी कई रचनाऍं की है। पं0 अयोसिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी-युग में सर्वाधिक बड़े कवियों में से एक है। आप भारतेन्दु-युग से ही रचना क्षेत्र में सक्रिय थे, लेकिन आपकी महत्वपूर्ण कृत्तियाँ द्विवेदी युग में ही सृजित हुई हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय की हिंदी कविता को सबसे बड़ी देन उनका महाकाव्य 'प्रियप्रवास' है, जो सन् 1914 में प्रकाशित हुआ। ग्रंथ की भूमिका में हरिऔध ने विस्तार से खड़ी बोली के विरोधियों के इस तर्क का उत्तर दिया है कि खड़ी बोली में कविता नहीं लिखी जा सकती। 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। हरिऔध जी ने संस्कृत वर्णवृत्तों में आधुनिक संदर्भो को पिरोया है। महाकाव्य की विशेषत इस दृष्टि से भी है कि इसकी नायिका राधा है। यहॉं राधा का चित्रण प्रेमिका रूप में नहीं है, बल्कि लोकसेविका रूप में है। 'वैदेही वनवास', चौखे चौपदे चुभते चौपदे, मधुकलश आपकी अन्य महत्वपूर्ण काव्य-कृत्तियॉं हैं। मैथलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इस युग की समस्य संभावनाऍं एवं सीमाएँ गुप्त जी के काव्यों में प्रकट हुई हैं। रंग में भंग, जयद्रथ वध, विकट भट, प्लासी का युद्ध, गुरूकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज, साकेत, यशोधरा इत्यादि आपके प्रसद्धि काव्य है। साहित्यिक प्रयोग एवं विषयवस्तु दोनों दृष्टियों से मैथिली शरण गुप्त जी द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। मैथिली शरण गुप्त जी की साहित्यिक विशेषताओं पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। रामचरित उपाध्याय द्विवेदी-युग के पुरानी परम्परा के कवि माने जाते हैं। इनका परिचय देते हुए रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है ''ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे और पहले पुराने ढंग की हिंदी कविता की ओर रूचि थी। 'सरस्वती' में जब खड़ी बोली की कविताऍं निकलने लगी तब वे नये ढंग की रचना की ओर बढ़े..... 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', देवसभा' 'देवी द्रौपदी', 'भारत भक्ति' 'विचित्र विवाह इत्यादि अनेक कविताऍं उन्होंने खड़ी बोली में लिखी हैं। पं0 गिरिधर शर्मा नवरत्न की कविताऍं, सरस्वती तथा अन्य पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होती रही है। ये ब्रजभाषा, संस्कृत ओर अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे। इनकी कविताऍं इतिवृत्तात्मक शैली में ही प्राय: लिखी गई हैं। लोचन प्रसाद पाण्डेय द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवि हैं। आपने प्रबन्ध काव्य तथा मुम्तक काव्य दोनों की रचना की है। आपकी काव्य-संवदेना विस्तृत है।

उपर्युक्त कवि द्विवेदी-वृत्त के कवि है। ये वे कवि है जिनकी रचनाएँ 'सरस्वती' पत्रिका में बराबर प्रकाशित होती रहीं या जिन पर महावीर प्रसाद द्विवेदी का पर्याप्त प्रभाव रहा है। लेकिन इसके

अतिरिक्त द्विवेदी-युग में कवियों का एक वृत्त ऐसा भी है जो भिन्न-भिन्न धारा की कविता लिखते रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन कवियों 'द्विवेदीमंडल के बाहर की काव्यभूमि' की संज्ञा दी है। इन कवियों में मुख्य रूप से राय देवी प्रसाद 'पूर्ण, पं0 नाथूराम शंकर शर्मा, पं0 गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', पं0 सत्यनारायण कविरत्न, लाला भगवान दीन, पं0 रामनरेश त्रिपाठी, पं0 रूपनारायण पाण्डेय आदि है।

7.4 महावीर प्रसाद द्विवेदी : रचनागत संदर्भ

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म 1864 ई. में रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1938 ई. में हुई। भारतेन्दु के बाद किसी एक व्यक्तित्व ने आधुनिक हिंन्दी साहित्य को प्रभावित किया है तो वो है –महावीर प्रसाद द्विवेदी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला, उन्नाव एवं फतेहपुर में हुई। उसके उपरान्त आप बम्बई चले गये। यहीं पर आपने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। अध्ययन समाप्ति के उपरान्त आपने रेलवे विभाग की नौकरी कर ली। इस विभाग के अनुशासन बहुत योग दिया। बाद में अपने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और 'सरस्वती' के संपादन के माध्यम से साहित्य की सेवा करते रहे। महावीर प्रसाद द्विवेदी का अवदान उनके भाषा संबंधी सुधार कार्य एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा निर्देशित करने में है। फिर भी आपकी कविताएँ अपने ढंग से ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। यहाँ हम द्विवेदी जी की प्रमुख काव्य-कृतियों की एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं।

अनुदित:

- विनय विनोद-1889 ई. भर्तृहरि के वैराग्य शतक का दोहों में अनुवाद
- विहार वाटिका – 1890 ई. गीत गोविन्द का भावनुवाद
- श्री महिम्न स्तोत्र – 1891 ई. संस्कृत के महिम्न स्तोत्र का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद।
- गंगा लहरी- 1891 ई. पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगा लहरी' की सवैयों में अनुवाद।
- ऋतुतरंगिणी – 1891 ई. कालिदास का ऋतुसंहार का छायानुवाद
- सोहागरात (अप्रकाशित) – बाइरन के ब्राइडल नाईट का छायानुवाद।
- कुमारसंभवसार- 1902 ई. कालिदास के कुमारसंभव के प्रथम पाँच सर्गों का सारांश।

मौलिक कृतियाँ :

- देवी-स्तुति-शतक – 1892 ई.
- कान्यकुब्जावलीव्रतम् – 1898 ई.

- समाचार पत्र सम्पादक स्तव – 1898 ई.
- नागरी- 1900 ई.
- कान्यकुब्ज- अबला विलाप- 1907 ई.
- काव्य मंजूषा – 1903 ई.
- सुमन – 192 ई.
- द्विवेदी काव्य – माला -1940 ई.
- कविता कलाप- 1909 ई.

रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

हिंन्दी साहित्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी के मूल्यांकन से पूर्वहमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि जिस युग में द्विवेदी जी रचना कर रहे थे वह अपनीसंपूर्ण मानसिकता में ब्रजभाषा के सामंती संस्कारों से आच्छन्न युग था। उस समय के साहित्यिक माहौल एंव स्थिति पर हिंदी साहित्य कोश में लिखा गया है। ‘‘वह समय हिंदी के कलात्मक विकासका नहीं, हिंदी के अभावोंकी पूर्ति का था। अपने ज्ञान के विविध क्षेत्रों – इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञा, पुरातत्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी, आदि से सामग्रीलेकर हिंदी के अभावोंकी पूर्ति की।’’ (पृष्ठ-439) महावी प्रसाद द्विवेदी युग प्रवर्त्तक रचनाकार हैं। उनका बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य में फैली शीतकालीन संस्कारों से हिंन्दी कविता की मुक्त कर उसका वर्ण्य- क्षेत्र विस्तृत किया। स्वयं ‘रसज्ञांजन’की भूमिका में कविता का आदर्श महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रकारव्यक्त कियाहै-‘‘कविता का विषय मनोरंजक एवं उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबंध लिखने की कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के ‘गतागत’ की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त ..... सभी पर कविता हो सकती है। ’’ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदान को इस प्रकार स्मरण किया है- ‘‘महावीर प्रसाद जी द्विवेदी को पद्यरचना की एक प्रणाली के प्रवर्तक के रूप में पाते हैं ...... पहली बात तो यह हुई कि उनके कारण भाषा में बहुत कुछ सफाई आयी। बहुत-से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी और कई लोग ब्रज और अवधी आदि का मेल भी कर देते थे। इस प्रकार के लगातार संशोधन से धीरे-धीरे बहुत-से कवियों की भाषा साफ हो गई। उन्हीं नमूनों पर और लोगों ने भी आपना सुधार किया।’’ मराठी के प्रभाव से द्विवेदी जी की कविता में गद्य का पदविन्यास आ गया। इसके अतिरिक्त वे वडर्सवर्थ के इस सिद्धान्त से भी प्रभावित थे कि गद्य और पद्य का पदविन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए। इस प्रभाव का दुष्परिणाम यह हुआ कि द्विवेदी जी की कविता और उस मंडल के कवियों की कविताएँ प्राय: इतिवृत्तात्मक हो गई हैं। उनमें वह सूक्ष्मता, कोमलता एवं कल्पना की उड़ान नहीं मिलती जो छायावादी कवियों की

विशेषताएँ है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदान का मूल्यांकन करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- "आचार्य द्विवेदी मूलत: व्यवस्थापक हैं, जो उस समय नये-नये बनते खड़ी बोली हिंन्दी भाषा और साहित्य के विकास की ऐतिहासिक आवश्यकता थी।"

7.5 मैथिलीशरण गुप्त : रचनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भ

आपने पूर्व में अध्ययन किया कि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे बड़े कवि हैं। गुप्त जी इस दृष्टि से द्विवेदी युग का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। यहाँ हम यह देखेंगे कि वह कौन सी विशेषताएँ थी जिसके कारण मैथिलीशरण गुप्त का काव्य इस युग का प्रतिनिधि काव्य बना। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के आलोचनात्मक मूल्यांकन पूर्व आइए हम उनके जीवन परिचय एवं रचनाओं की संक्षिप्त रूपरेखा से परिचित हों।

जीवन एवं काव्य परिचय

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 ई. में झाँसी के चिरगाँव नामक स्थान पर हुआ था। आपकी मृत्यु 1964 ई. में हुई। मैथिलीशरण गुप्त के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी पत्रिका 'सरस्वती' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाएँ कलकत्ता से निकलनेवाले 'वैश्यापारक' पत्र में प्रकाशित होती थीं। द्विवेदी जी की प्रेरणाएवं प्रभाव से मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक प्रतिभा में काफी उभार आया। 'रंग में भंग' कृति के प्रकाशनके पश्चात गुप्त जी चर्चित हुए। लेकिन जिस कृति के कारण में 'राष्ट्रकवि' कहलाये, वह थी- 'भारत भारती' जागरण गीत है। 'हम कौन थे, क्या हो गये है और क्या होंगे अभी/आओ, विचारों आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।' इस ग्रंथ का केंद्रीय प्रतिपाद्य है। मैथिलीशरण गुप्त की अन्य रचनाओं में साकेत, यशोधरा, अनध, विकटभट, किसान,विष्णुप्रिया, द्वापर, जयभारत, नहुष, पंचवटी, हिडिम्बा, सिद्धराज इत्यादि हैं। इन कृतियों में 'साकेत' महाकाव्य रामभक्तिशाखा में तुलसीदास के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बन गया है।

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त की रचनात्मक क्षमता का सर्वाधिक उज्जवल नक्षत्र है। इस ग्रन्थ के आधार पर मैथिलीशरण गुप्त को रामभक्ति शाखा का कवि कहा गया है। प्रश्न यह है कि क्या मात्र रामभक्ति शाखा के अनुकरण से ही गुप्त जी बड़े कवि हुए हैं ? बड़ा कवि वही होता है जो परम्परा के हाय को स्वीकार करते हुए भी उसे समृद्ध करता है। तुलसीदास से हटकर रामभक्ति शाखा में नया जोड़ना एक प्रकार से चुनौती ही थी, जिसे मैथिलीशरण गुप्त जी ने सफलतापूर्वक साधा है। प्रश्न कियाजा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त का नयापन क्या है ? तुलसीदास के राम संपूर्ण चराचर जगत को धारण करने वाले ब्रह्म हैं किन्तु मैथिलीशरण गुप्त ने आधुनिक नवजागरणवादी चेतना के अनुरूप राम को मानव रूप में ही देखने का प्रस्ताव/आग्रह किया है--"राम तुम मानव

हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?/विश्व में रमे हुये नही सभी कहीं हो क्या ?/ तब में निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे/तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।" आगे 'साकेत'की ही पंक्तियाँ है--

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,

संदेश यहाँ में नहीं स्वर्ग का लाया,

उस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

नवजागरणवादी चेतना के तहत ईश्वर का मानव रूप में चित्रण एक बिन्दु था, जो मैथिलीशरण गुप्त को बड़ा कवि बनाता है। एक दूसरा बिन्दु है गुप्त जी का नारी चित्र। 'साकेत' महाकाव्य में यदि वे चाहते तो राम या सीता को प्रतिनिधि व्यक्तित्व प्रदान कर सकते थे। लेकिन 'साकेत'की नायिका 'उर्मिला'है जो आधुनिक नवजागरण के अनुरूप ही पुनर्मूल्यांकन के योग्य है। कैकेई, उर्मिला,विष्णुप्रिया, यशोधरा जैसी स्त्री चरित्रों को जितनी करूणा मैथिलीशरण गुप्त ने प्रदान किया है, उतना कोई आधुनिक साहित्यकार नहीं। नारी के सम्बनध में मैथिलीशरण गुप्त का बीज वक्तव्य तो प्रसिद्ध है ही-

"अबला जीवन, हाय, तुम्हारी यही कहानी,

आँचन में है दूध और आँखों में पानी।"

मैथिलीशरण गुप्त के नारि-चित्रण पर डॉ बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है: "जहाँ-तहाँ नारी की विद्रोह वाणी भी सुनाई पड़ती है किन्तु उसमें तेजस्विता नहीं है। ये सारी नारियाँ पारिवारिक मार्यादाओंके भीतर सब कुछ सहती हैं। विष्णुप्रिया कहती है- 'सहने के लिए बनी है, सह तू दुखिया नारी।" वस्तुत: मैथिलीशरण गुप्त से यह आशा करना कि वे विद्रोही चरित्रों की सृष्टिकरें, यह उचित नहीं है। "गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बृड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमताअर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्यप्रणालियों को ग्रहणकर चलने की शक्ति। इस दृष्टि से हिंदी भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।"

7.6 द्विवेदी युग की प्रवृत्तियॉं

हिंदी कविता में महावीर प्रसाद का महत्व उनके द्वारा किये गये भाषा-सुधार; सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन, रीतिवाद विरोधी अभियान चलाने एवं एक पूरी पीढ़ी को दिशा-निर्देशन के चलते है। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचना-कर्म अपने शिष्य मैथिलीशरण गुप्त की तुलना में कमजोर है। द्विवेदी जी महत्व हिंदी साहित्य में कविता की श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना नहीं है, जितना

श्रेष्ठ रचना निर्मित करने की प्रेरणा से है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि महावी प्रसाद द्विवेदी का कवित्व श्रेष्ठता की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना ऐतिहासिक दृष्टि से। इस दृष्टि से द्विवेदी युग की कविता प्रवृत्ति को हम महावीर प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक व्यक्तित्व की ही छाया कह सकते हैं। आइए, हम संक्षेप में द्विवेदी कालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को जानने का प्रयास करें।

7.5.1 राष्ट्रीयता

महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान प्रारम्भ में अंग्रेजी प्रशासन के अंग थे, या कहें कि सरकारी कर्मचारी थे। इसीलिए स्वयम् द्विवेदी जी और 'सरस्वती' के प्रारम्भिक लेखों में राष्ट्रीयता के तत्व नहीं पाये जाते। सरस्वती के शुरूआती अंकों में द्विवेदी जी अंग्रेजी प्रशासन के खिलाफ लेख छापने से बचते रहे। बल्कि शुरूआती कुछ लेख ब्रिटिश हुकुमत के पक्ष में भी छपे। लेकिन क्रमश: द्विवेदी –युग की कविता राष्ट्रीयता की ओर झुकती चली गई। द्विवेदी जी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' की रचना की, जो राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व रखती है। 'भारत-भारती' कुछ पंक्तियाँ देखें –

है ठीक ऐसी ही दशा हत-भाग्य भारतवर्ष की।/ कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।

× × ×

दृढ़-दुख दावानल इसे सब ओर घेर जला रहा, तिस पर अदृश्टाकाश उलटा विपद-वज्र चला रहा।
यद्यपि बुझा सकता हमारा नेत्र-जल इस आग को, पर धिक् हमारे स्वार्थमय सूखे हुए अनुराग को

× × ×

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी/ आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।/
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं, हम कौन थे, इस ज्ञान का, फिर भी अधूरा है नहीं।

'भारत-भारती' उद्बोधन परक शैली में लिखी गई है। इसी कारण इसने तत्कालीन समय में युवाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुप्त जी का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'साकेत' की कथा पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रची गई है, लेकिन जगह-जगह उसमें भी राष्ट्रीयता की झलक मिल जाती है। जैसे –

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में

सिंधु पार वह बिलख रही व्याकुल मन में।

× × ×

आओ, यदि जा सको रौदं हमको यहॉं

यों कह पथ में लेट गये बहु जन वहॉं

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति की दृष्टि से सियारामशरण गुप्त की कविता पंक्ति भी उल्लेखनीय है –

कवि के स्वतंत्र देश

तेरे लिए कौन नया गीत आज गाऊं मैं

मेरे घट में हो आज गंगा-जमुना का नीर,

भक्ति हो संगम का तीर्थ-तीर,

रेवा, शोप, वैत्रवली, पंचनद गोदावरी

उल्लसित प्रेम-प्रेमी

शिक्षा, सिंधु सरयु, पवित्र कृष्णा, कावेरी

सबके पुनीत अमिभज्जन से

नव-अभिषेक करूँ आज के सुदिन का,

आऊं मातृभूमि के चिरन्तर से

एक रस आ रही अखण्ड निर्मलिनता।

इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी की राष्ट्रीय भाव बोध की

पंक्ति देखें –

द्वार-द्वार पर जाकर विजया

करूणा प्रेम-निधान।

सबको लगी जगाने गाकर

देशभक्ति-भय गान।।

उसके गान अतीत काल के
थे सुख रूप-ललाम।

सुनकर के आहें भरते थे

कृषक कलेजा थाम।।

उसके गान हृदय में भरते
थे साहस उत्साह।

बतलाते थे स्वतंत्रता को

सुख पाने की राह।।

× × ×

एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है।

पलभर की भी स्वतंत्रता सौ स्वर्गों से उत्तर है।

7.5.2 सामाजिकता

द्विवेदी जी की कविता समाज सुधार या सामाजिकता की व्यापक भावना से संचालित रही है। सामाजिक की भावना कहीं सामाजिक सुधार में अभिव्यक्त हुई है तो कहीं समाज को आगे बढ़ाने की गत्यात्मकता में। यहाँ हम द्विवेदी युग की कविता में अभिव्यक्त कुछ उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात स्पस्ट करेंगे।

हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल/जो सबका है वहीं हमारा भी है मंगल/मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर/हिंसा का है एवं अहिंसा ही प्रप्युत्त (अहिंसा का आग्रह – सिया राम शरण गुप्त)

× × ×

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद-व्यवधान यहां सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम-सम्मान यहाँ।

× × ×

जाति धर्म या सम्प्रदाय का नहीं व्यवहार यहाँ,

राम-रहीम, बुद्ध,-ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहाँ।

× × ×

नारी पर नर का कितना अत्याचार है

लगता है, विद्रोह मात्र ही अब इसका प्रतिकार है।

× × ×

आ पहुँचा नवयुग सभी समक्ष तिहारें,

धन वारें धनी, दरिद्र दीनता वारें। (मैथिली शरण गुप्त)

× × ×

यह दहेज की आग सुवंशों ने दहकाई।

प्रलयवाही सी वही आज चारों दिशा छाई।

× × ×

बाल विवाह रोक हम देते यदि हमको मिलते अधिकार।

वृद्ध व्याह का किन्तु देश में कर देते हम खूब प्रचार।

× × ×

सामाजिक कतिपय कुप्सित नियम।

अति संकुलित छूतछात के विचार।

हर ले रहे हैं आज हमारा सर्वस्व। (अयोध्या सिंह आध्याय हरिऔध)

उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि द्विवेदी कालीन कविता अपनी सामाजिक चेतना में किसी भी कविता धारा से तुलनीय है।

7.5.3 नवजागरण

रामविलास शर्मा ने द्विवेदी युग के साहित्य को नवजागरण की 'द्वितीय मंजिल' कहा है। कारण यह है कि इस युग का साहित्य अपने मूल रूप में नवीन चेतना से आप्लावित है। पूर्व में कहा गया कि-साकेत और 'प्रियप्रवास' की नाभिकाएँ उर्मिला और राधा मात्र विरहिणी प्रेमिका रूप में यहाँ चित्रित नहीं हुई हैं बल्कि वे लोकसेविका रूप में चित्रित हुई हैं। 'प्रियप्रवास' की यह पंक्ति देखे –

अत: सबों से यह श्याम ने कहा

स्व जाति उद्धार महान् कर्म है।

चलों करें पावक में प्रवेश औ।

स धेनु लेवें निज जाति का बचा।

× × ×

बिना न त्यागे ममता स्व-प्राण की
बिना न जोखों-ज्वालादाग्नि में पड़े।

न हो सका विश्व महान् कार्य है।

न सिद्ध होता भव जन्म हेतु है।

× × ×

बढ़ों करो वीर स्वजाति का भला,

अपार दोनों विध लाभ है हमें।

किया स्व कर्तव्य उबार भी लिया।

सु-कीर्ति पाई यदि भस्म हो गये।

7.5.4 इतिवृत्तात्मकता

द्विदेवी युगीन कवता की एक बड़ी विशेषता इसकी इतिवृत्तात्मक शैली रही है। प्रश्न है कि इतिवृत्तात्मकता क्या है ? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी जी की कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – ‘’उनका जोर बराबर इस बात पर रहता था कि कविता बोलचाल की भाषा में होनी चाहिए...........परिणाम यह हुआ है कि उनकी भाषा बहुत अधिक गद्वत् (Prosaic) हो गयी।.........उनकी अधिकतर कविताएँ इतिवृत्तात्मक (Matter of Fact) हुई। उनमें वह लाक्षणिकता, वह चित्रमयी भावना और वक्रता बहुत कम आ पायी जो रस-संचार की गति को तीव्र और मन का आकर्षित करती है। ‘यथा’, ‘सर्वथा’, ‘तथैव’ ऐसे शब्दों के प्रयोग ने उनकी भाषा को और भी अधिक गद्य का स्वरूप दे दिया।’ द्विवेदी युगीन कविता की पंक्तियॉं देखें, सर्वत्र गद्य का आभास मिलता है, ‘दिवसावआन का समय था’ पंक्ति में था, शब्द का प्रयोग वाक्य को गद्यवत बना रहा है या मैथिलीशरण गुप्त की काव्य पंक्तियॉं देखें –

क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को भेंट दो। निज देश को जीवन सहित तन-मन तथा धन भेंट दो।।

× × ×

पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे। छींटे वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे ?

× × ×

मुझे फूल मत मारो

× × ×

वेदने ! तू भी भली बनी

× × ×

राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?

× × ×

हम कौन थे , क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी

संक्षिप्त उदाहरणों के माध्यम से हम यह कहना चाह रहे हैं कि द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली उसकी विशिष्ट पहचान बन गई।

अभ्यास प्रश्न 1

क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजि।

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म..............ई0 में हुआ था।
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने..........पत्रिका का संपादन किया।
3. प्रियप्रवास महाकाव्य के रचयिता.........हैं।
4. 'भारत-भारती'..........बोध की रचना है।
5. मैथलीशरण गुप्त..............शाखा के अंतर्गत आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

क) सत्य/असत्य बताइए।

1. साकेत के रचनाकार महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं।
2. यशोधरा हरिऔध जी की रचना है।
3. 'भारत-भारती' राष्ट्रीय भाव बोध की रचना है।
4. इतिवृत्तामकता द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता है।
5. दिवस का अवसान समीप था 'पंक्ति मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचना है।

7.7 सारांश

आधुनिक एवं समकालीन कविता 'शीर्षक प्रश्न पत्र के अंतर्गत आपने 5वीं इकाई हिंदी कविता का द्विवेदी युग: परिचय एवं मूल्यांकन का अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि –

- 'द्विवेदी युग' नामकरण के मूल में महावीर प्रसाद द्विवेदी का रचनात्मक व्यक्तित्व रहा है, जिसने हिंदी कविता को एक नयी दिशा दी।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी युगप्रवर्त्तक साहित्यकार थे। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने साहित्य को सामंती चरित्र से मुक्त कर उसे आधुनिकता की ओर बढ़ने की दिशा प्रदान की।
- महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्याकरण सम्मत सुधार कर भाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया।
- द्विवेदी युग का साहित्य व्यापक रूप से नवजागरणवादी चेतना के तले रचा गया है। इस नवजागरण को सांस्कृतिक बोध एवं राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति से भली-भॉंति समझा जा सकता है।
- द्विवेदी युगीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रीयता, समाज सुधार, नवजागरणवादी चेतना एवं इतिवृत्तात्मकता रही है।
- द्विवेदी युगीन साहित्य को उत्कर्ष प्रदान करने वाले कवियों में अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरऔध, तथा मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं।

7.8 शब्दावली

- नवजागरण – अतीत के गौरव का रचनात्मक स्मरण

- इतिवृत्तात्मकता – द्विवेदी युगीन कविता की विशेषता, कविता का गद्यावत होना।
- रीतिकालीन संस्कार – श्रृंगार-स्तुति जैसे मनोभावों की प्रचुरता
- आधुनिक प्रवृत्ति – नवीन वस्तु, विचार को सृजित करने वाला व्यक्तित्व

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन
2. शुक्ल, रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा
3. नगेन्द्र, डॉ – हिंदी साहित्य का इतिहास (सं0), नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
4. सिंह, बच्चन – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन

7.10 संदर्भ प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) क)

1. 1864 ई0 2. सरस्वती 3. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

7. राष्ट्रीय 7. रामभक्ति शाखा

अभ्यास प्रश्न 2) क) 1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 7. सत्य 7. असत्य

7.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, रामविलास, - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
2. सिंह, उदयभानु – महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य किन दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ? विवेचन कीजिए।
2. द्विवेदी युग की काव्य-प्रवृत्तियॉं स्पष्ट कीजिए।

इकाई 8.प्रिय प्रवास- पाठ एवं विवेचन(प्रथम सर्ग)

इकाई की रुपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 हरिऔध- जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व
 8.3.1 जीवन परिचय
 8.3.2 व्यक्तित्व
 8.3.3 कृतित्व
8.4 हरिऔध- काव्यकला
 8.7.1 भावपक्ष
 8.7.2 कलापक्ष
8.5 प्रियप्रवास- कथावस्तु
8.6 प्रियप्रवास- पाठ एवं व्याख्या
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.12 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदी युग के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। आधुनिक खड़ी बोली को साहित्यिक रूप प्रदान करने वाले कवियों में हरिऔध जी का विशिष्ट स्थान है। हरिऔध जी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ ब्रजभाषा में भी लिखी हैं। उनकी खड़ी बोली की संस्कृतनिष्ठ शब्दावली अत्यधिक प्रभावपूर्ण है। हरिऔध जी ने प्रकृति का जो इतिवृतात्मक स्थूल चित्रण किया है वह द्विवेदी युगीन काव्य में अद्वितीय है। प्रकृति के मनोरम चित्रों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं का आधुनिक युग के अनुरूप निरूपण करने में कविवर हरिऔध को पूर्ण सफलता मिली है। उन्होंने राधा कृष्ण के उत्कृष्ट चारित्रिक गुणों को बड़ी ही कुशलता से निरूपित किया है। उनकी राधा केवल कृष्ण की आदर्श प्रेमिका ही नहीं अपितु सम्पूर्ण लोक-कल्याण की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। कृष्ण के लोक रंजनकारी रूप की अपेक्षा उन्होंने उनके लोक कल्याणकारी आदर्श स्वरूप को अधिक महत्व दिया है। उनके प्रियप्रवास में कृष्ण के लोक-

कल्याणकारी स्वरूप को लोक-रक्षक एवं आदर्श मानव नेता के रूप में अभिव्यंजित किया गया है। प्रियप्रवास के कृष्ण अवतारी पुरूष न होकर एक आदर्श लोक रक्षक एवम् लोक हितकारी महापुरूष के रूप में सामने आये हैं। प्रियप्रवास आधुनिक खड़ी बोली का पहला महाकाव्य ही नहीं अपितु कृष्ण काव्य परम्परा का एक आदर्श ग्रन्थ भी है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
2. जीवन परिवेश व साहित्यिक पृष्ठभूमि रचनाकर्म को प्रभावित करती है, हरिऔध जी के काव्य के अध्ययन से इस तथ्य को समझ सकेंगे।
3. हरिऔध कृत प्रियप्रवास के कथानक की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
7. प्रियप्रवास के महत्वपूर्ण सर्गों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।
5. हरिऔध जी के काव्य की संवेदनागत और शिल्पगत चेतना का अध्ययन कर सकेंगे।
6. हरिऔध जी के स्थान और उनके योगदान को समझ सकेंगे।

8.3 हरिऔध- जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

8.3.1 जीवन परिचय

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' **(15 अप्रैल, 1865-16 मार्च, 1947)** हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार है। यह हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं और सम्मेलन द्वारा विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किये जा चुके हैं। प्रिय प्रवास हरिऔध जी का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह हिंदी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है और इसे मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान में हुआ। उनके पिता का नाम पंडित भोलानाथ उपाध्याय था। उन्होंने सिख धर्म अपना कर अपना नाम भोला सिंह रख लिया था, वैसे उनके पूर्वज सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजों का मुग़ल दरबार में बड़ा सम्मान था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा निजामाबाद एवं आजमगढ़ में हुई। पांच वर्ष की अवस्था में इनके चाचा ने इन्हें फ़ारसी पढ़ाना शुरू कर दिया था। हरिऔध जी निजामाबाद से मिडिल परीक्षा पास करने के पश्चात काशी के क्वीन्स कॉलेज में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए गए, किंतु स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा। उन्होंने घर पर ही रह कर संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेजी आदि का अध्ययन किया और १८८४ में निजामाबाद के मिडिल स्कूल में अध्यापक हो गए। इसी पद पर कार्य करते हुए उन्होंने नार्मल-परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इनका विवाह आनंद कुमारी के साथ संपन्न हुआ।

सन १८८९ में हरिऔध जी को सरकारी नौकरी मिल गई। वे कानूनगो हो गए। इस पद से सन १९३२ में अवकाश ग्रहण करने के बाद हरिऔध जी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अवैतनिक शिक्षक के रूप से कई वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। सन १९४१ तक वे इसी पद पर कार्य करते रहे। उसके बाद यह निजामाबाद वापस चले आए। इस अध्यापन कार्य से मुक्त होने के बाद हरिऔध जी अपने गाँव में रह कर ही साहित्य-सेवा कार्य करते रहे। अपनी साहित्य-सेवा के कारण हरिऔध जी ने काफी ख़्याति अर्जित की। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें एक बार सम्मेलन का सभापति बनाया और विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया। सन १९४५ ई० में निजामाबाद में आपका देहावसान हो गया।

हरिऔध जी ने ठेठ हिंदी का ठाठ, अधखिला फूल, हिंदी भाषा और साहित्य का विकास आदि ग्रंथ-ग्रंथों की भी रचना की, किंतु मूलतः वे कवि ही थे उनके उल्लेखनीय ग्रंथों में शामिल हैं: -

1. प्रिय प्रवास
2. वैदेही वनवास
3. पारिजात
4. रस-कलश
5. चुभते चौपदे
6. चौखे चौपदे
7. ठेठ हिंदी का ठाठ
8. अध खिला फूल
9. रुक्मिणी परिणय
10. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास
11. प्रिय प्रवास, हरिऔध जी का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह हिंदी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इस रचना पर इन्हें मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

काव्यगत विशेषताएँ

वर्ण्य विषय - हरिऔध जी ने विविध विषयों पर काव्य रचना की है। यह उनकी विशेषता है कि उन्होंने कृष्ण-राधा, राम-सीता से संबंधित विषयों के साथ-साथ आधुनिक समस्याओं को भी लिया है और उन पर नवीन ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। प्राचीन और आधुनिक भावों के मिश्रण से उनके काव्य में एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

वियोग तथा वात्सल्य-वर्णन- प्रिय प्रवास में कृष्ण के मथुरा गमन तथा उसके बाद ब्रज की दशा का मार्मिक वर्णन है। कृष्ण के वियोग में सारा ब्रज दुखी है। राधा की स्थिति तो अकथनीय है। नंद यशोदा आदि बड़े व्याकुल हैं। पुत्र-वियोग में व्यथित यशोदा का करुण चित्र हरिऔध ने खींचा है, यह पाठक के हृदय को द्रवीभूत कर देता है- प्रिय प्रति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है? दुःख जल निधि डूबी का सहारा कहाँ है? लख मुख जिसका मैं आजलौं जी सकी हूँ। वह हृदय हमारा नैन तारा कहाँ है?

लोक-सेवा की भावना- हरिऔध जी ने कृष्ण को ईश्वर रूप में न दिखा कर आदर्श मानव और लोक-सेवक के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने स्वयं कृष्ण के मुख से कहलवाया है- विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का, सहाय होना असहाय जीव का। उबारना संकट से स्वजाति का, मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है। कृष्ण के अनुरूप ही राधा का चरित्र है वे दोनों की भगिनी अनाश्रितों की माँ और विश्व की प्रेमिका हैं। अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग का दुख सह कर भी वे लोक-हित की कामना करती हैं- प्यारे जीवें जग-हित करें, गेह चाहे न आवें।

प्रकृति-चित्रण - हरिऔध जी का प्रकृति चित्रण सराहनीय है। अपने काव्य में उन्हें जहाँ भी अवसर मिला है, उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया है। और उसे विविध रूपों में अपनाया है। हरिऔध जी का प्रकृति-चित्रण सजीव और परिस्थितियों के अनुकूल है। संबंधित प्राणियों के सुख में प्रकृति सुखी और दुःख में दुखी दिखाई देती है। कृष्ण के वियोग में ब्रज के वृक्ष भी रोते हैं- फूलों-पत्तों सकल पर हैं वादि-बूँदें लखातीं, रोते हैं या विपट सब यों आँसुओं की दिखा के। जहाँ हरिऔध जी ने वृक्षों आदि को गिनाने का प्रयत्न किया है, वहाँ उनका प्रकृति-वर्णन कुछ नीरस क्षौर परंपरागत-सा लगता है, किंतु ऐसा बहुत कम हुआ है। अधिकतर उनका प्रकृति चित्रण सरल और स्वाभाविक और हृदयग्राही है। संध्या का एक सुंदर दृश्य देखिए- दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला। तरु शिखा पर थी जब राजती, कमलिनी-कुल-वल्लभ का प्रभा।

काव्य भाषा - हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही कविता की है, किंतु उनकी अधिकांश रचनाएँ खड़ी बोली में ही हैं। हरिऔध की भाषा प्रौढ़, प्रांजल और आकर्षक है। कहीं-कहीं उसमें उर्दू-फारसी के भी शब्द आ गए हैं। नवीन और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का तो इतनी अधिकता है कि कहीं-कहीं उनकी कविता हिंदी की न होकर संस्कृत की सी ही प्रतीत होने लगती है। राधा का रूप-वर्णन करते समय देखिए- रूपोद्याम प्रफुल्ल प्रायः कलिका राकेंदु-बिंबानना, तन्वंगी कल-हासिनी सुरसि का क्रीड़ा-कला पुत्तली। शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य लीलामयी, श्री राधा-मृदु भाषिणा मृगदगी-माधुर्य की मूर्ति थी। भाषा पर हरिऔध जी का अद्भुत अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ उन्होंने संस्कृत-गर्भित उच्च साहित्यिक भाषा में कविता लिखी वहाँ दूसरी ओर उन्होंने सरल तथा मुहावरेदार व्यावहारिक भाषा को भी सफलतापूर्वक अपनाया। उनके चौपदों की भाषा इसी प्रकार की है। एक

उदाहरण लीजिए- नहीं मिलते आँखों वाले,पड़ा अंधेरे से है पाला। कलेजा किसने कब थामा, देख छिलते दिल का छाला।।

शैली - हरिऔध जी ने विविध शैलियों को ग्रहण किया है। मुख्य रूप से उनके काव्य में निम्नलिखित शैलियाँ पाई जाती हैं- १. संस्कृत-काव्य शैली- प्रिय प्रवास में। २. रीतिकालीन अलंकरण शैली- इस कलश में। ३. आधुनिक युग की सरल हिंदी शैली- वैदेही-वनवास में। ४. उर्दू की मुहावरेदार शैली- चुभते चौपदों और चोखे चौपदों में।

रस-छंद-अलंकार - हरिऔध जी के काव्य में प्रायः संपूर्ण रस पाए जाते हैं, रुणा वियोग, शृंगार और वात्सल्य रस की पूर्णरूप से व्यंजना। हरिऔध जी की छंद-योजना में पर्याप्त विविधता मिलती है। आरंभ में उन्होंने हिंदी के प्राचीन छंद कवित्त सबैया, छप्पय, दोहा आदि तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग किया। बाद में उन्होंने इंद्रवज्रा, शिखरिणी, मालिनी वसंत तिलका, शार्दूल, विक्रीड़ित मंदाक्रांता आदि संस्कृत के छंदों को भी अपनाया।

अलंकार - रीतिकालीन प्रभाव के कारण हरिऔध जी अलंकार प्रिय है, किंतु उनकी कविता-कामिनी अलंकारों से बोझिल नहीं है। उनकी कविता में जो भी अलंकार हैं, वे सहज रूप में आ गए हैं और रस की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुए हैं। हरिऔध जी ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही को सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। अनुप्रास, यमक, उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक उनके प्रिय अलंकार हैं।

मूल्यांकन - हरिऔध जी ने गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में हिंदी की सेवा की। वे द्विवेदी युग के प्रमुख कवि है। उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली में काव्य-रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि उसमें भी ब्रजभाषा के समान खड़ी बोली की कविता में भी सरसता और मधुरता आ सकती है। हरिऔध जी में एक श्रेष्ठ कवि के समस्त गुण विद्यमान थे। 'उनका प्रिय प्रवास' महाकाव्य अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण हिंदी महाकाव्यों में 'माइल-स्टोन' माना जाता है। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के शब्दों में हरिऔध जी का महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है- 'इनकी यह एक सबसे बड़ी विशेषता है कि ये हिंदी के सार्वभौम कवि हैं। खड़ी बोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रजभाषा, कठिन-सरल सब प्रकार की कविता की रचना कर सकते हैं।

8.3.2 व्यक्तित्व

हरिऔध जी बड़ी ही सरल प्रकृति के सहृदय व्यक्ति थे। उनकी स्वाभिमान की भावना तो बड़ी प्रखर थी। किन्तु वे अभिमानी नहीं थे। सरकारी सेवा में तो वे सदर कानूनगो के पद पर नियुक्त थे, जिसकी उस जमाने में पर्याप्त महत्ता थी, लेकिन इतने उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद भी उनमें अहं भावना नहीं आई थी। उनका स्वभाव गम्भीर और सौम्य था चंचल नहीं और न कृत्रिम। गम्भीर प्रकृति के होने के कारण वे एकान्त जीवन व्यतीत करना अधिक पसन्द करते थे।

हरिऔध जी अतिथि सत्कार के प्रति विशेष जागरूक रहते थे और यदा कदा तो उनकी इस सजगता से अतिथि भी परेशान हो उठते थे।हरिऔध के व्यक्तित्व में आदर्शवादिता कूट-कूटकर भरी हुई थी। वे भजन-पूजन को विशेष महत्व नहीं देते थे। किन्तु सनातन धर्म में विशेष श्रद्धा रखते थे।हरिऔध जी स्वभाव से भीरू थे। उनको भीरू बनाने में उनकी माता का पर्याप्त योग रहा। उनकी माता के हृदय में सदैव यह भाव रहा कि मेरे लाल को कोई कष्ट न हो। इससे हरिऔध लाड़ प्यार में पलते रहै । विषाद और कष्टों से हरिऔध को सदैव दूर रखा। उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में 'हरिऔध अभिनन्दन ग्रंथ' की निम्नांकित टिप्पणी अवलोकनीय है- "आपके छोटे भाई पंडित गुरूसेवक सिंह तो वंश परम्परा का परित्याग करके सिक्खों की वेष-भूषा छोड़ बैठे थे और पूर्णतया पाश्चात्य सभ्यता में रँग गये थे(वे डिप्टी कलक्टर थे), परन्तु हरिऔध जी अंत तक अपनी परम्परा का पालन करते रहै । आप लम्बे केश तथा दाढ़ी रखते थे । आपकी मुखाकृति अत्यन्त आकर्षक थी । आपका शरीर दुबला-पतला और रंग गेंहुआ था । वैसे मुख पर सदैव तेज विद्यमान रहता था, परन्तु कुछ दिनों तक अर्श से पीड़ित रहने के बाद अन्तिम दिनों में आपके चेहरे पर चिन्ता की क्षीण रेखाएं विद्यमान हो गयी थी । अब घर पर प्रायः कमीज, बास्केट तथा पाजामा पहनते थे । परन्तु अन्य सार्वजनिक स्थानों पर जाते समय श्वेत पगड़ी, शेरवानी, पाजामा, अंग्रेजी जूते तथा मोजे धारण किया करते थे। गले में दुपट्टा भी डालते थे। वैसे खद्दर पहनने के विशेष शौकीन नहीं थे ।

8.3.3 कृतित्व

हरिऔध जी सरस्वती के वरद-पुत्र थे। अतः उन्होंने उनके भंडार की बहुमुखी श्रीवृद्धि की है। उन्होंने कव्य क्षेत्र ही नहीं, गद्य क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा अच्छा प्रदर्शन किया है। उनकी कृतियों के नाम निम्नलिखित है-

(क)	रूपक	1. प्रधुम्नविजय व्यायोग, 2. रूक्मिणी परिणय	
(ख)	महाकाव्य	1. प्रियप्रवास, 2. वैदेही वनवास	
(ग)	उपन्यास	1. ठेठ हिन्दी का ठाठ, 2. अधखिला फूल	
(घ)	आलोचनात्मक कृतियॉ	1. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	
		2. कबीर वचनावली की आलोचना	
		3. साहित्य संदर्भ	
		7. विविध ग्रंथों की भूमिकाएँ	
(ड़)	स्फुट काव्य संग्रह	1. चुभते चौपदे	2. चोखे चौपदे
		3. बोलचाल	7. रस कलश
		5. पद्य प्रसून	6. काव्योपवन
		7. कल्पलता	8. पारिजात
		9.प्रेम प्रंपच	10. ऋतु मुकुर

8. प्रेमाम्बु प्रवाह 9.प्रेमाम्बु प्रस्रवण
10. प्रेम पुष्पोपहार 17. प्रेमाम्बु वारिधि

उपर्युक्त मौलिक कृतियों के साथ-साथ उनकी गद्यात्मक एवं पद्यात्मक दोनों ही प्रकार की अनुदित रचनाएँ भी हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं-

पद्यात्मक अनुदित रचनाएँ- 1. उपदेश कुसुम तीन भाग
(गुलिस्ताँ के आठवें अध्याय का अनुवाद)
2. विनोद वाटिका(गुलजार दविस्तां का अनुवाद)

गद्यात्मक अनुदित रचनाएँ- 1. वेनिस का बाँका
2. नीति निबन्ध
3. उपदेश कुसुम
7. विनोद-वाटिका

8.4 हरिऔध- काव्यकला

8.7.1 भावपक्ष

आधुनिक हिन्दी साहित्य को प्रतिष्ठित एवं समृद्ध करने में अयोध्या सिंह उपाध्याय जी का अपूरणीय योगदान है। हिन्दी खड़ी बोली को जिन कवियों ने साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया उनमें हरिऔध जी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। भाषा भाव एवं कला इन तीनों दृष्टियों से इनकी काव्यकला उल्लेखनीय है। इनका काव्य प्रियप्रवास आधुनिक हिन्दी खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है।

1. प्रकृति चित्रण- हरिऔध जी का प्रकृति चित्रण अत्यधिक आकर्षक एवं भव्य है। इन्होंने प्रकृति के स्थूल स्वरूप की बड़ी भावपूर्ण विवेचना की है। प्रियप्रवास में सान्ध्यकालीन प्रकृति का चित्रण करते हुए कविवर हरिऔध लिखते है-

"दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरू शिखा पर थी अब राजती
कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा"

उन्होंने प्रत्येक सर्ग के प्रारम्भ में प्रकृति का भावुक निरूपण किया है। प्रातःकालीन प्रकृति का भी बड़ा रसपूर्ण चित्रण उनके काव्य में परिलक्षित होता है। आलम्बन, उद्दीपन, दूती, उपदेशात्मक एवं मानवीकरण आदि अनेक रूपों में उन्होंने प्रकृति चित्रण किया है।

2. रस निरूपण- प्रियप्रवास का प्रधान रस वियोग श्रृंगार है। किन्तु उसमें अन्य रसों की भावपूर्ण योजना प्रस्तुत हुई है। वीर, करूण, इत्यादि रसों का समायोजन प्रियप्रवास में दिखाई देता है।

प्रियप्रवास प्रमुखतः प्रेम के वियोग पक्ष का करूण निर्दशन है। प्रियप्रवास का श्रृंगार ‘प्रवास विप्रलम्भ’ की श्रेणी में आता है।

3. नारी भावना- प्रियप्रवास वास्तव में भारतीय नारी की व्यापक करूण भावनाओं का निरूपण है। प्रियप्रवास की राधा एक आदर्श नायिका है जो अपने प्रियतम की भावनाओं को सर्वोपरि स्थान देती है। उसके मन में प्रियतम से मिलने की अपेक्षा लोक-कल्याण की भावनाएँ अधिक है, वे कहती है।

“प्यारे जीवें लोक हित करें
गेह चाहै ना आवें।

आधुनिक काल में जिस राधा के दर्शन होते है वह द्विवेदी युगीन नैतिकता लोक हित और सुधारवाद से प्रभावित है। हरिऔध की राधा पूर्ववर्ती कवियों की राधा से सर्वथा अलग है। प्रियप्रवास की चित्रपटी पर राधा का चरित्र कुछ अनूठे ढंग से चित्रित किया गया। हरिऔध की नारी लोक सेविका एवं भारत भूमि की अनुपम नारी के रूप में परिलक्षित हुई है। उस नारी में दीन-दुखियों के प्रति दया, करूणा कूट-कूट कर भरी हुई है।

3. **समन्वय एवं आधुनिकतावादी दृष्टिकोण**- कविवर हरिऔध के महाकाव्य प्रियप्रवास के कृष्ण अवतारी कृष्ण न होकर मानव जाति के उद्धारक पुरूष कृष्ण के रूप में चित्रित हुए हैं। तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर नवयुवकों को प्रेरित करने के लिए हरिऔध जी ने लोकसंग्रह का भाव अधिक ग्रहण किया है। उनके काव्य में श्रीकृष्ण को ब्रज के रक्षक नेता के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास के कृष्ण जहाँ एक ओर सहृदय प्रेमी हैं वहाँ दूसरी ओर मानवता, सामाजिक मर्यादा के महान संरक्षक भी है। श्रीकृष्ण का ब्रजभूमि में जो कीर्तिमान होता है उसका मूल कारण उसके उत्कृष्ट गुण और सर्वभूत हित की भावना ही है। लोक-सेवा और लोक कल्याण का भाव ही हरिऔध के काव्य का मूल उद्देश्य एवं केन्द्र बिन्दु है।

**“भू में सदा यदपि है जन मान पाला
राज्याधिकार अथवा धन द्रव्य द्वारा
होता परन्तु वह पूजित विश्व में है
निस्वार्थ भूत हित और कर लोक सेवा“**

8.7.2 कला पक्ष

हरिऔध जी की कविता के कला पक्ष का विवेचन निम्न शीर्षकों के आधार पर प्रस्तुत है।

1. **भाषा**- कवि या रचियता के कथ्य को पाठकों तक सम्प्रेषित करने का एकमात्र माध्यम
2. उपयुक्त भाषा ही होती है। हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों भाषाओं में कविता रचना की है। ब्रजभाषा में लिखी हुई उनकी कविताओं का विशेष महत्व नहीं है,

क्योंकि ब्रजभाषा का युग समाप्त हो रहा था और कविता में खड़ीबोली की स्थापना का आन्दोलन चलाया जा रहा था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी खड़ीबोली के पक्षधर थे। उन्होंने केवल देशभक्ति एवं अंग्रेजी शासन की आलोचना करने वाली कविताएँ खड़ीबोली में लिखी। भक्ति सम्बन्धी कविताएँ ब्रजभाषा में लिखकर भारतेन्दु ने यह सिद्ध किया था कि खड़ीबोली में कोमल भावों वाली कविताएँ नहीं लिखी जा सकती। हरिऔध ने अपने 'प्रियप्रवास' व 'वैदेही-वनवास' महाकाव्यों की रचना खड़ीबोली में करके यह सिद्ध कर दिया कि खड़ीबोली में सभी प्रकार के भावों का प्रकाशन हो सकता है। हरिऔध जी कविता में प्रयुक्त खड़ीबोली प्रायः सरल और लोक प्रचलित है। उसमें कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम शब्द आ गये है, जैसे-

"उछलते शिशु थे अति हर्ष से
युवक थे रस की निधि लूटते
जरठ को फल लोचन का मिला
निरखके सुषमा सुखमूल की।

हरिऔध जी की भाषा कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों की अधिकता के कारण समझने में कठिन भी हो गयी है। जैसे-

"रूपोद्यान प्रफुल्य प्राय कलिका राकेन्द्र बिम्बानना, तन्वंगी कलहसिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुतली।" आदि।

हरिऔध जी का भाषा पर असाधारण अधिकार था, उन्होंने 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' कविता संग्रहों में मुहावरेदार और सरल लोकप्रचलित भाषा का प्रयोग किया है।

2. छन्द- हरिऔध जी ने परम्परागत हिन्दी छन्दों एवं संस्कृत के मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों में कविता रची है। संस्कृत के वर्णिक छन्दों में लिखना बहुत कठिन काम है। मात्रिक छंदों में तो छन्द के पूरे चरण में मात्राएँ गिनी जाती है। पर संस्कृत वर्णिक छन्दों में वर्णों अर्थात् अक्षरों की संख्या निश्चित होने के साथ ही यह भी निश्चित होता है कि कौन से अंक के शब्द दीर्घ और कौन से लघु होंगे। दुतविलम्बित छन्द का एक उदाहरण प्रस्तुत है। इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते है। उनका क्रम लघु, लघु, लघु, दीर्घ, लघु, लघु, लघु, लघु, लघु, दीर्घ, लघु, दीर्घ होता है, जैसे-

"दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरू शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुलवल्लभ की प्रभा"।

हरिऔध जी द्वारा 'प्रियप्रवास' की भाषा और छन्दों के प्रयोग के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "खड़ीबोली में इतना बड़ा काव्य अभी तक नहीं निकला है। बड़ी भारी विशेषता इस काव्य की यह है कि सारा संस्कृत के वर्णवृतों में है, जिसमें अधिक परिणाम में
रचना करना कठिन काम है।"इस महाकाव्य में कुल मिलाकर 1569 पद्य है जो कि मन्दाक्रान्ता, दुरतविलम्बित, वंशस्थ, मालिनी, शिखरिणी, बसन्त तिलका और शार्दूल-विक्रीहित नामक सात छन्दों में लिखे गये है। प्रियप्रवास के छन्दों में न गति और पति सम्बन्धी दोष है और न भाषा का भदेसपन, उनके छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े छन्दो में लय एवं प्रवाह का प्रचुर सौष्ठव दर्शनीय है।

3. अंलकार- काव्य क्षेत्र में अलंकारों की महत्ता की उद्घोषक आचार्य केशव जी निम्नांकित उक्ति अवलोकनीय है

**"जदपि सुजाति सुलक्षणी सुवरन सदृश सुवृत।
भूषण बिना न राजई कविता वनिता मित।"**

अर्थात् उत्तम वृत्त(छन्द) वर्णों(शब्द चयन) और लक्षणों से युक्त होते हुए अलंकार विहीन कविता निराभरणा कामिनी के सदृश शोभायमान नहीं प्रतीत होती ।

हरिऔध जी ने अपनी कविता में अलंकारों का प्रयोग किया है पर उन्हें कविता में बोझ नहीं बनने दिया। अलंकारों में भी हरिऔध जी ने प्रचलित अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का ही प्रयोग किया है। कुछ अलंकारों का उदाहरण दृष्टव्य है-

अनुप्रास- **"तरणि बिम्ब तिरोहित हो चला
गगन मंडल मध्य शनैः शनैः
ध्वनिमयी करके गिरी कंदरा
कलित कानन केलि निकुंज को।**

उपमा- **"कुकुभु शोभित गोरज बीच से
निकलते ब्रजबल्लभ यौ लसे"**

श्लेष- **"विपुल धन अनेकों रत्न हो साथ लाए
प्रियतम बतला दो मेरा लाल कहाँ है।**

उत्प्रेक्षा- **"सारा नीला सलिल सरि का शोक-छाया-पगा सा
कंजों में से मधुप कढ़के घूमते थे भ्रमे से
मानो खोटी विरह घटिका सामने देख के ही
कोई भी थी अवनतमुखी कान्ति-हीना मलीना।**

इस प्रकार सिद्ध होता है कि हरिऔध जी की कविता का कला पक्ष भी मोहक है। भाव पक्ष और कला पक्ष की सुन्दरता और सफलता ने हरिऔध जी को श्रेष्ठ बना दिया है।

8.5 प्रियप्रवास संक्षिप्त कथावस्तु

प्रथम सर्ग का आरम्भ सांध्य-वेला में श्रीकृष्ण के ग्वाल-बालों के साथ वन से गाय चराकर लौटने के वर्णन से किया गया है। इसमें कवि ने दिखाया है कि ब्रज के आबाल वृद्ध नर-नारी कृष्ण की मुरली की मधुर ध्वनि सुनने के लिए किस प्रकार उत्कंठित रहते थे और उसकी ध्वनि के कानों में पड़ते ही अपने-अपने कार्यों को छोड़कर कृष्ण के समीप जा पहुँचते थे। धीरे-धीरे रात्रि का अंधकार बढ़ता जाता है और चतुर्दिक् सन्नाटा छा जाता है।

द्वितीय सर्ग में रात्रि के प्रायः दो घड़ी बीत चुकने के समय की गोकुल की दशा का अंकन किया गया है। प्रायः सभी ब्रजवासी श्रीकृष्ण के उत्कृष्ट गुणों के विषय में चर्चा और उनका गुणगान करने में संलग्न थे कि तभी उन्हें ड्योडी पीटने वाले की यह घोषणा सुनाई दी कि राजा कंस ने दोनों कुमारों के साथ राजा नन्द को तथा कतिपय अन्य प्रतिष्ठित गोपों को धनुष-यज्ञ देखने के लिए कल प्रातः आमंत्रित किया है, अतः कल प्रातः मथुरा जाने के लिए उचित तैयारी कर ली जाए। ब्रजवासी यह सुनकर व्याकुल हो उठे, क्योंकि उन्हें कंस के विगत आचरण को दृष्टिगत करते हुए उसके द्वारा श्रीकृष्ण को मथुरा बुलाने के मूल में दाल में काला प्रतीत होने लगा ।

तृतीय सर्ग में हरिऔध जी ने एक ओर तो ब्रजवासियों द्वारा प्रभात में मथुरा जाने के लिए मूक भाव से तैयारियाँ करने का वर्णन किया है, तो दूसरी ओर ब्रज के आबाल-वृद्ध नर-नारियों में ही नहीं, अपितु प्रकृति में भी व्याप्त शून्यता, विषाद और नीरसता का चित्रांकन किया है। व्याकुल यशोदा स्व-पुत्र की रक्षा के लिए देवी-देवताओं से नाना प्रकार की मनौतियाँ माँगती हुई रूदन कर रही थीं। ब्रज के नर-नारी भी प्रायः रोते हुए इस दुश्चिन्ता में मग्न थे कि न जाने क्या होने वाला है?

चतुर्थ सर्ग में कवि ने कृष्ण की अनन्य प्रेमिका राधा के विषय में इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए कि वह गोकुल के समीपवर्ती गाँव के वृषभानु नरेश की पुत्री थी, इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि राजा नन्द और वृषभानु के परिवारों के मध्य मैत्री सम्बन्ध था। परिवारों की इस मैत्री के कारण बचपन से राधा और कृष्ण एक-दूसरे के यहाँ जाते रहते थे और एक-दूसरे के साथ खेला-कूदा करते थे। उनका यह संसर्ग साहचर्य आयु के साथ बढ़ते-बढ़ते प्रेम में परिणत हो उठा था और राधा ने वैधानिक रीति से विवाह न होने पर भी श्रीकृष्ण का मानसिक रूप से वरण कर लिया था ।

पंचम सर्ग का आरम्भ उस दिवस के प्रभात-काल में ब्रजवासियों की दयनीय दशा के चित्रण से किया गया है, जिस दिन श्रीकृष्ण को मथुरा के लिए प्रस्थान करना था। ब्रज के आबाल वृद्ध नर-नारियों के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उनके प्रस्थान की वेला आ पहुँची और अक्रूर के रथ पर जा बैठने पर जब श्रीकृष्ण भी सवार होने लगे तो ब्रजवासियों का रूदन स्वर और भी बढ़ उठा। कुछ रथ के मार्ग में लोट गए थे, जबकि कुछ रथ के पहियों को पकड़कर बैठ गए थे। अंततया नन्द द्वारा उन्हें जैसे-तैसे यह कहकर समझाया गया कि मैं दो दिन में दोनों कुमारों के साथ सकुशल गोकुल लौट आऊँगा और तब कहीं जाकर उनका रथ मथुरा की ओर बढ़ सका।

षष्ठ सर्ग में कवि ने श्रीकृष्ण के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा में उनके लौटने के मार्ग में पलक-पाँवड़े बिछाए रहने ब्रजवासियों और यशोदा की व्यग्र-विकल दशा का चित्रांकन किया है। उधर राधा की दशा तो और भी अधिक दुःखमयी हो रही थी, जिसने कृष्ण का मनसा वरण कर रखा था। इस सर्ग में कवि ने 'वायु दूतिका प्रसंग' की नियोजना के माध्यम से राधा द्वारा श्रीकृष्ण के समीप वायु को अपनी दूती के रूप में भेजकर उनकी कोई वस्तु-यहाँ तक कि उनकी चरण रज ही उड़ा लाने की प्रार्थना के रूप में बड़े ही मार्मिक प्रसंग की योजना की है।

सप्तम सर्ग में राजा नन्द के अकेले ही मथुरा से लौटकर आने पर ब्रजवासियों, विशेषतया यशोदा की व्याकुलता का वर्णन किया गया है। राजा नन्द भी जिस तरह लोगों से मुँह छिपाते हुए गोकुल में प्रविष्ट होते हैं(क्योंकि वे लज्जित थे कि मैं उन्हें क्या जवाब दूंगा) तथा यशोदा की शोक विह्वलता और अंततया मूर्च्छित हो उठने का कवि ने मार्मिक वर्णन किया है ।

अष्टम सर्ग में ब्रज की गोपियों की करूण-दयनीय दशा का चित्रांकन किया गया है, जो यह जानकर अतीव व्यग्र-विकल हो उठती हैं कि कृष्ण और बलराम मथुरा से राजा नन्द के साथ नहीं लौटे हैं।

नवम सर्ग में हरिऔध जी ने यह दिखाया है कि ब्रज के आबाल वृद्ध नर-नारी ही श्रीकृष्ण के विछोह में नहीं तड़पते रहते थे, अपितु श्रीकृष्ण की भी उनके वियोग में वैसी ही दशा थी। एक दिवस उन्होंने अपने अंतर्मन की व्यथा को उद्धव से व्याप्त करते हुए कह ही दिया कि उद्धव! यहाँ सभी प्रकार के राजसी ऐश्वर्यों का उपभोग करते हुए भी मेरे हृदय से स्वमाता-पिता, गोप-गोपियों और विशेषतया राधा की स्मृति- उनका प्रेम-सम्बन्ध भुलाए नहीं भूलता है।

दशम सर्ग में उद्धव के भोजनोपरान्त नन्द-गृह के एक कक्ष में विश्राम करने के लिए जाने पर नन्द और यशोदा के भी वहाँ आ पहुँचने और यशोदा द्वारा उद्धव को अपने श्रीकृष्ण विषयक हृदयानुराग को सुनाने का चित्रांकन किया गया है।

एकादश सर्ग में गोपों की विगत स्मृतियों के माध्यम से श्रीकृष्ण द्वारा कालिया नामक नाग को नाथने तथा जंगल में लगी आग से ग्वाल-बाल और गो-वत्सादि को बचाने के प्रसंगों का वर्णन कराया गया है। उद्धव जब उन्हें श्रीकृष्ण का संदेश सुनाकर समझाते बुझाते हैं, तो दो प्रौढ़ गोप श्रीकृष्ण के ब्रज-निवास से सम्बन्धित प्रसंगों को सुनाते हुए यह भाव व्यक्त करते हैं कि ऐसे जन-रक्षक श्रीकृष्ण की याद कैसे भुलाई जा सकती है।

द्वादश सर्ग में उद्धव गोपियों का समझाने-बुझाने का प्रयत्न करते हैं, जो उनकी श्रीकृष्ण द्वारा ब्रजवासियों की घनघोर वर्षा से रक्षा करने का प्रसंग सुनाती है। इसमें परम्परागत वर्णन के अनुसार कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को उंगली पर उठाने का वर्णन नहीं कराया गया, अपितु घनघोर वर्षा के कारण आई बाढ़ से बचाने के लिए कृष्ण ब्रजवासियों को गोवर्धन पर्वत की कन्दराओं में पहुँचाने की दिशा में भगीरथ-प्रयत्न करते हैं। यह विशेषतया कृष्ण और उनकी गोप-मंडली के ही प्रयत्नों का परिणाम था कि उस वर्षा से लोगों को कम-से-कम कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

त्रयोदश सर्ग में गोपों द्वारा श्रीकृष्ण के परोपकारी स्वभाव की प्रंशसा करते हुए उनके द्वारा अघासुर, व्योमासुर, बकासुर आदि राक्षसों का वध करके जन-जीवन को सुरक्षित बनाने का वर्णन किया गया है।

चतुर्दश सर्ग में उद्धव यमुना-तट पर बैठे होते हैं कि वहाँ ब्रज गोपियों का एक झुंड पानी भरने आता है। वे उद्धव से कृष्ण के विषय में प्रश्न करती हैं और उद्धव उन्हें यह समझाने का प्रयास करते हैं कि श्रीकृष्ण का गोकुल के प्रति प्रेम-भाव पूर्ववत् ही है। वे गोपियों को समझाते हैं कि वे भी श्रीकृष्ण के प्रति अपने मोह-भाव को त्याग दें, जिससे श्रीकृष्ण लोक-कल्याण के कार्यों में दत्तचित्त हो सके।

पंचदश सर्ग में कवि ने उद्धव द्वारा राधा की विरह-कातर दशा को देखने का वर्णन किया है। उद्धव भ्रमण करते हुए वृषभानु की वाटिका में जा पहुँचते हैं, जहाँ उन्हें एक उन्मादग्रस्त किशोरी वाटिका के लता-पुष्पादि से अपनी अंतर्व्यथा निवेदित करती दृष्टिगत होती है। उद्धव वृक्षों और निकुँजों की ओट में छिपकर राधा की विरह-वेदना को सुनते रहते हैं। इस सर्ग में कवि ने विरह की दसों दशाओं में से अधिकांश का राधा के संदर्भ में चित्रण किया है। इस सर्ग में उद्धव राधा
की इन दशाओं को छिपकर देखते ही रहते हैं, उससे कुछ कहते नहीं है।

षोडश सर्ग के आरम्भ में कवि ने बसन्त ऋतु की सुषमा का वर्णन करने के अनन्तर उद्धव द्वारा राधा को समझाए जाने का वर्णन किया है। वे राधा को श्रीकृष्ण का संदेश देकर तथा उनको लोकोपकार के कृत्यों में निरत बताकर राधा को यह परामर्श देते हैं कि वह उनके मोह-भाव का परित्याग कर दे। इस पर हरिऔध जी ने राधा के मुख से उद्धव को एक लम्बा प्रवचन-सा दिलाया है, जिसमें वह मोह और प्रणय का अन्तर स्पष्ट करती हुई श्रीकृष्ण सम्बन्धी अपनी प्रणय-भावना को अडिग सिद्ध करती है। वह आजीवन कुँवारी रहने का संकल्प व्यक्त करते हुए उद्धव से यह आर्शीवाद भी माँगती है कि मेरा कौमार्य-व्रत सफल हो सके, जिससे मैं लोक-कल्याण के कार्य कर सकूँ।

सप्तदश सर्ग के आरम्भ में कवि ने यह वर्णन किया है कि उद्धव मात्र दो दिन के लिए गोकुल आए थे, किन्तु ब्रजवासियों के प्रेम से अभिभूत होकर वे छह महीने पश्चात ही मथुरा लौट सके। किन्तु इसके पश्चात् भी श्रीकृष्ण गोकुल नहीं लौटे। इसके विपरीत ऐसी खबरें आने लगीं कि जरासंध मथुरा पर आक्रमण कर रहा है, जिससे ब्रजवासी श्रीकृष्ण की कुशलता के विषय में संत्रस्त हो उठे। उसके अठारहवीं बार आक्रमण करने के समय यह दुःखद समाचार मिला कि जरासंध के बार-बार के आक्रमणों से परेशान होकर श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारिका चले गये हैं। हाँ, ब्रजवासियों की यह आशा अब भी नहीं टूटी थी कि वे किसी-न-किसी दिन गोकुल अवश्य लौटेंगे। श्रीकृष्ण के वियोग में ब्रज की जो गोपिकाएँ अत्यन्त व्यथित होकर बावली-सी तथा मूर्च्छित होती रहती थीं, राधा उनकी देखभाल और समझाने-बुझाने में निमग्न रहने लगी। उसकी तरह ब्रज की कुछ अन्य गोप-बालाओं ने भी कौमार्य-व्रत ग्रहण कर लिया था और वे लोकोपकार के कृत्यों में निरत रहती थीं। कवि की इस उक्ति के साथ यह महाकाव्य परिसमाप्त हो जाता है।

8.6 प्रिय प्रवास पाठ एवं व्याख्या

दिवस का .... कुल बल्लभ की प्रभा।

सन्दर्भ- प्रस्तुत दुरत विलम्बित छंद महाकवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' विरचित खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' की प्रथम चतुष्पदी है। इसमें कवि ने सांध्यकालीन प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है।

प्रसंग- प्रिय प्रवास कृष्ण कथा पर आधारित महाकाव्य है। कृष्ण जी भोर होते ही ग्वाल बाल के साथ गौएँ चराने जाते थे और संध्या होते वापिस लौट आते थे। कृष्ण का आगमन दिखाने के लिए कवि ने पृष्ठभूमि के रूप में सांध्यकालीन प्रकृति का सजीव एवं मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या- दिन का अन्त सन्निकट होने के कारण सूर्य अस्त प्राय था, जिससे सूर्य बिम्ब के आरक्त हो उठने के कारण आकाश मण्डल में लालिमा छाती जा रही थी। कमल कमलिनियों के कुल अर्थात् समूह के मनभावन भगवान भुवन भास्कर अर्थात् सूर्य अस्ताचल की ओट में छिपने ही वाले थे, जिससे उनकी रश्मियाँ(किरणें) अब मात्र वृक्षों की चोटियों पर ही सुशोभित हो रही थी, अर्थात् सूर्य किरणें शनैः-शनैः ऊँची वस्तुओं पर ही पड़ रही थी।

शब्दार्थ- अवसाद- अन्त, लोहित- लाल, तरू शिखा- वृक्ष की चोटियाँ, कमलिनि कुल वल्लभ- कमलों के समूह को प्रिय अर्थात सूर्य, प्रभा- प्रकाश, छूप।

विशेष-

1. प्रस्तुत पंक्तियों को मंगलाचरण की वस्तु निर्देशात्मक श्रेणी में स्थान दिया जा सकता है, क्योंकि इस वियोग प्रधान काव्य में कमलिनी रूपी ब्रजबालाओं से सूर्य रूपी श्रीकृष्ण के विछोह का चित्रांकन किया है।
2. प्रिय प्रवास का मूल स्वर विषाद व्यथा का है। इस दृष्टि से कृति का आरम्भ संध्या के लोहित वातावरण से करना(उषा जहॉ उल्लास की प्रतीक है वहीं संध्या अवसाद और ढलान की) कृतिकार की उचित पृष्ठभूमि के निर्माण की क्षमता का परिचय देता है।
3. कमलिनि-कुल तथा कुल-बल्लभ में छेकानुप्रास अंलकार है। इन पंक्तियों में श्रुत्रि मधुर व्यंजनों के प्रयोग के कारण श्रुत्यनुप्रास अंलकार भी है।

विपिन बीच .... विनिमज्जित सी हुई।

प्रसंग- संध्या के समय पक्षी चूगा-पानी से निवृत होकर अपने-अपने घरों को जाते हैं इसी का सजीव एवं मनोहारी वर्णन इन पंक्तियों में किया है।

व्याख्या- सांध्यकालीन प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए कवि आगे कहता है कि वन में पक्षियों के समूह का कलरव बढ़ता ही जा रहा था। नाना प्रकार की ध्वनियाँ करते हुए चहचहाते पक्षियों की पंक्तियाँ गगन मण्डल में उड़ती जा रही थी।

कवि कहते है कि शनैः-शनैः आकाश की अरूणिमा बढ़ती जा रही थी, जिसमें आकाश के साथ-साथ दसों दिशाएँ भी रंग गई थी अर्थात् सभी ओर लालिमा व्याप्त हो गई थी। आकाश और

दिशाओं के अनुरूप ही लता-पादप और वृक्ष अर्थात् वनस्पतियाँ भी जो इससे पूर्व हरे रंग की थी, अब ऐसी प्रतीत होती थी जैसे उन्होंने लाल रंग में स्नान कर लिया है, अर्थात् अब वे भी लाल वर्ण की आभासित होने लगी थी।

विशेष-

1. प्रस्तुत पंक्तियों की श्रुति-मधुरता स्पृहणीय है। कवि ने बड़ी ही श्रुति मधुर शब्दावली में प्रकृति का मनोरम चित्र अंकित किया है।
2. प्रकृति चित्रण में ऐसी गत्यात्मकता है कि पाठकों के मनश्चक्षुओं के समक्ष आकाश में चहचहाते पक्षियों की उड़ती हुई पंक्तियाँ, फिरती हुई लालिमा आदि के रूप में सांध्यकालीन वातावरण मूर्त हो उठता है।
3. अंतिम दो पंक्तियाँ में उपमा अंलकार।

ध्वनि मयी .... धेनु का।

प्रसंग- प्रातः काल श्रीकृष्ण और गोप गौओं को चरने के लिए इधर-उधर छोड़ देते थे। कन्हैया ग्वाल-बालों के संग लीला करते रहते और गौएँ चरती हुई काफी दूर निकल जाती। इसका निदान कृष्ण जी ने निकाल लिया। वे मुरली में स्वर फूँकते जिसे सुनकर गौएं उसी दिशा में मोहक मंत्र की आकर्षण शक्ति के समान खिंच जाती। इस छन्द में इसी कथा की प्रतिध्वनि है।

व्याख्या- कवि कहते हैं कि उस सांध्यकालीन बेला में यमुना के तट पर शोभित एक सुन्दर कुंज में (श्रीकृष्ण) की मुरली की मधुर स्वर लहरी गूँज उठी जिससे पर्वतों की गुफाएँ, रमणीय उद्यान और केलि-कुंज आदि सभी स्थल निनादित हो उठे।

मुरली की मधुर स्वर-लहरी के साथ गायों ने अपने सींगों से बने सुन्दर विषाण नामक बाजे तथा सींगियाँ(ग्रामीण बाजे) बजाई तो उनके साथ के ग्वाल-बालों ने भी अपने विषाण और श्रृंग नामक वाद्यों को बजाया। इस संकेत का यह परिणाम निकला कि जंगल के प्रान्तर भागों में गाय के दौड़ने का स्वर व्याप्त हो गया अर्थात् वे गायें जो चरती हुई जंगल के कोनों तक जा पहुॅची थी इस संकेत को सुनकर अर्थात मुरली की ध्वनि की ओर आकृष्ट होकर उधर की ओर दौड़ पड़ी जहां पर श्रीकृष्ण बैठ कर बाँसुरी बजा रहै थे।

शब्दार्थ- कलित कानन- सुन्दर उद्यान, केलि निकुंज- क्रीड़ाएँ करने के घने लता-पादपों के झुरमुट वाले स्थान, तरणिजा तट- यमुना तट, क्वणित- बज उठे, विषाण- सींग का बना बाजा, श्रृंग- सींग, समाहित- व्याप्त, शान्त, प्रान्तर भाग- सीमा का भाग, रणित- बज उठे

विशेष-

1. विषाण कदाचित ऐसा बाजा था जिसमें सींगों को टकराकर बजाया जाता था जबकि श्रृंग या सींगी फूँक मारकर बजाई जाती थी। हरिऔध जी की निम्नांकित पंक्तियों से भी यही ध्वनित होता है कि ‘क्वणन’ दो वस्तुओं के टकराने से उठी ध्वनि होती थी जबकि ‘रणन’ झंकार कहलाती है।

2. द्वितीय पंक्ति में वृत्यनुप्रास, प्रथम पंक्ति में छेकानुप्रास, चतुर्थ एवं आठवीं पंक्ति में छेकानुप्रास।

गगन मण्डल .... दर्शन लालसा।

प्रसंग- एक साथ ग्वाल-बालों तथा धेनु समूह के प्रस्थान करने से आकाश में धूल छा गयी है। गोधुलि की इसी छवि का कवि ने मार्मिक निरूपण किया है।

व्याख्या- जब श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों और गायों के साथ गोकुल की ओर चल पड़े तो उनके चलने के कारण उड़ी हुई धूल आकाश मण्डल में छा गयी तथा गाय-बछड़ों, गोपो और पक्षियों आदि के स्वरों से दसों दिशाएँ निनादित हो उठी। लम्बे-चौड़े अर्थात् सुदीर्घ गोकुल गॉव के प्रत्येक घर में भी विनोद(मनोरंजन) का प्रवाह सा प्रवाहित हो उठा अर्थात् उनके अर्न्तमन उल्लसित हो उठे।

गोकुल ग्राम के प्रत्येक गृह में विनोद का प्रवाह उमड़ उठने का कारण यह था कि वहाँ के समस्त नर-नारी पूरे दिन श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए व्याकुल थे, अतः उन्होंने जैसे ही यह देखा कि अब दिन का अन्त होने जा रहा है जिससे श्रीकृष्ण गोचारण से लौट आएँगे तो ग्रामवासियों को उनके दर्शनों की उत्कंठा और भी अधिक अभिवृद्ध हो उठी । अर्थात् वे अपने अर्न्तमनों में श्रीकृष्ण के आगमन की अधीरतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे ।

शब्दार्थ- रज- धूल, प्रति गेह- प्रत्येक घर, वर स्रोत- सुन्दर प्रवाह या सोता, आकुल- व्यग्र, दिनान्त- सन्ध्या, लालसा- उत्कंठा ।

विशेष-

1. प्रस्तुत पंक्तियों में जहॉ एक ओर प्रकृति का मार्मिक निरूपण हुआ है वहॉ दूसरी ओर गोकुल वासियों का कृष्ण के प्रति अटूट अनुराग परिलक्षित होता है।

2. प्रथम, द्वितीय, पंचम और आठवीं पंक्ति में छेकानुप्रास, षष्ठ पंक्ति में वृत्यनुप्रास तथा हृदय यंत्र में रूपक।

इधर .... नलिनीश है।

प्रसंग- गोधूलि के समय जँगल से धेनु मण्डली के साथ लौटते हुए भगवान कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य का मार्मिक चित्रण इन शब्दों में किया जाता है।

व्याख्या- जंगल से गायें चराकर लौटते श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए चले आने वाले गोकुल के नर-नारियों के विषय में कवि कहते है कि ग्राम की ओर से गोकुल वृद्ध नर-नारी बड़ी ही उमंग और उल्लास के साथ गाँव के बाहर की ओर चले जा रहै थे, जबकि जँगल की ओर से श्रीकृष्ण अपनी ग्वाल मण्डली तथा गो-समूह के साथ गोकुल के समीप आ पहॅुचे थे।

गोधूलि से आपूर्ण दिशा से अथवा सुरा की तरह लाल रंग की छायी हुई धूल के मध्य से निकलते हुए श्रीकृष्ण इस प्रकार शोभायमान हो रहै थे, जैसे प्रभात काल में दिशाओं के अन्धकार का विनाश करता हुआ सूर्य शोभायमान होता है। अथवा नैश काल में अन्धकार को विदीर्ण करता हुआ चन्द्रमा शोभायमान होता है।

शब्दार्थ- कढ़ी- निकली, पगती- भरी हुई, विमंडित- शोभित, गोरज- गायों के खुरों से उड़ती धूल, ब्रज बल्लभ- श्रीकृष्ण, कदन- विनाश, नलिनीश- सूर्य, चन्द्रमा, कुकुभ शोभित- दिशाओं में शोभा देने वाली

विशेष-

1. नलिनी और कमलिनी रात में खिलती है। अतः उनका बल्लभ चन्द्रमा माना जाता है। चूंकि दिन निकलने पर कमलिनी मुरझा जाती है अतः सूर्य उनका शत्रु माना जाता है। प्रियप्रवास के प्रथम छंद में जिस सूर्य को 'कमलिनी कुल बल्लभ' कहा गया है। उसका अभिप्राय मात्र कमलिनियों से न होकर समस्त कमल कुल से है जिसमें कमलिनियॉ भी समाहित हैं। प्रस्तुत संदर्भ में नलिनीश= नलिनि $ ईश चन्द्रमा लेना ही उचित है। 'सूर्य' अर्थ ग्रहण करना अनुचित है।
2. चतुर्थ पंक्ति में छेकानुप्रास, द्वितीय में उपमा।
3. तत्सम शब्दों के अतिरिक्त कढ़ी(पंजाबी) उमगती तथा पगती जैसे प्रचलित, कर्ण मधुर एवं स्वाभाविक तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है।

अतसि .... अलकावली।

प्रसंग- इस छन्द में कवि ने नायक श्रीकृष्ण के अप्रतिम सौन्दर्य, उनकी वेश-भूषा तथा शरीर रचना का उल्लेख किया है।

व्याख्या- श्रीकृष्ण की वेशभूषा और शरीरांगादि की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कवि कहते है कि श्रीकृष्ण की नवल काया जिसका वर्ण जलपूर्ण श्याम मेघ के समान था(श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था पर किशोर-काल के कारण उनकी काया को नवल या नयी बताया गया है) और शारीरिक कांति अतीव ही मनोहारिणी थी अर्थात् श्रीकृष्ण की श्याम मेघ जैसे वर्ण की अतीव कांतिमयी काया अलसी के पुष्प की भी शोभा बढ़ाने वाली तथा शरतकालीन नील कमलों को शोभा प्रदान करने वाली थी अर्थात् अलसी पुष्प और नील कमल उसके समक्ष तुच्छ थे।

श्रीकृष्ण के शरीरांग तथा उनका गठन अतीव उत्कृष्ट था। उनके शरीरांग दर्पण के समान स्वच्छ एवं मनभावन थे। उनके शरीरांगों की अक्षुण्ण मृदुलता और सरसता सुस्पष्ट तथा झलकती रहती थी, अर्थात् उन पर आयु, बुढ़ापे आदि का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता था। उनका शरीर तो सदैव नवनीत की भाँति मृदुल बना ही रहता था। उनका हृदय भी बड़ा सुकोमल और सरस था।

उन्होंने अपने शरीर को सुन्दर वस्त्रों से मंडित कर रखा था तथा उनके कटि प्रदेश में पीट वस्त्र शोभायमान थे। उनके द्वारा ग्रीवा में पहनी हुई वन माल जहॉ उनके वक्ष प्रदेश पर सुशोभित हो रही थी। वहीं उनके कंधे पर पड़ा हुआ सुन्दर दुपट्टा भी उनकी शोभा को बढ़ा रहा था।

उनके दोनों कानों में कामदेव की मकराकृति वाली पताका के जैसे आकार वाले कुण्डल शोभायमान हो रहै थे तथा जिसके सब ओर नाना प्रकार का भाव व्यंजना करती हुई अनेक रूपों में घुँघराली लटें लहरा रही थी।

शब्दार्थ- अतीस पुष्प- अलसी का पुष्प, अंलकृतकारिणी- शोभा बढ़ाने वाली, नील सरोरूह- नीले रंग का कमल, रंजिनी- आनन्दित करने वाली, सजल नीरद- जलपूर्ण बादल, कल कान्ति- सुन्दर शोभा, मुकुर मंजुल- सुन्दर शीशा, सतत- लगातार, कटि-कमर, गात- शरीर, कल दुकूल- सुन्दर दुपट्टा, स्कंध- कंधा, मकर केतन- कामदेव, कल केतु- सुन्दर पताका, अलकावली- घुँघराले बाल

विशेष-

1. कृष्ण की कल कान्ति की शोभा जलवान मेघ से देना काव्य में एक नया प्रयोग है। बादल की घटा से जिस प्रकार आस-पास का वातावरण शीतलता प्रदान करने वाला एवं नव मंगल का आह्वानक होता है उसी प्रकार ब्रजवासियों के लिए कृष्ण के दर्शन मंगल एवं उनके हृदय को शीतलता प्रदान करने वाले है।
2. गात शब्द संस्कृत के गात्र शब्द का विकसित रूप है।
3. छंद 16 की प्रथम दो पंक्तियाँ प्रतीप, अन्तिम दो पंक्तियों में उपमा, छंद 17 की द्वितीय पंक्ति में उपमा, छंद 18 में स्वभावोक्ति तथा छंद 19 की प्रथम दो पंक्तियों में उपमा।
7. कृष्ण जी के अंग प्रत्यंगों में सार्वकालिक सरसता का उल्लेख करके कवि ने उन्हें सामान्य प्राणि से बहुत ऊपर उठा दिया है क्योंकि सामान्य प्राणि के अंग-प्रत्यंगों की सरसता क्षण-भंगुर होती है जबकि उनकी शाश्वत है।

मधुरता .... कान्ति सी।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने भगवान कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य का अनेक उपमानों के साथ बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है।

व्याख्या- श्रीकृष्ण की सौन्दर्य सुषमा का वर्णन करते हुए कवि आगे कहते है उनके मुखारबिन्द से अतीव मधुर शब्दावली निःसृत होती थी और उनकी मधुर मुस्कान तो सुधामयी जैसी ही थी। अर्थात् अत्यधिक रसमयी और मनभावन थी। उनके कमल-पुष्पों जैसे मदभरे नेत्रों की सुन्दरता बड़ी ही मस्तीपूर्वक नर-नारियों के हृदय को मोहित कर लेती थी।

उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी तथा संपुष्ट थी जबकि उनका वक्षस्थल भी अतीव पुष्ट और उत्तम स्वास्थ्य का निदर्शन करते हुए उभरा हुआ था। उनके शरीरांगों में कैशोर्यावस्था जैसी चपलता, पुष्टता, स्फूर्ति आदि विशेषताएँ थी तथा उनका मुख खिले हुए कमल-पुष्प की भाँति खिला हुआ अर्थात प्रसन्न था ।

उनके हाथ में मधुर स्वर लहरी रूपी मधु की वर्षा करने वाली वह मुरली थी जो समस्त प्रकार की मधुर रागनियों की सखी थी। कृष्ण उस पर समस्त राग बजाते थे, जो नर नारियों के हृदयों को मोहित कर लेने वाले मंत्र की सहचरी अर्थात अभिन्न साथिन थी, रस का आदि स्रोत थी तथा जिसमें से अतीव मधुर और सुन्दर स्वर लहरी निकलती थी। अभिप्राय यह है कि वह मुरली न होकर एक प्रकार से साक्षात रस पुंज थी।

श्रीकृष्ण के मुखारबिन्द से सुन्दरता की राशि छलकी पड़ रही थी जबकि उनके शरीरांगों से निःसृत होने वाली सुन्दरता पृथ्वी पर छिटककर चारों ओर प्रसारित हो रही थी। भाव यह है कि वे इतने सुन्दर थे कि उनके सौन्दर्य की राशि चतुर्दिक छिटकी पड़ रही थी क्योंकि उसे वह स्थान सम्भाल नहीं पा रहा था। जहाँ वे खड़े थे। उनके शरीरांगों से इतनी प्रचुर मात्रा में उत्तम कान्ति विकीर्ण हो रही थी कि उससे समस्त दिशाएँ अपने अन्त(सीमा) तक उसी प्रकार चमक रही थी जैसे चन्द्रमा की किरणें आकाश को देदीप्यमान कर देती है।

शब्दार्थ- अमृत सिंचित- सुधामयी, अतीव मीठा, समद- मस्तीपूर्णक, सबल- पुष्ट, जानु- विलम्बित घुटनों तक लम्बी, वय- किशोर कला लासितांग- किशोरावस्था की विशेषताओं से ओत प्रोत शरीर, पद्म- कमल, सहै लिका- सखी, मधुवर्षिणी- शहद की भाँति मधुर स्वरों की वर्षा करने वाली, क्षिति- पृथ्वी, क्षितिय- पृथ्वी और आकाश का मिलन स्थल, क्षणदा कर- चन्द्रमा

विशेष-

1. लम्बी गरदन, विशाल नेत्र, उन्नत एवं विशाल मस्तक, चौड़ा वक्षस्थल, घुटनों तक लम्बी भुजाएँ सर्वश्रेष्ठ मानव होने के लक्षण है। ऐसा व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट, दिग्गज पण्डित तथा सर्वसिद्धियों से पूर्ण होता है।
2. प्रस्तुत छन्द में अतिशयोक्ति के माध्यम से कवि ने अलौकिक अथवा ब्रह्म रूप दे दिया है। उनकी कान्ति का सर्व दिशाओं में फैलना इसका प्रमाण है।
3. अमृत मुस्कान, कमल लोचन में उपमा, मधुरता .... बोलना में वृत्यनुप्रास, 'कमल .... कमनीयता' में छेकानुप्रास, 'छिटकती छटा .... में वृत्यानुप्रास, बगरती .... दिगन्तम' छेकानुप्रास अलंकार है।

विहग नीरवता .... वह मिली।

प्रसंग- सायंकाल की अन्तिम बेला में भगवान कृष्ण की वंशी की मधुर ध्वनि का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है।

व्याख्या- पक्षियों का कलख समाप्त होने के पश्चात सींग के बने श्रृंग और विषाणों का बजना भी रूक गया। इस प्रकार सभी प्रकार की मधुर स्वर-लहरियाँ समाप्त हो गई किन्तु कृष्ण की वंशी फिर भी बजती रही। कृष्ण की वंशी अनेक प्रकार की मार्मिक और दर्दभरी ऐसी ताने जिनसे वैराग्य की भावनाओं का उद्रेग होता था, कुछ क्षणों तक दिशाओं में गूँजती रही। अंततः वे वायु में विलीन हो गई अर्थात् उनकी स्वर लहरी का सुनाई देना बन्द हो गया।

शब्दार्थ- कल अलाप- मधुर संगीत, वर वंशिका- श्रेष्ठ वंशी, मर्मभरी- मार्मिक, विराग- वैराग्य, विवोधिनी- व्यक्त करने वाली।

विशेष-

1.श्रीकृष्ण का अपने मथुरा गमन का कदाचित पूर्वाभास था(वैसे तो उन्हें अन्तर्यमी माना जाता

है)। अतः वे उस सांध्यकाल में गोकुलवासियों को ऐसी मार्मिक तानें सुना रहै थे जिससे वियोग और वैराग्य की भावनाएँ जाग्रत होती थी।

2. छेकानुप्रास है तु त्प्रेक्षा, 'वियोग-विराग- विवेधिनी' में श्रुत्यनुप्रास,

इसलिए रसना .... ग्राम में।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में गोकुल वासियों द्वारा श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन होने के साथ-साथ कृष्ण का ग्वाल बालों के साथ गोचारण के बाद गोकुल गाँव में प्रविष्ट होने का चित्रण किया गया है।

व्याख्या- ब्रजवासी अन्धकार के कारण न तो श्रीकृष्ण की शोभा और वेणु वादन बन्द हो जाने के कारण उनकी वंशी की मधुर ध्वनि को ही सुन पा रहै थे। अतः उनके नेत्रों और श्रवणों के स्थान पर उनकी जिह्वाएँ सक्रिय हो उठी और वे उनके गुणों की प्रशंसा रूपी मालाएँ गूँथने लगे अर्थात् उनके सद्गुणों की प्रशंसा करते हुए गर्वानुभव करने लगे।कवि कहते हैं कि जब लोगों की ऊपर वर्णित दशा थी, तब कमल जैसे नेत्रों वाले कृष्ण गो-समूह और ग्वाल-बालों के साथ उस गोकुल ग्राम में प्रविष्ट होने लगे जिस पर धरा गर्व करती है- जिसके कारण धरामण्डल के गौरव की वृद्धि हुई है।

शब्दार्थ- रसना- जीभ, समुत्सुकता पगी- अत्यधिक अधीर, ग्रथन- गूँथने, वर्णन करने, ब्रज विभूषण- श्रीकृष्ण, गोगण- गो समूह, अवनि गौरव- धरा द्वारा गर्व करने योग्य

विशेष-

1.गोगण शब्द में लगा हुआ गण अशुद्ध हैं क्योंकि इसका प्रयोग प्रायः पुल्लिंग वाची शब्दों के लिए होता है। गौ स्त्रीलिंग किन्तु उचित शब्द के अभाव में कवि ने इसका प्रयोग किया है ।

2.गुण मलिका में रूपक, जलज लोचन में उपमा, दूसरी, तीसरी, चतुर्थ, सप्तम व अष्ट पंक्ति में छेकानुप्रास ।

प्रथम थी .... काल को।

प्रसंग- प्रिय प्रवास के प्रथम सर्ग के अन्त में श्रीकृष्ण के प्रवास का संकेत देते हुए कवि ने विवेचन किया है।

व्याख्या- पहले जहाँ के वातावरण में संगीत की मधुर स्वर लहरियाँ लहरा रही थी अब वही स्थान पूर्णतया निस्तब्ध हो गया था। ब्रज भूमि रूपी विशाल रंग स्थल से आज श्रीकृष्ण रूपी चित्र सदा के लिए वियुक्त हो गया। यहाँ पर (विधाता ने) जिस सुन्दर हृदय को चित्रित किया था वह सदैव के लिए विलुप्त हो गया।

शब्दार्थ- आलाप- संगीत, सुप्लावित- लहराता, नीरवता- शान्ति, विशद- विशाल, विशद चित्रपटी- विशाल रंग स्थल, सब काल- सदा के लिए

विशेष-

1. काव्य शास्त्र की परम्परा के अनुसार सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा का संकेत दे दिया जाता है। हरिऔध ने इस नियम का पूर्ण रूप से पालन किया है और आगामी कारूणिक प्रसंग का संकेत इस छन्द में स्पष्ट रूप से दिया है।
2. ''विशद चित्रपटी ब्रजभूमि की'' में रूपक, तृतीय पंक्ति में वृत्यनुप्रास।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रियप्रवास में कितने सर्ग हैं?
2. हरिऔध जी की प्रमुख कृतियों का परिचय दीजिए?
3. हरिऔध जी का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
7. गोकुल ग्राम निवासी मलीन मुख किये कहाँ से निकले?
   (क) अपने घर से (ख) अपनी गली से
   (ग) अपने गाँव से (घ) अपने खेत से
5. नन्द के द्वार पर एकत्र जनता किसके भय से कातर थी?

(क) कंस राजा के (ख) अक्रूर के
(ग) नन्द के (घ) वृषभान के

6. मुरारी अर्थात् कृष्ण किसको साथ लेकर घर से निकले?

(क) बलराम को (ख) नन्दजी को
(ग) यशोदा जी को (घ) अक्रूर को

8.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी के जीवन और उनकी कृतियों से परिचित हो चुके होंगे।
2. प्रियप्रवास की संक्षिप्त कथावस्तु से परिचित हो चुके होंगे।
3. हरिऔध जी की काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो चुके होंगे।
7. प्रियप्रवास के महत्वपूर्ण सर्गों का आनन्द प्राप्त कर चुके होंगे।

8.8 शब्दावली

आसक्ति- लगाव, अनुदिन- प्रत्येक दिन(दिन-रात), दुर्विपाक- कठिन, पारितोषिक- इनाम, अनन्य- जिसका दूसरा विकल्प न हो, इहलीला- दैहिक लीला, इतिवृतात्मक- कथात्मक

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 17 सर्ग हैं।

2. प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, रस कलश, प्रद्युम्न विजय, रूक्मिणी परिणय, ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल आदि।
3. क
7. क
5. घ

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिऔध और उनका साहित्य, मुकुन्द देव शर्मा
2. महाकवि हरिऔध और उनका प्रिय प्रवास, धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
3. प्रिय प्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ0 द्वारका प्रसाद सक्सेना
4. खड़ी बोली के गौरव ग्रन्थ, विश्वम्भर मानव
5. महाकवि हरिऔध और उनकी कलाकृतियाँ, प्रो0 द्वारिका प्रसाद
6. आधुनिक साहित्य, नन्द दुलारे बाजपेयी
7. रीति काव्य की भूमिका, डॉ0 नगेन्द्र
8. हरिऔध अभिनन्दन ग्रंथ
9. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना

8.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रियप्रवास एक विवेचन, माया अग्रवाल
2. प्रियप्रवासः पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हरिऔध जी के जीवन और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिये?
2. ‘प्रबन्धात्मकता और महाकाव्य की दृष्टि से ‘प्रिय प्रवास’ एक सफल महाकाव्य है“ इस कथन की सप्रमाण समीक्षा कीजिए?
3. प्रियप्रवास के आधार पर ‘हरिऔध’ के काव्य की प्रमुख विशेषताओं को सोदाहरण विवेचन कीजिए?
7. हरिऔध जी ने राधा और श्रीकृष्ण के प्रेम भाव का उन्नयन लोक सेवा के रूप में दिखाकर देश के युवक युवतियों को लोकमंगल का संदेश प्रदान किया है, प्रमाण पुष्ट उत्तर दीजिए?

इकाई 9 साकेत- पाठ एवं विवेचन(नवम सर्ग)

इकाई की रुपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 गुप्तः जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व
 9.3.1 जीवन परिचय
 9.3.2 व्यक्तित्व
 9.3.3 कृतित्व
9.4 गुप्तः काव्यकला
 9.7.1 भावपक्ष
 9.7.2 कलापक्ष
9.5 साकेतः कथावस्तु
9.6 साकेतः पाठ एंव व्याख्या
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

“राम तुम्हारा नाम स्वयं काव्य है
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी साहित्यकाश के ज्वाजल्यमान नक्षत्र है। आधुनिक युग में उन्होंने ‘साकेत’ जैसा महाकाव्य लिखकर उन्होंने राम काव्य परम्परा में अद्वितीय योगदान दिया है। यह महाकाव्य गुप्त जी के काव्य जीवन का गौरव स्तूप है। गुप्तजी मूलतः राष्ट्रकवि थे। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना उनके काव्य का मूल स्वर है। भारतीय संस्कृति एवं सामाजिकता उनके काव्य में कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने सन् 1912 से लेकर मृत्यु पर्यन्त राष्ट्रीय भावों की पुनीत गंगा को अपने काव्य के माध्यम से जन-जन तक प्रसारित करने का भागीरथ प्रयास किया है।

गुप्तजी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को अपना काव्य गुरू मानते थे। द्विवेदी जी द्वारा प्रकाशित ‘सरस्वती’ पत्रिका में उनकी आरम्भिक रचनायें प्रकाशित हुई।

गुप्तजी मूलतः राम भक्त हैं और राम के प्रति इनकी अपार श्रद्धा थी। पर यह भक्ति भावना साकेत की सृजन प्रेरणा नहीं है। इसकी सृजन प्रेरणा है उर्मिला का अपार मार्मिक विषाद जो इसके नवम् सर्ग में वर्णित है। प्राचीन साहित्य का अध्ययन करते हुए गुप्तजी को यह अनुभव हुआ कि साहित्य में अनेक ऐसी नारियाँ उपेक्षित हैं जिनके महान चरित्र की उज्जवलता से साहित्य का भवन दिव्य-दीप्ति से जगमगा सकता है। फलतः उन्होंने 'काव्य की उपेक्षिता' नामक एक हृदयस्पर्शी निबन्ध की रचना की, जिसमें उर्मिला का विशेष रूप से उल्लेख किया।

इसके पश्चात हिन्दी में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का लेख 'कवियों की उर्मिला- विषयक उदासीनता' प्रकाशित हुआ। इस लेख में द्विवेदी जी ने हिन्दी कवियों की इस बात के लिए पूर्ण भर्त्सना की, कि वे उर्मिला के विषय में पूर्ण उदासीन बने रहै । इन लेखों से विशेष रूप से द्विवेदी जी के लेख से प्रेरणा पाकर गुप्तजी ने उर्मिला का पूर्ण अंकन करने के लिए 'साकेत' महाकाव्य की रचना प्रारम्भ की। साकेत खड़ी बोली में लिखा गया आधुनिक युग का सर्वोत्कृष्ट काव्य है। इस महाकाव्य में उर्मिला के चरित्र पर बड़ी व्यापकता से प्रकाश डाला गया है। इस महाकाव्य में महाकाव्यात्मक के सम्पूर्ण लक्षण परिलक्षित होते हैं। साकेत प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध काव्य के अनुरूप उसमें प्रकृति के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। उनका 'साकेत' प्रकृति के अनेक सुन्दर दृश्यों से अनुप्राणित हो उठा है। साकेत अनेक भावों एवं रसों से परिपूर्ण सरस महाकाव्य है। इस महाकाव्य में संयोग श्रृंगार का मर्यादित चित्रण होने के साथ-साथ वियोग श्रृंगार का व्यापक निरूपण हुआ है। साकेत एक भावपूर्ण रचना होने के साथ-साथ एक उत्कृष्ट कलात्मक कृति भी है। गीतात्मक महाकाव्य होने के कारण इसकी लोकप्रियता और अधिक बढ़ गयी है। लय ध्वनि, संगीत के साथ भावपूर्ण शब्दों का प्रयोग इस महाकाव्य को उत्कृष्टता प्रदान करते है। प्राचीन आदर्शों और वर्तमान युग की नवीन विचारधाराओं के बीच सुन्दर सांमजस्य इसकी लोकप्रियता को और अधिक बढ़ा देता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने आधुनिक अपेक्षाओं के अनुकूल काव्य सृजन का दायित्व कुशलतापूर्वक निभाया है। गुप्त जी के काव्य ग्रंथों में जहाँ भारतीय प्राचीन परम्पराओं का यथार्थ निरूपण हुआ है वहीं दूसरी ओर अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न भी भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं से अटूट सम्बन्ध रखने वाले महाकवि गुप्त ने दासत्व, दीनता, अहंकार, पराधीनता, वैमनस्य एवं रूढ़िवादिता जैसे झाड़-झंकार को पूरे समाज से दूर करने की प्रेरणा अपने काव्य ग्रन्थों के माध्यम से प्रदान की है। नारी को उसके यथार्थ स्वरूप में प्रतिष्ठित करने की प्रखर वाणी उनके काव्य का प्राण तत्व है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्त्रे तत्र देवता' की पूर्ण सार्थकता उनके काव्य ग्रन्थों में परिलक्षित होती है। उनका काव्य कौशल उनकी काव्य प्रेरणा सनातन एवं युगानुरूप है। इस ग्रन्थ में भारतीय आस्थाओं एवं मान्यताओं को भावनात्मक स्वर प्राप्त हुआ है। इस इकाई के माध्यम से हम राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य की प्रमुख विशेषताओं से परिचित होंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
2. मैथिलीशरण गुप्त कृत महाकाव्य साकेत के कथानक की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. साकेत के महत्वपूर्ण सर्गों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।
7. गुप्त जी के काव्य की संवेदनागत और शिल्पगत चेतना का अध्ययन कर सकेंगे।
5. गुप्त जी के स्थान और उनके योगदान को समझ सकेंगे।

9.3 गुप्त- जीवन परिचय, व्यक्तित्व एंव कृतित्व

9.3.1 जीवन परिचय

झाँसी के चिरगाँव नामक ग्राम में श्री रामचरण सेठ के यहाँ सन् 1886 में एक बालक का जन्म हुआ, जो अपनी प्रतिभा के बल पर आगे चलकर हिन्दी का महान साहित्य सेवी और भारत का राष्ट्र कवि बना। नाम रखा गया मैथिलीशरण गुप्त। उनके पिता राम के उपासक थे, इसीलिए उनके नाम में राम की महत्ता और उपासना का समावेश रहा। बचपन में जो राम के प्रति आस्था के संस्कार जमे, वे आद्यन्त चिरस्थायी बने रहै । अपने पिता की इस प्रवृति के सम्बन्ध में गुप्तजी ने लिखा है- ''पिताजी रात रहते ही उठकर प्रातः राम नाम का स्मरण करते थे, फिर हम लोगों को जगाकर राम महिमा याद कराया करते थे .... मुझे बड़ा कुतूहल और आनन्द आता। पर राम से बड़ा कुछ भी है, भले ही वह उनका नाम ही क्यों न हो, मैं नहीं मानना चाहता था।''
पिताजी की रामोपासना का ही यह प्रभाव था कि गुप्त जी का चिन्तन और अनुभूति भी राममय हो गयी थी और बुद्धिवाद के आग्रह से राम को पुरूषोत्तम भले माना हो, हृदय ने उन्हें ईश्वर ही स्वीकार किया। उन्होंने माँ से भी यही राम नाम की शिक्षा प्राप्त की। माँ काशीबाई का वात्सल्यमय साया उन पर 19 वर्ष की अवस्था तक बना रहा।

गुप्त जी शिक्षा किसी कॉलेज आदि में विधिवत् नहीं हो सकी किन्तु उनमें ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा प्रचुर थी। परिणामतः उनका कवि पक्ष उत्तरोत्तर निखार पर रहा एवं उसमें मौलिकता बनी रही। उनकी आरम्भिक शिक्षा अपने गाँव चिरगाँव में ही हुई। वहाँ से प्राइमरी करने के पश्चात् वह झाँसी गये, परन्तु मैकडानल हाईस्कूल में उनका मन पढ़ने में नहीं लगा, इस पर उनके अध्ययन की व्यवस्था घर पर की गई पर यहाँ भी वह पढ़ न सके। उनकी धारणा थी कि- ''मैं पढ़ने के लिए नहीं जन्मा हूॅं, मैंने इसीलिए जन्म लिया है लोग मुझे पढ़ें।'' अन्त में उनकी यही धारणा यथार्थ रूप में सामने आई। गुप्तजी को कविता करने का शौक बचपन से ही था। घर पर संस्कृत का पठन-पाठन होता था, इससे पद्य रचना की ओर झुकाव हुआ तथा 15-16 वर्ष की अवस्था में ही लिखने लगे। कलकत्ता से प्रकाशित 'वैश्योपकारक' पत्र में उनकी साहित्य साधना प्रकाशित होने लगी। उसी समय उनका आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से परिचय हुआ, जिन्होंने उनकी सुप्त प्रतिभा को चमका दिया।

'सरस्वती' में जब उनकी रचनाएँ संशोधित होकर आचार्य जी द्वारा प्रकाशित की गयीं तो गुप्त जी हिन्दी साहित्य के साहित्यकारों की श्रेणी में जा बैठे। उनके व्यक्तित्व का निर्माण सरस्वती से हुआ। इसके अतिरिक्त भारत मित्र, वैश्योपकारक, राघवेन्द्र, पाटलीपुत्र आदि में भी उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही।

गुप्तजी यद्यपि शिक्षित नहीं थे, पर वे शिक्षितों से भी ऊपर थे। राष्ट्र ने 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' जैसे पुरस्कार और 'पद्मविभूषण' जैसी राष्ट्रीय उपाधि प्रदान कर उनका सम्मान किया। सन् 1948 में आगरा विश्वविद्यालय से उन्हें डी0लिट0 की मानक उपाधि भी प्रदान की। वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर भी रहै । 12 दिसम्बर, 1964 को उनका देहावसान हो गया।

9.3.2 व्यक्तित्व

एकमत से राष्ट्रकवि माने जाने वाले गुप्तजी का व्यक्तित्व अत्यन्त सरल, हँसमुख व सादा रहा। उनके चेहरे पर सदैव स्मित हास्य अपनी चपल छटा बिखेरता दिखायी देता रहा। उनके विषय में रायकृष्ण दास ने लिखा है- "मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ पढ़कर लोग उनके कवि रूप की जो कल्पना करते होंगे, प्रत्यक्ष दर्शन में वह उन्हें इससे बिल्कुल भिन्न पाते है। प्रायः ऐसा हुआ है कि जब लोगों ने उनका परिचय पाया है, तो आश्चर्य चकित रह गये हैं कि 'ऐ' यही गुप्त जी हैं ....। अपरिचित के लिए उन्हें देखकर सहसा यह कल्पना कर लेना असम्भव है कि यह व्यक्ति वही मैथिलीशरण गुप्त हैं जिन्हें द्विवेदी युग की सबसे बड़ी देन कहा जाता है।"

उनके व्यक्तित्व की साधारणता ही असाधरण है। वह समय से कभी पीछे नहीं रहै , उनका सिद्धान्त रहा कि-

"पर देने में विनय न होकर जहाँ गर्व होता है,
तपस्त्याग का पर्व हमारा, वहीं खर्व होता है।"

9.3.3 कृतित्व

कुछ कवि होते हैं जो थोड़ा लिखते हैं और अपना नाम अमर कर जाते है; और कुछ कवि काफी लिखकर माँ सरस्वती का भण्डार समृद्ध करते है । गुप्तजी ने सतत् 57 वर्ष तक माँ सरस्वती की अनवरत साधना की है और इस दीर्घ समय में लगभग43 प्रकाशित तथा 6 अप्रकाशित काव्य-कृतियों की रचना की । इसके अतिरिक्त 9 प्रकाशित तथा 8 अप्रकाशित काव्यानुवाद एवं नाट्यानुवाद भी प्रस्तुत किये ।वस्तुचयन की दृष्टि से गुप्तजी का काव्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक तथा वैविध्य लिए हुए है। 'भारत भारती' जिसका गुप्तजी के नाम से अटूट सम्बन्ध है इस बात को स्पष्टतः व्यक्त करतीचलती है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने यद्यपि मूलतः पूर्व गौरव का चित्रण और वर्तमान दैन्य को दिखाया है फिर भी इसमें उनके विविध विचारों की पुष्टि हुई है। उनकी राष्ट्रीय चेतना यहाँ विकास पा सकी है और इतिहास ज्ञान को अभिव्यक्ति मिल गई है। 'हम कौन थे, क्या

हो गए हैं और क्या होंगे अभी' को चित्रित करने में वे रामायण का सहारा ग्रहण कर चुके हैं, महाभारत के आदर्शाें को मान चुके हैं और पुराणों में गोता लगाते हुए अमूल्य रत्ननिधियों का पा चुके हैं। साथ ही वर्तमान अवनतिजन्य दीनता को भी चित्रित करके उद्बोधन का काम कर सके हैं। 'भारत भारती' की यही पंक्ति उनकी कविता का मूल स्वर है। उनकी इसी वैविध्यजन्य वस्तुचयन की विशेष प्रतिभा को लक्ष्य करते हुए डा0 सत्येन्द्र ने लिखा है- ''दूर एक कोने में बैठा हुआ पुराने विशाल खण्डहरों की कुछ सामग्री लेकर अपनी कलाशाला में कलाकार जीर्णोद्धार ही नहीं कर रहा है; वरन् मूर्तियों को जोड़ तोड़कर नया रंग भर रहा है। उन्हें नवजीवन से जीवित कर रहा है .... यह उसने 'भारत भारती' की मूर्ति बनायी है। भारत माता के मन्दिर के अनन्य पुजारी ने कैसा ओज भरा है, कैसा दर्प अंकित किया है और कैसे क्षोभ की रेखाएँ डाली हैं। इसमें जहाँ एक ओर जयद्रथ वध, अभिमन्यु, अर्जुन और कृष्ण द्वारा किया हुआ संग्राम रचा गया है, वहाँ दूसरी ओर बौद्धों के अनघ और यशोधरा सजाये गये है। राम और उनके चरित्र का तो यहाँ प्रधान स्थान है, जिसमें स्त्री जाति का तेज तपे हुए सोने की भाँति उद्दीप्त करती हुई उर्मिला भवन को प्रकाशित कर रही है। कृष्ण जीवन का सहचारी वर्ग भी संधियुग में खड़ा है। हर एक अपनी-अपनी मनोव्यथा और निजी कथा कहने में व्यस्त। सारी सामग्री पर उदार वैष्णवता का रंग चढ़ाया गया है और सभी मूर्तियाँ भारतमाता के मन्दिर की शोभा और श्री को प्रोत्साहित और प्रकाशित करने के लिए है।'' सत्येन्द्र जी ने इसमें गुप्तजी की कृतियों की संक्षिप्त रूपरेखा ही सजाई है। विषयवस्तु की दृष्टि से उनकी कृतियों की समीक्षा करते हुए उन्होंने छः मुख्य दिशाओं का उल्लेख किया है-

1. राष्ट्रीय
2. महाभारत संबंधिनी
3. रामचरित संबंधिनी
7. बौद्धकालीन
5. सिक्ख तथा अन्य ऐतिहासिक घटना संबंधी
6. पौराणिक

डा0 सत्येन्द्र का यह वर्गीकरण गुप्तजी के वस्तुचयन का सामान्य ज्ञान प्रदान करने में अत्यन्त सफल दिखाई देता है। लेकिन विषय चयन के वैविध्य का दर्शन इसमें पूर्णतः नहीं हुआ है। डॉ0 पाण्डेय ने प्रो0 धमेन्द्र की तालिका अपनी पुस्तक में प्रस्तुत की है। जिसमें गुप्तजी के विभिन्न स्रोतों का श्रेणीगत विभाजन प्रस्तुत किया गया है। इसमें वे गुप्तकाव्य की दस स्रोत श्रेणियाँ मानते हैं जिनमें उनकी सूक्ष्म आलोचनात्मक दृष्टि का सम्यक् परिचय मिलता है। लेकिन मोटे तौर पर इन कृतियों की चार मुख्य दिशाएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

1. पौराणिक
2. ऐतिहासिक

3. समसामयिक

7. विविध

पहले विभाग के अन्तर्गत रामायण, महाभारत तथा पुराणों का आधार बनाकर पहले लिखी गई गुप्तजी की संस्कृतोपजीवी काव्यकृतियाँ आयेंगी। यहाँ अन्य तीन विभागों में आने वाली कृतियों की तालिका दी जा रही है-

पौराणिक-	(1) रामायण पर आधारित-	साकेत(सं0 1988)
		पंचवटी(सं0 1982)
		प्रदक्षिणा(सं0 2007)
		लीला(सं0 2017)
	(2) महाभारत पर आधारित-	जयभारत
		जयद्रथवध(सं01967)
		सैरन्ध्री(सं0 1984)
		बकसंहार(सं0 1984)
		वनवैभव(सं0 1984)
		नहुष(सं0 1997)
		हिडिम्बा(सं0 2007)
		युद्ध (सं0 2007)
	(3) पुराणों पर आधारित-	द्वापर(सं0 1993)
		शक्ति(सं0 1984)
		दिवोदास(सं0 2007)
	(4) स्फुट-	अनघ(सं0 1982)
		यशोधरा(सं0 1909)
		शकुन्तला(सं0 1971)
ऐतिहासिक-	(1) राजपूत इतिहास से सम्बन्धित-	रंग में भंग(सं0 1966)
		पत्रावली(सं0 1973)
		विकट भट(सं0 1985)
		सिद्धराज(सं0 1993)
	(2) सिक्ख इतिहास से संबंधित-	गुरूकुल(सं0 1935)
	(3) मुस्लिमधर्म के इतिहास से संबंधित-	काबा और कर्बला(सं0 1999)
	(4) ईसाई धर्म के इतिहास से संबंधित-	अर्जन और विसर्जन(सं0 1999)
	(5) मध्यकालीन भारतीय इतिहास से संबंधित-	विष्णुप्रिया(सं0 2014)

		रत्नावली(सं0 2017)
	(6) बौद्धकालीन इतिहास से संबंधित-	कुणालगीत(सं0 1998)
समसामयिक	(1) उद्बोधनात्मक-	भारत भारती(सं0 1961)
		हिन्दू(सं0 1984)
		वैतालिक(सं0 1973)
	(2) राजनैतिक-	किसान(सं0 1973)
		स्वदेश संगीत(सं0 1982)
		अजित(सं0 2003)
		राजाप्रजा(सं0 2013)
	(3) सांस्कृतिक-	विश्ववेदना(सं0 1999)
		पृथिवीपुत्र(सं0 2007)
		भूमिभाग(सं0 2010)
विविध	(1) कविता संग्रह-	झंकार(सं0 1986)
		मंगलघट(सं0 1984)
		आस्वाद(सं0 1995)
		उच्छवास(सं0 2017)
	(2) नाटक-	तिलोत्तमा(सं0 1972)
		चन्द्रहास(सं0 1973)
	(3) अनुवादग्रंथ-	विरहिणी व्रजांगना(सं0 1971)
		गीतामृत(सं0 1982)
		मेघनाथ वध(सं0 1984)
		वृत्रसंहार(सं0 2019)
		पलासी का युद्ध (सं0 1971)
		स्वप्नवासवदत्तम्(सं0 1971)
		दूतघटोत्कचम्(सं0 2012)

इस प्रकार हम देखते है कि गुप्तजी का काव्य सम्बन्धी वस्तुचयन अत्यन्त वैविध्यपूर्ण रहा है। कहीं वे पुराणों तक झाँकते चलते है तो कहीं इतिहास मात्र से तृप्त होते हैं। कहीं ‘हिन्दू’ के प्रणयन द्वारा हिन्दुत्व को जगाने का प्रयत्न करते हैं तो कहीं ‘भारत भारती’ लिखकर राष्ट्रीय उद्बोधन का काम करते हैं। ‘‘वैतालिक‘‘ और ‘‘स्वदेश संगीत‘‘ तो राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने वाली है। ‘गुरूकुल’ में उन्होंने सिक्ख इतिहास का परिचय दिया तो ‘काबा और कर्बला’ द्वारा मुस्लिम संस्कृति को भी काव्य में उतारा। विषयवस्तु की इस समन्वयात्मकता ने उन्हें हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि के पद पर निर्विरोध लोकमत से प्रतिष्ठित किया। विविध क्षेत्रों से काव्य विषय ग्रहण करते हुए भी वे

पौराणिकता के उपासक रहै । पौराणिक विषय उनके लिए सर्वप्रिय थे। उनके सभी ग्रंथों के मूल में केवल एक ही विचारधारा सशक्त रूप में काम कर रही थी। गौरवपूर्ण अतीत के चित्रण द्वारा अवनति में पड़े हुए निराश भारतीयों को ऊपर उठाना। वह प्रवृत्ति प्रारम्भ से अन्त तक उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान रही।

9.4 गुप्त- काव्यकला

9.7.1 भावपक्ष

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्य साधना का प्रारम्भ और विकास द्विवेदी युग के उद्भव और विकास के साथ-साथ होता है। हिन्दी साहित्य को प्रतिष्ठित एवं समृद्ध करने में गुप्त जी का योगदान अद्वितीय है। उनके काव्य में स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। अतीत का गौरव गान करने के साथ-साथ उन्होंने अंधविश्वासों एवं रूढ़िगत धारणाओं को समाज से पूर्ण रूप से अलग करने का आह्वान अपने साहित्य के माध्यम से किया है। भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय, सामाजिक भावनाओं का सजीव निरूपण उनके काव्य की निजी विशेषता है।

1.भक्ति भावना- गुप्त जी का जीवन एवं काव्य साधना, हिन्दु सनातन धर्म एवम् वैष्णव भक्ति संस्कारों से ओत-प्रोत है। गुप्त जी ने भगवान राम के आदर्श को लेकर साकेत जैसे महाकाव्य की रचना की। वे राम और कृष्ण दोनों के स्वरूप की आराधना करते हैं। उनकी दृष्टि में निर्गुण सगुण दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है-

"हो गया निर्गुण सगुण साकार है
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।"

उनके राम घट-घट के वासी राम है। उनके नाम पर ही कोई महाकवि बन सकता है-

"राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है।"

गुप्त जी के राम ईश्वर हैं वे तुलसी के राम की तरह मर्यादा पुरूषोत्तम है। वे कण-कण में बसने के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व का उद्धार करने वाले अवतारी महापुरूष है।

2.राष्ट्रीय भावना- आधुनिक युग के कवियों में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत काव्य लिखने में मैथिलीशरण गुप्त का स्थान सर्वोपरि है। उनका सम्पूर्ण काव्य राष्ट्रीय भावना प्रधान काव्य है। स्वदेश प्रेम, अतीत का गौरव गान, स्वतंत्रता के लिये उद्बोधन, जन-जन के कल्याण एवं समानता का भाव उनके काव्य में कूट-कूट कर भरा हुआ है। मातृभूमि का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

"नीलाम्बर परिधान, हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।"

कवि देश की वर्तमान दशा से दुःखी होकर अतीत का गुणगान करता है। देश के युवकों और नागरिकों का देश के उत्थान के लिए आह्वान करता है-

"हम कौन थे क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी,

आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।"

गुप्त जी की रचनाओं में गाँधीवादी विचारधारा परिलक्षित होती है। उन्होंने गाँधीवाद से प्रभावित होकर लोक कल्याण के लिए जन सेवा का आह्वान किया है।

"न तन सेवा, न मन सेवा
न जीवन और धन सेवा
मुझे है इष्ट जन सेवा
सदा सच्ची भुवन सेवा।"

गुप्त जी नारी समाज, किसान, मजदूर, दलित, दीन एवं निम्न स्तर के लोगों के प्रति विशेष सहानुभूति रखते हैं। वे राष्ट्रीय उत्थान के लिए सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए मानव-मानव को एक मानने की भावना अभिव्यक्त करते हैं।

हिन्दू-मुसलमान दोनों को राष्ट्रीय एकता के लिए समान महत्व देते है। उनके शब्दों में-

"हिन्दू मुसलमान दोनों छोड़े
अब यह विग्रह की नीति।"

3. मानवतावादी धारणा- मैथिलीशरण गुप्त 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को मानने वाले महाकवि हैं। उनका काव्य मानवतावादी भावनाओं से ओत-प्रोत है। वे सम्पूर्ण मानवता के कल्याण की कामना करते हैं-

"किसी एक सीमा में बँधकर रह सकते हैं प्राण?
एक देश का, अखिल विश्व का तात चाहता हूँ कल्याण।"

7. भारतीय संस्कृति का निरूपण- भारतीय संस्कृति को अपने काव्य में निरूपित करने में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को अद्वितीय सफलता मिली है। उनकी 'भारत भारती से लेकर अन्त तक की रचनाओं में भारतीय संस्कृति के अनेक चित्र प्रतिम्बिबित हुए है।

5. प्रकृति चित्रण- गुप्त जी ने मानव प्रकृति के चित्रण के साथ-साथ वाह्य प्रकृति के चित्रण में विशेष सफलता प्राप्त की है। उन्होंने प्रकृति के जो सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं वे अतीव आकर्षण एवं भावपूर्ण हैं। अलम्बन, उद्दीपन मानवीकरण आदि अनेक रूपों में उनके काव्य में प्रकृति चित्रण परिलक्षित होता है। पंचवटी का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है-

"चारू चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही है जल-थल में
श्वेत वसन-सा बिछा हुआ है, अवनि और अम्बर तल में
पुलक प्रकट करती है धरती, हरित तृणों की नोकों से
मानो झूम रहै हैं तरू भी, मन्द्र पवन के झोंको से।"

उनके प्रकृति चित्रण के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य में प्रकृति चित्रण स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने प्रकृति चित्रण के लिए प्रकृति चित्रण नहीं किया है। वे मूलतः मानवतावादी कवि हैं। प्रकृति चित्रण उनके काव्य में गौण रूप में प्रस्तुत हुआ है।

6. समन्वयवादी कवि- महाकवि मैथिलीशरण गुप्त एक महान समन्वयवादी कवि है। उनके काव्य में प्राचीन एवं नवीन भावनाओं का समन्वय हुआ है। गुप्त जी ने अपने काव्य में त्याग, भोग, मुक्ति और बंधन, संग्रह और अपरिग्रह कर्म ज्ञान एवं भक्ति, नवीन एवं प्राचीन का स्वाभाविक समन्वय किया है। वे हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई, सभी धर्मों की भावनाओं को समान रूप से अभिव्यक्त करने वाले श्रेष्ठ कवि है। भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन भारतीय आदर्शों के पुजारी होते हुए भी कविवर गुप्त नवीन भावनाओं को नवीन आदर्शों को स्वीकार करने के लिए उद्बोधन करते हैं, जो पुरानी जीर्ण-शीर्ण भावनाएँ है उनके स्थान पर नवीनता को ग्रहण करने का संदेश देते है।

"एक समय जो ग्राह्य दूसरे समय त्याज्य होता है"

7. नारी भावना- नारी के प्रति गुप्त जी का बड़ा ही उदान्त दृष्टिकोण है। वे नारी को समाज कल्याण की आधारशिला मानते है। समाज में नारी की करूण अवस्था पर उन्होंने अनेक चित्र उपस्थित किये हैं। उनका काव्य 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की भावनाओं से ओत-प्रोत है। द्वापर में उन्होंने नर से भी अधिक नारी को महत्व दिया है-

"एक नहीं दो-दो मात्रायें नर से भारी नारी।"

8. रस निरूपण- गुप्त जी ने सभी रसो का अपने काव्य में निरूपण किया है। वे रससिद्ध कवि है। नौ रसों का सुन्दर समायोजन उनके काव्य की विशेषता है। 'रंग में भंग, सिद्धराज, जयद्रथ वध, आदि कृतियों में वीर रस मूर्तिमान हो उठा है। करूण रस भी उनके काव्य में व्यापकता से प्रस्तुत हुआ है। रसराज श्रृंगार के दोनों पक्षों का चित्रण उन्होंने किया है। संयोग रस की अपेक्षा वियोग श्रृंगार के चित्रण में उन्हें विशेष सफलता मिली है। उन्होंने षटऋतुओं के माध्यम से उर्मिला के वियोग का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। उदाहरण दृष्टव्य है-

"मानस मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप
जलती सी उस विरह में, बनी आरती आप।"

गुप्तजी ने अपने काव्य में श्रृंगार रस की व्यापक चित्रपटी प्रस्तुत की है। इसके दोनों ही रूप संयोग तथा विप्रलम्भ उभरे हैं। लक्ष्मण-उर्मिला संवाद में तथा उनके क्रियाकलापों में संयोग श्रृंगार बड़ा सजीव बन पड़ा है-

"सिमट सी सहसा गयी प्रिय की प्रिया,
एक तीक्ष्ण अपांग ही उसने दिया
किन्तु धाते में उसे प्रिय ने किया,
आप ही फिर प्राप्य अपना ले लिया,"

9.7.2 कला पक्ष

गुप्तजी भावों की अभिव्यक्ति कला के कुशल कलाकार है। उनके काव्य का कला पक्ष भी भाव की भाँति समृद्धशाली है। उनके काव्य में कला-पक्ष के प्रमुख तत्व अलंकार, भाषा और छन्द का सुन्दर रूप से निर्वाह पाया जाता है।

अलंकार योजना- गुप्तजी ने काव्य में अलंकारों के महत्व को स्वीकृत करते हुए अपनी कविता कामिनी को अलंकारों से सजाया है, उनका रूप श्रृंगार किया है। स्वाभाविक अलंकारों के वह विरोधी नहीं, और नवम् सर्ग तो अलंकार प्रधान ही है। भाषा में जो अलंकार स्वतः आ गये है, उन्हीं को उन्होंने सहज रूप से ग्राह्य कर लिया है। श्लेष का उदाहरण दृष्टव्य है-

"करूणे क्यों रोती है उतर में और अधिक तू रोई
मेरी विभूति है जो भवभूति कहें क्यों कोई।"

शब्दालंकारों में गुप्तजी को अनुप्रास अत्याधिक प्रिय है। अनुप्रासात्मक शैली में उनका भाषा का आलंकारिक सौन्दर्य देखते ही बनता है।

"चारू चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल थल में,"

जहाँ अर्थ के कारण काव्य में चमत्कार की सृष्टि होती है। वहाँ अर्थालंकार होता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक आदि प्रमुख अर्थालंकार है। जिनका गुप्तजी ने प्रयोग किया है।

उपमा- "कन्धे ढककर कच छहर रहै थे उनके
रक्षक तक्षक से लहर रहै थे उनके।"

रूपक- "सखी नील नभसरसे उतरा यह हंस अहा, तरता-तरता
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता-चरता ।"

उत्प्रेक्षा-"रतनाभरण भरे अंगों में, ऐसे सुन्दर लगते थे ज्यों प्रफुल्ल बल्ली पर सो-सो, जुगनू जगते थे"

भ्रान्तिमान- "नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का भ्रान्ति से,
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है?
सोचता है अन्य शुक यह कौन है?"

इन प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त गुप्तजी ने अपने काव्य में आधुनिक युग में प्रचलित नवीन अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

मानवीकरण- "अरूण संध्या को आगे ढेल,
देखने को कुछ नूतन खेल
सजे विधु की बेदी से भाल,
यामिनी आ पहुँची तत्काल।"

विशेषण विर्पयय- "शशि खिसक गया
निश्चिन्त हँसी हँस बाकी"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तजी ने नवीन और प्राचीन सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। परन्तु उनका झुकाव प्राचीन अलंकारों की ओर ही रहा है और इनमें भी उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकारों को अपेक्षाकृत अधिक अपनाया है।

भाषा- गुप्तजी खड़ीबोली भाषा के संस्कारक और उद्धारक माने जाते हैं। उनकी काव्य भाषा का विकास ही खड़ीबोली भाषा के विकास का इतिहास है। उनकी भाषा खड़ीबोली है जिसका उत्कृष्टतम रूप 'साकेत' में दिखायी देता है। भारतीय संस्कृति के पुजारी होने के कारण गुप्त जी की भाषा में संस्कृत पदावली की प्रधानता है। परन्तु हरिऔध जी की तरह संस्कृत शब्दों के प्रति विशेष आग्रह नहीं है। संस्कृत शब्दों में भी उसके तद्भव रूपों की प्रधानता है। प्रायः उन्होंने संस्कृत शब्दों को भी खड़ीबोली की प्रकृति के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है। यथा- लाक्ष्यमण्य, मनोज्ञता, सारल्य, आरूण्य आदि।

गुप्तजी की भाषा में सरलता, सहजता, मधुरता, ओजमयता, चित्रोपमता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता आदि गुण सर्वत्र विद्यमान हैं। गुप्तजी ने लोकाक्तियों और मुहावरों का भी सफल प्रयोग किया है। गुप्तजी की भाषा खड़ीबोली का सहज प्रकृत रूप परिलक्षित होता है। वह सरल स्वच्छ व प्रसाद गुण से युक्त है। गुप्तजी की भाषा में कलात्मकता भी यथेष्ट रूप से पाई जाती है। शब्दों के माध्यम से गुप्त जी पात्र, दृश्य, आदि का चित्रण करने में, उनका चित्र सा खड़ा कर देने में अत्यन्त सिद्धहस्त हैं-

"उलटा लेट कुहनियों के बल, धरे वेणु पर ठोड़ी।
कनू कुँज में आज अकेला, चिन्ता में है थोड़ी।"

भाषा में निखार लाने, अर्थक्ता बढ़ाने के लिए मुहावरों लोकोक्तियों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। पैर पलोटना, मान-मनाना, आँसू पीना, आहें भरना आदि सुन्दर मुहावरों के प्रयोग बन पड़े है।

शब्द शक्तियाँ (अ) "रूखा-सूखा खान पान भी इष्ट है
भाता किसको सदा मिष्ट ही मिष्ट है।"- अभिधा
(ब) "जहाँ हाथ में लोह वहाँ पैरों में सोना"- लक्षणा
(स) "क्या क्षण-क्षण में चौंक रही मैं"- व्यंजना

शैली- शैली ही काव्यात्मक आकर्षण की कारयित्री तथा कवि के व्यक्तित्व की सहज परिचारिका होती है। गुप्तजी का काव्य विषय की दृष्टि से विविधतामय है। इसलिए उन्होंने अनेक काव्य शैलियों का प्रयोग किया है। साकेत की शैली गीतात्मक या नाट्यात्मक न होकर प्रबन्धात्मक है। इसमें वर्णन को महत्व दिया जाता है, फिर भी कवि कहीं-कहीं गीतों का सहारा लेकर उसे नाटकीय रूप देता है। वैसे इसमें शैलीगत सभी गुण दिखायी देते है। प्रेम रस-वर्णन में वह सरस व सुकुमार हैं तो युद्धादि के वर्णन में वेदना-प्रचण्डता तथा प्रखरता से परिपूर्ण हो जाती है और उर्मिला वियोग-वर्णन में वेदनामय करूण धारा से सित्त हो उठती है तो दशरथ मरण के पश्चात नगर वर्णन के अवसर पर अपार विषादमयता की भूमिका बनकर प्रस्तुत होती है। गहन विषाद युक्त शैली दृष्टव्य है।

"ये गगन चुम्बित महा प्रासाद

मौन साधे हैं खड़े सविषाद
शिल्प कौशल के सजीव प्रमाण
शाप से किसके हुए पाषाण।“

1. **प्रबन्धात्मक शैली**- कवि की यह प्रिय शैली है। इसका प्रयोग ‘साकेत’, ‘जयद्रथ वध’, ‘सिद्धराज’, ‘नहुष’ और ‘विष्णुप्रिया’ में किया है।
2. अलंकृत उपदेशात्मक शैली- प्रबन्धकाव्यों में संवादों का विशेष महत्व होता है। इससे काव्य में स्वाभाविकता, गतिशीलता, रसात्मकता आदि का विकास होता है इस शैली का प्रयोग ‘साकेत’, ‘गुरूकुल’ व ‘हिन्दू’ में किया है।
3. विवरणात्मक शैली- इस शैली का प्रयोग ‘भारत भारती’ एवं ‘पंचवटी’ में किया गया है।
7. गीति शैली- इस शैली का प्रयोग ‘झंकार’, ‘साकेत’, ‘यशोधरा’ एवं ‘विष्णुप्रिया’ काव्यों में हुआ हो।
5. आत्मप्रधान शैली- इस शैली का प्रयोग ‘द्वापर’ में किया गया है।
6. छन्द विधान- छन्द विधान कविता के लिए आवश्यक है। कवि ने वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वार्णिक छन्दों में वर्णों का तथा मात्रिक छन्दों में मात्राओं की गणना की जाती है। वार्णिक छन्द तो पूर्णतया शास्त्रीय पद्धति पर लिखे गये है। जबकि मात्रिक छन्दों में से कई छन्द ऐसे हैं, जिनको शास्त्रीय न कहकर कवि निर्मित कहा जा सकता है। ‘साकेत’ में कवि ने प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द अपनाया है तथा अन्त में छन्द परिवर्तित कर दिया है। नवम् सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। सभी छन्द लय गति में शुद्ध है, परन्तु कहीं-कहीं वार्णिक छन्दों में अवश्य दोष आ गया है।

9.5 साकेत- कथावस्तु

प्रथम सर्ग के आरम्भ में कवि सरस्वती वन्दना करता है और फिर संकेत रूप में राम के जन्म लेने की बात कहता है। फिर अवतार लेने के कारण पर प्रकाश डालता है कि भक्तवत्सल भगवान ने संसार को मार्ग दिखाने, भू-भार को दूर करने, जनदृष्टियों को सफल बनाने तथा शिशिरमय है मन्त के समान असुर शासन का अन्त करने के लिए तथा बसन्त के समान सुखमय राम-राज्य स्थापित करने के लिए ही मानवी(कौशल्या) का पयपान किया है।

तदुपरान्त कवि साकेत नगरी की शोभा-समृद्धि का वर्णन करता है। राजा दशरथ के चार पुत्र- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न हैं और अब उन्हें कुछ और पाने की अभिलाषा नहीं है। मात्र एक अभिलाषा है कि शीघ्र ही राम का अभिषेक हो जाये। इसके लिए तैयारियाँ की जा रही हैं।

इसी समय लक्ष्मण आ जाते हैं और परस्पर हास-परिहास आरम्भ हो जाता है। उर्मिला को लक्ष्मण द्वारा सूचना मिलती है कि कल अपार आनन्द का पर्व जुड़ने वाला है, राम का भव्य राज्याभिषेक होगा। काफी समय प्रेमालाप होता है और फिर लक्ष्मण कर्त्तव्य-पालन है तु विदा लेते हैं।

द्वितीय सर्ग में राम-राज्याभिषेक की चर्चा ही चारों ओर है। रानियों सहित सभी परिजन-पुरजन हर्षविभोर हैं। किन्तु मन्थरा को यह कुछ नहीं सुहाता, उसे इसके पीछे किसी षड्यन्त्र की छाप दिखायी देती है। वह कैकेयी के पास गयी और उदास मुख से उसे नमन किया। सभी हर्षोल्लास में डूबे हुए थे। उसे उदास देखकर कैकेयी ने कारण पूछा तो ईर्ष्यालु मन्थरा ने सन्देह जाग्रत करने वाले षड्यंत्र का संकेत किया। मन्थरा तो अपनी बात कहकर चली गयी, पर रानी के मन में उथल-पुथल मच गयी। बार-बार उनका मन कचोटने लगा कि आखिर भरत को क्यों नहीं बुलाया!

उधर राजमहलों में अभिषेक के साज सजाये जाते थे और इधर कैकेयी सौतिया डाह में जल रही थीं। फिर दशरथ आते हैं और अपनी स्त्रैणता के शिकार होते हैं। कैकेयी कभी के माँगे अपने दोनों वरदान प्राप्त करती है-

नाथ मुझको दो यह वर एक-
भरत का करो राज्य-अभिषेक।
दूसरा सुन लो हो न उदास,
चतुर्दश वर्ष राम वनवास।

दशरथ मर्माहित होते हैं। उनकी ऊहापोह तथा मरणान्तक वेदना में रात व्यतीत होती है तथा मृत्यु की भयानक छाया लिये नया प्रभात होता है।

तृतीय सर्ग में लक्ष्मण अपनी प्राणों की प्राण उर्मिला से विदा लेकर राम के पास पहुँचे और फिर पिता की वन्दना के लिये राम के साथ चल दिये। राम ने स्थिति जाननी चाही, दशरथ तो कुछ बोल ही नहीं पाये, कैकेयी ने हीं उन्हें बताया। राम स्थिति समझ गये, पिता की मनोव्यथा स्पष्ट हो गयी। उन्होंने तत्क्षण कहा- ''इतनी-सी बात के लिए इतनी चिन्ता! भरत में और मुझमें भेद ही क्या है। भरत यहाँ धर्म-पालन करें और मैं वन में धर्म-पालन करूँगा।'' यह सुनकर दशरथ पुनः मूर्छित हो गये। परन्तु लक्ष्मण के तन-बदन में आग लग गई, परन्तु राम ने उन्हें शान्त होने को कहा तो लक्ष्मण और भी उबल पड़े। किसी प्रकार लक्ष्मण शान्त होते हैं, पर वन जाने को उद्धत राम का साथ नहीं छोड़ते, स्वयं भी राम के साथ वन जाने को तैयार हो जाते हैं। उन्होंने उनसे पिता को धैर्य बँधाने को कहा और फिर माँ से आज्ञा लेने कौशल्या के भवन की ओर बढ़े।

चतुर्थ सर्ग में पवित्रता की मूर्ति कौशल्या देवार्चन में लगी हुई थीं और सीता पास ही खड़ी सब आवश्यक सामग्री उन्हें प्रदान करती जाती थीं, तभी राम ने चरण वन्दन कर माँ का आशीर्वाद प्राप्त किया। राम सुमित्रा को शान्त करते हैं तो सीता वन जाने का संकल्प करती हैं। लक्ष्मण उर्मिला को घर रहने का आदेश देते हैं और उर्मिला प्रिय पथ में बाधक न बनने के लिए अपने उर पर अवधि शिला का भार रख लेती है। उर्मिला तो प्रिय-वियोग की कल्पना करके वहीं मूर्छित होकर गिर

पड़ी। उन्हें गिरते देख लक्ष्मण ने कस कर अपने नेत्र मूँद लिये। इस पर राम ने पुनः लक्ष्मण को समझाया, पर वह अपने निश्चय पर अटल रहै , तीनों वन के लिये चल दिये।

पंचम सर्ग में राम ने गुरूवर वशिष्ठ को प्रमाण किया और आशीर्वाद लेकर वन की ओर-लक्ष्मण, सीता के साथ चल दिये। सभी कैकेयी की निन्दा कर रहै थे। राम प्रजा को समझाने लगे, पर प्रजा राम के साथ जाने को अटल। निषादराज ने तीनों वन-पथिकों का स्वागत किया। प्रभात में सब गंगा पार हुए। तीर्थराज प्रयाग पहुँचकर भारद्वाज मुनि के दर्शन किये। तत्पश्चात् महर्षि बाल्मीकि के दर्शनार्थ चित्रकूट के गहन अरण्य में पहुँचे। लक्ष्मण ने कुटी छायी और वहाँ के वासियों के उल्लास में राम सहायक बने। वनचारियों का स्वागत राम ने सहर्ष स्वीकार किया।

षष्ठ सर्ग में कथा पुनः अयोध्या की ओर लौटती है। मूर्छिता उर्मिला को उसकी सखी सुलक्षणा धैर्य बँधाती है, पर उसका उद्वेलित मानस नहीं मानता, वह बारम्बार मूर्छित होती जाती है और तीनों माताओं की दयनीय दशा तो अवर्णनीय है, अपने पति की शोचनीय दशा के कारण रो भी नहीं पातीं। दशरथ को सुमन्त्र की प्रतीक्षा है- उन्हें अभी तक विश्वास नहीं है कि राम 14 वर्ष के लये निश्चित रूप से चले गये है। उन्हें आशा है कि पितृ भक्त राम उनकी शोचनीय अवस्था की सूचना सुमन्त्र द्वारा पाकर तुरन्त लौट आयेंगे। किन्तु जब सुमन्त्र आते हैं तो अकेले ही और जब राम का अन्तिम समाचार देते हैं तो जैसे दशरथ की समस्त व्यग्रता बाँध तोड़कर निकल पड़ती हैं वह ‘हा राम, राम लक्ष्मण सीते’ कहते हुए अपने प्राण त्याग देते है।

सप्तम सर्ग में भरत शत्रुध्न के साथ आ रहै हैं किन्तु उनके मन में उल्लास नहीं है। उन्हें सर्वत्र एक अवसाद की छाया दिखायी देती है। वह दूतों से पूछते हैं, पर वे कोई उत्तर नहीं देते। जब उन्हें राम के वन-गमन और पिता के निधन का समाचार मिलता है तो वे चीत्कार कर उठते हैं। शत्रुघ्न ने क्रोधावेग में होठ काट लिये। कैकेयी द्वारा मातृत्व जनित वात्सल्य प्रकट करने पर वह उसे अनेक कठोर वचन कहकर कैकेयी की भर्त्सना करने लगे। माँ कौशल्या का निष्कपट हृदय भरत की आर्त वाणी सहन नहीं कर पाता, वह उन्हें अपने वक्ष से लगा लेती हैं और ‘निष्पाप’ कहकर सम्बोधित करती है। उन्हें लगता है कि भरत के आते ही उनकी सूनी गोद भर गयी है। फिर वह भरत को राज्य-भार सम्भाल कर पिता को जलाँजलि देने तथा अन्त्येष्टि करने को कहती हैं। इसी प्रकार रात व्यतीत होती है।

अष्टम सर्ग में राम चित्रकूट में एक वृक्ष की छाया में पड़ी शिला पर बैठे हैं, पर्णकुटी में सीता गुनगुनाती हुई काम कर रही हैं और राम प्रणयप्राणा सीता को एकटक मुग्ध दृष्टि से देखे जा रहै है। उन्हें भरत के आगमन की सूचना मिलती है। लक्ष्मण कहते है कि भरत दल-बल के साथ आक्रमण करने आ रहै हैं, पर राम का कथन है कि वह अपनी माँ का परित्याग करके समस्त अयोध्यावासियों के साथ आ रहै है। तभी भरत आते हैं। राम और भरत गले मिलते है। भरत-शत्रुध्न उनके चरणों में लोट जाते है। इसके पश्चात् सभा जुड़ती है। भरत राम से घर लौट चलने का आग्रह करते है। वह अपनी ग्लानि में मरे जा रहै है। कैकेयी भी राम से घर लौटने का अनुरोध करती है। अन्त में, कैकेयी

राम से घर चलने की प्रार्थना करती है। राम उससे प्रभावित अवश्य होते हैं, पर अपना निर्णय नहीं बदलते। तब भरत यह प्रस्ताव रखते हैं कि भरत वनवास भोग लें और राम प्रजाहित में शासन करें, पर धर्मव्रती राम किसी भी प्रकार विचलित नहीं होते। अन्त में उनकी चरण-पादुका पर ही तर्क उतरता है।

नवम सर्ग में उर्मिला के विरह की मार्मिक उक्तियाँ हैं। उर्मिला का विरह अवधि-शिला के भार से दबा हुआ था। वियोग के नाना पक्ष उभरे हैं।

दसवें सर्ग में उर्मिला सरयू नदी के तट पर बने प्रासाद की खिड़की पर खड़ी होकर नीचे छिटकी चन्द्रिका को देख रही है और अतीत के चित्र दोहरा रही है।

एकादश सर्ग में भरत राम की चरण पादुकाएँ सोने के मन्दिर में रखकर पुजारी के रूप में स्वयं बैठे हैं। उनका रूप भी वनवासी राम की तरह है। अन्तर यही है कि उनके चेहरे पर उल्लास के स्थान पर अवसाद व्याप्त हैं। वह ध्यान में इतने लीन हैं कि उन्हें अपनी पत्नी मांडवी के आने की भी आहट सुनायी नहीं देती।

इसी समय शत्रुघ्न आकर अयोध्या के समाचार देकर बताते हैं कि एक व्यवसायी द्वारा उन्हें राम के बारे में ज्ञात हुआ है। इसी समय उनकी दृष्टि आकाश की ओर जाती है, वहाँ हनुमान जाते दिखायी देते है। नाक-कान काटे जाने तथा खरदूषण वध के उपरान्त शूर्पणखा का रावण के समक्ष रूदन, रावण द्वारा सीता का हरण, जटायु संस्कार, कबन्धासुर वध, शबरी का आतिथ्य ग्रहण, सुग्रीव का मिलन, बालि वध, हनुमान का समुद्र-लंघन, सीता से भेंट, विभीषण शरणागति, राम-रावण युद्ध, कुंभकर्ण वध और लक्ष्मण शक्ति- यह सम्पूर्ण कथा हनुमान संक्षेप में सुना देते है। तदुपरान्त संजीवनी लेकर व्योममार्ग से उड़ जाते हैं।

द्वादश सर्ग में हनुमान तो लक्ष्मण के प्राण बचाने के लिए संजीवनी लेकर चले गये, पर अयोध्यावासी व्यग्र हो उठते हैं। शत्रुध्न भी जाने की तैयारी करते हैं, पर कौशल्या उन्हें रोकना चाहती है तो वीर क्षत्राणी सुमित्रा उन्हें आदर्श पथ पर अग्रसर होने का आदेश देती है। कैकेयी भी युद्धस्थल पर जाने को तैयार हो जाती है, पर भरत रोकते हैं और सेना सजाकर चलने को सन्नद्ध होते हैं।

तदुपरान्त सैन्य संगठन कर लंका पर आक्रमण होता है, रावण भी पूर्ण शक्ति से आक्रमण करता है, वह राम पर आक्रमण करना चाहता है, पर लक्ष्मण उसे लौटने का अवसर ही नहीं देते। यज्ञ निमग्न मेघनाद पर हनुमान के साथ लक्ष्मण भयंकर आक्रमण कर युद्ध में उसे मार डालते हैं। अंत में रावण भी मारा जाता है।

रावण वध देखकर समस्त अयोध्यावासी हर्षित हो जाते हैं। वे राम के स्वागत की तैयारियाँ करते हैं। इसी समय हनुमान रामागमन की सूचना देते हैं, भाव-विह्वल भरत राम से मिलने जाते है, दोनों का मार्मिक मिलन होता है और फिर उन दोनों के मधुर मिलन के साथ कवि ‘साकेत- की कथा समाप्त कर देता है।

9.6 साकेत- पाठ एंव व्याख्या

दो वंशों में .... विदेही।

सन्दर्भ- प्रस्तुत पंक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' से ली गयी है।

प्रसंग- महाकाव्य 'साकेत' के अष्टम सर्ग की अन्तिम पंक्तियों में वनवासी लक्ष्मण के चित्रकूट में उर्मिला के क्षणिक मिलन का दृष्टान्त दिया है। चित्रकूट में जब सभी मातायें और साकेत निवासी अन्य लोग भरत के साथ राम-लक्ष्मण, सीता से मिलने आते है उसके अनन्तर जनकपुरी से महाराज जनक भी उनसे मिलने आते हैं। महाराज जनक की महानता और उनकी पुत्रियों के गुणों का नवम् सर्ग के प्रारम्भ में इस प्रकार वर्णन किया गया है।

व्याख्या- राजा जनक के विलक्षण गुणों का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं कि राजा जनक की जय हो जिन्होंने अपनी पवित्र लीला को रघु और निमि दोनों वंशों में प्रकट करके अपने विलक्षण गुणों से इन्हें गौरवान्वित किया, अर्थात निमिवंश में स्वयं जन्म लेकर और रघुवंश में अपनी पुत्रियों का विवाह करके दोनों वंशों का गौरव बढ़ाया, जिनकी पवित्र शीलवाली अथवा पुत्रों के समान शीलवाली पुत्रियां सौ पुत्रों से भी अधिक अपने वंश के गौरव को बढ़ाने वाली हैं, त्यागी पुरूष भी आकर जिनकी शरण में आकर आश्रय लेते हैं, जो आसक्तिहीन होकर भी गृहस्थी हैं, गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले हैं, राजा होकर भी योगी हैं, अत्यन्त धर्मात्मा है और सांसारिक विषयों से विमुख रहने वाले हैं।

शब्दार्थ- दो वंशों में- दो कुलों में, रघुकुल और निमिकुल में, पावनी-पवित्र, पूतशीला- 1.पवित्रशील वाली 2.पुत्रों के समान शीलवाली, अनासत्त-आसत्तिहीन, विदेही-सांसारिक विषयों से विमुख।

विशेष-

1. प्रस्तुत सर्ग का प्रतिपाद्य है उर्मिला का विरह वर्णन, उर्मिला राजा जनक की पुत्री है। राजा जनक के गुणों का वर्णन करके कवि ने प्रकारान्तर से उर्मिला के गौरव का वर्णन किया है।
2. यह पद मंगलाचरण है। मंगलाचरण में भव-बाधा आदि के हरण के लिए प्रार्थना की जाती है।
3. ''सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियां शतशीला'' में उपमेय(पुत्रियों) का उपमान(पुत्र) से अधिक उत्कर्ष का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार।
7. 'पूतशीला' में पूत शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।

विफल जीवन ....सुखसा रहा।

प्रसंग- साकेत के नवम् सर्ग में राजा जनक के गुणों का वर्णन करने के बाद कवि भगवान राम के गुणों का वर्णन करने के कारण अपने कवि जीवन की सुखद अनुभूति का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

व्याख्या- प्रथम अर्थ- कवि समय रहते राम की वंदना न कर सका। अपनी इस दैन्य दशा पर प्रायश्चित करता हुआ वह कहता है, कि मेरा जीवन असफल होकर व्यर्थ ही व्यतीत हो गया। मुझे खेद है कि राम के चरण युगल की पूजा करके, उन्हें जल से पखारकर अपनी कविता के पदों को भी रसयुक्त नहीं बना पाया। है कविते! तुम्हारा क्षेत्र कठिन है, सत्काव्य की रचना सरल काम नहीं है, फिर भी कवि प्रतिभा के अभाव में केवल श्रम से ही काव्य की रचना करके मुझे उसी प्रकार सुख मिल रहा है, जिस प्रकार का सुख कवि प्रतिभा के द्वारा रची हुई कविता से मिलता। भाव यह है कि यद्यपि सुखदायिनी कविता की रचना करने के लिए कवि प्रतिभा अपेक्षित है, तथापि राम विषयक कविता यदि श्रम से भी रची गई है तो वह भी उसी प्रकार का सुख देती है जिस प्रकार का सुख प्रतिभाजन्य कविता से मिलता है क्योंकि राम का चरित्र स्वयमेव सत्काव्य है।

द्वितीय अर्थ- गुप्त जी से पूर्व महर्षि बाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामायण लिखी, पर ये दोनों उर्मिला के आदर्श चरित्र को अंकित करना भूल गये। उर्मिला के प्रति इनका उपेक्षा भाव ही बना रहा। गुप्त जी इसी ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि यद्यपि उर्मिला का जीवन अत्यन्त उज्जवल था, परन्तु वह व्यर्थ ही गया, क्योंकि बाल्मीकि तुलसीदास की कविता के दो पद भी उससे सरस नहीं बने अर्थात इन दोनों महाकवियों ने इसके चरित्र को उजागर करने को दो पद भी नहीं लिखे। यद्यपि मुझमें इन दोनों कवियों की सी कवि प्रतिभा नहीं, तथापि उर्मिला के चरित्र का श्रमसाध्य कविता में वर्णन करके भी में सहज कविता का सा आनन्द प्राप्त कर रहा हूँ।

शब्दार्थ-विफल-असफल, ... 1. रस से युक्त 2. जल से युक्त

दो पद-कविता के दो पद, राम के दो चरण, तव भूमि- तुम्हारा क्षेत्र, तुम्हारी रचना।

विशेष-

1. "कठिन है कवितेः तव भूमि ही, पर यहॉ श्रम ही सुख रहा" से कवि का यह काव्य शास्त्रीय सिद्धान्त स्पष्ट है कि प्रतिभाजन्य कविता ही आनन्ददायिनी होती है, तथापि महदुद्देश्य के लिए लिखी गई श्रमसाध्य कविता भी उतना ही आनन्द देती है।
2. 'विफल' सरस, पद के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार।
3. पर यहॉ श्रम भी सुख-सा रहा में साधारण धर्म लोप होने से धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

वरूणे .... कहै कोई।

प्रंसग- 'साकेत' के नवम् सर्ग में सर्ग के प्रारम्भ में कवि उर्मिला की विरह वेदना का वर्णन करने से पूर्व विरह वेदना एवं करूणा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहते है।

व्याख्या- है करूणे! तू क्यों रोती है? भवभूति के 'उत्तररामचरित' में तो तू पहले ही बहुत रो चुकी है। यह सुनकर करूणा उत्तर देती है कि मैं इस कारण रो रही हूँ कि जो विरह भाव मेरी विभूति है, उसे संसार का ऐश्वर्य या शिव की भस्म या भवभूति कवि को ही इसका अंतिम कवि क्यों माना जाये?

कवि इन पक्तियों में अपने द्वारा वर्णित विरह, वेदना का औचित्य बता रहा है। वह मानता है कि यद्यपि भवभूति कवि ने विरह वेदना का इतना सांगोपांग वर्णन किया है कि पूर्ववर्ती कवियों के लिए कुछ कहने को प्रायः बचा ही कुछ नहीं है, तथापि यह भाव तो अनन्त है, व्यक्ति विशेष की अपनी-अपनी विरह वेदना और अपना-अपना रूप होता है, यह भाव संसार व्यापी है। शिव की भस्म की भॉति कल्याणकारी भी है। अतः इसे तुच्छ या शांत मानना उचित नहीं है इसलिए विरह वेदना का जितना वर्णन किया जाये उतना ही कम है।

शब्दार्थ- विभूति-ऐश्वर्य, भवभूति- 1. संसार का ऐश्वर्य 2. शिव की भस्म 3. भवभूति नामक कवि जो करूण भाव के मूर्धन्य कवि माने जाते हैं और जिनका काव्य 'उत्तररामचरित' करूणा भाव का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

विशेष-

1. इन पक्तियों में कवि ने विरह वेदना से सम्बद्ध अपने विचार व्यक्त किये हैं। कवि के अनुसार विरह वेदना अनंत, संसार व्यापी और कल्याणकारी भाव है।
2. 'करूणा' का चेतन रूप में वर्णन होने से मानवीकरण अलंकार।
3. 'उत्तर' और 'भवभूति' पदों द्वारा उत्तररामचरित और भवभूति कवि के नाम का बोध होने से मुद्रा अलंकार।

अवध को अपनाकर ....व्रत ले लिया।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में राम और भरत के महान त्याग का प्रतिपादन करते हुए कवि कहते हैं-

व्याख्या- अयोध्या को त्याग से अपनाकर राम ने वन को भी तपोवन के समान सुख देने वाला बना दिया। भाव यह है- राम ने सहर्ष राजसिंहासन का त्याग कर दिया। उनके इस अपूर्व त्याग ने अयोध्यावासियों को बहुत अधिक प्रभावित किया। इस प्रकार अपने त्याग के द्वारा राम ने अयोध्यावासियों का हृदय जीत लिया और भरत ने राम के प्रेम के कारण राजभवन में रहकर भी वन-निवासी योगियों का सा जीवन बिताने लगे।

शब्दार्थ- तपोवन- तपोवन के समान सुख देने वाला, अनुराग- प्रेम

विशेष-

1. "अवध को अपनाकर त्याग से" में लक्षण शब्द शक्ति है, क्योंकि 'अवध' से तात्पर्य 'अवध निवासियों' से है।
2. राजभवन को पाकर भी भरत ने अपना जीवन वीतरागियों का-सा बिताया। इसका वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने भी किया है।
3. 'अवध को अपनाकर त्याग से' में अर्थ के विरोध का आभास होने से विरोधाभास अलंकार।
7. 'वन तपोवन सा प्रभु ने किया' में 'वन' शब्द की सार्थक और निरर्थक आवृति होने से यमक अलंकार।

वेदने तू भी .... प्राणधनी।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में उर्मिला के द्वारा विरह वेदना के महत्व को प्रतिपादित किया है। क्योंकि वेदना के कारण ही प्रेम का वास्तविक रूप निखरता है।

व्याख्या- उर्मिला वेदना के महत्व का प्रतिपादन करती हुई अपनी वेदना को सम्बोधित करती हुई कह रही है, कि "है वेदने! यद्यपि सारा संसार तेरी निन्दा करता है और तुझसे घृणा करता है, क्योंकि तू मेरी हितकारिणी बनी हुई है आज मैं तुझमें ही अपनी विशाल इच्छा को जान पाई हूँ। अर्थात्, मुझे अपने प्रियतम से कितना अधिक प्रेम था, वह मैं वेदना के कारण ही जान सकी हूँ। जिस प्रकार हीरे के टुकड़े से प्रकाश की किरणें निकलती है, उसी प्रकार तू मुझे नवीन आशा प्रदान करने वाली है। प्रेम में दृढ़ता लाकर प्रियतम के मिलन के लिए आशा बंधाने वाली है। अतः तू मेरे लिये हीरे के टुकड़े के समान प्रकाश देने वाली है। तू बाण की नोक के समान, मर्मांतक होकर भी मुझे प्रिय लगने वाली है। अतः तू मेरे हृदय को निरन्तर पीड़ित करती रह, ताकि मैं प्रिय के प्रति अपने प्रेम में शिथिल न हो जाऊँ, बल्कि सदैव उनका ध्यान करती रहूँ। यद्यपि मेरा शरीर आँसुओं से भीगा हुआ रहता है, फिर भी यह ठंडा नहीं होगा, क्योंकि तू सूर्यकांतमणि के समान सदैव उसे गर्म बनाये रखेगी। भाव यह है कि वियोग-व्यथा का गहन भार होते हुए भी ताज्जन्य वेदना के कारण मैं वियोग की इस लम्बी अवधि में जीवित रहँूगी और अन्त में प्रियतम का संयोग-सुख प्राप्त करूंगी। है वेदने! तू अभाव की इकलौती पुत्री है और अदर्शन तुम्हारी माता हैं अर्थात् प्रिय के अभाव में, उसे न देख सकने के कारण वेदना का जन्म होता हैं वास्तव में तेरी छाती ही स्तन के लिए उचित उपमा वाली है। भाव यह है कि जिस प्रकार माँ अपने वात्सल्य भाव के कारण अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है। उसी प्रकार तुम भी उसे अपनी छाती से लगा लेती हो, उसका हित करती हो। तुम वियोग रूपी समाधि हो, क्योंकि जिस प्रकार योगी समाधि में लीन होकर सारे संसार की आसक्तियों से मुक्त होकर, परब्रह्म में ही लीन हो जाता है, उसी प्रकार व्यथित व्यक्ति का हृदय केवल अपने प्रियतम में ही डूबा रहता है। संसार की और सब बातों को वह भूल जाता है। तू विलक्षण गुणों से युक्त है और ठीक बनी हुई है, अर्थात् लोग तेरी महत्ता को समझकर तेरी निंदा करते हैं। वरना अपने स्थान पर तेरा भी महत्व है। तेरे ही कारण मैं स्वयं को, प्रिय को और संसार को कभी आसक्ति से और कभी विरक्ति के भाव से देखूं। कहने का तात्पर्य यह है कि विरहिणी को कभी तो स्वयं से और अपने प्रियतम से और संसार से अत्यन्त लगाव का भाव हो जाता है और कभी-कभी इन सभी से अलगाव की भावना उत्पन्न हो जाती है। इन विरोधी भावनाओं का जन्म विरह वेदना के कारण ही होता है। है पत्थर (हीरे) की खान! तुझमें ही मुझे मन-सा माणिक्य मिला है। है सजनी! मैं तुझे तभी छोड़ूंगी जब मेरा प्रियतम मुझे मिल जायेगा। भाव यह है कि प्रियतम के दर्शन होने पर ही विरह वेदना का अन्त होगा।

शब्दार्थ- विशिख अनी- बाण की नोक, दृगम्बु सनी- आँसुओं से भीगी, तपन मनी-सूर्यकान्त मणि/संताप रुपी मणी, उपल खनी- मोतियों की खान।

विशेष-

1. इन पंक्तियों में कवि ने वेदना के महत्व को प्रतिपादित किया है। वेदना का जन्म प्रिय के विरह में होता है। अतः अभाव को वेदना का पिता और प्रिय के अदर्शन को जननी मानना बहुत उपयुक्त है।
2. वेदना का अनेक रूपों में वर्णन होने से उल्लेख अलंकार।
3. 'नई किरण छोड़ी है' मैं केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिश्योक्ति अलंकार।
7. 'हरि कनी', 'विशिख अनी', 'उपल खनी' में रूपक अलंकार।
5. 'मन सा मानिक' में उपमा अलंकार।

कहती मैं ....समझी थी गान।

प्रसंग- साकेत के नवम् सर्ग में उर्मिला की विरह वेदना बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। उर्मिला चातकी की विरह वेदना की मधुर आवाज सुनकर अपनी वेदना के सुख को अनुभूत करती हुई चातकी से कहती है।

व्याख्या- चातकी को सम्बोधित करते हुए विरहिणी उर्मिला कहती है, कि "है चातकी! यदि व्यथा से भरे हुए मेरी इन खारी आँसुओं की बूंदे तुम्हारे स्वर का मोल चुका सकती तो मैं तुमसे विनय करती कि तुम फिर से बोलो, अर्थात् अपने मधुर स्वरों में अपने प्रियतम का नाम लेकर मेरी विरह-वेदना को कम करो। मेरे ये खारे(व्यथापूर्ण) आँसू तो क्या, बहुमूल्य मोती भी तुम्हारे स्वरों की समता नहीं कर सकते, अर्थात् वे भी तुम्हारे प्रिय स्वरों का मूल्य नहीं चुका सकते। फिर भी, मैं तुमसे विनय करती हॅू कि मेरे उपवन की इस झाड़ी में बैठकर अपने मधुर स्वरों से रस घोलो, आनन्द की वर्षा करो। जिस प्रकार कोई लज्जाशील नारी अपने प्रियतम की बातें सुनने के लिए आतुर होकर अपने कानों को खोलकर खड़ी हो जाती है और अपने प्रियतम की बातें सुनकर उसके पीले कपोलों पर लज्जा के कारण लाली दौड़ जाती है, उसी प्रकार मेरी संयोगावस्था की मधुर स्मृतियां अपने कानों को खोलकर उन्हें समेटने के लिए हृदय रूपी द्वार खोले हुए खड़ी हैं। देख तो सही, प्रियतम की बातों की सम्भावना से ही इनके विरह दुख के कारण पीले पड़े हुए कपोल लज्जा से लाल हो गये हैं। तुम्हारे मधुर स्वरों को सुनने की सम्भावना से ही मेरे अनेक स्वप्न स्वयं ही आन्दोलित होकर जाग उठे हैं, अर्थात् हृदय में अनेक पूर्व-स्मृतियां सजग हो उठी हैं। यद्यपि मेरा हृदय आन्दोलित हो उठा है, तथापि वाह्य जगत अभी भी मेरे लिये सूना बना हुआ है ये पृथ्वी और आकाश अभी भी मेरे लिए सूने बने हुए हैं। ऐसा लगता है, मानो वे अभी सोए हुए हैं। तुम चुप रहकर मुझे वेदना के सुख से वंचित न करो, अर्थात् विरह-वेदना में प्रियतम की बातें सुनकर जो सुख विरहिणी को मिला करता है उससे मुझे दूर न रखो। तुम अपने मधुर स्वरों को सुनाकर मेरे हृदय रूपी हिंडोले को हिलाओ, मेरे हृदय को आह्लाद से भरो, तुम्हे मेरे साथ सहानुभूति करनी भी चाहिए क्योंकि हम दोनों एक ही समान है- जो तुम्हारे स्वरों में प्रियतम की स्मृति से उत्पन्न आनन्द की क्रीड़ा है, वही मेरे हृदय में छिपी हुई है। कहने का भाव यह है कि जिस भाव को तुम अपने

स्वरों में व्यक्त कर देती हो। उसी भाव को मैं अपने हृदय में चुपचाप छिपाये रखती हूॅ। चातकी को सम्बोधित करती हुई विरहिणी उर्मिला कहती है चातकी! मुझको आज ही इस बात का ज्ञान हुआ कि जिसको आज तक मैं तेरा गीत समझती आई थी, वह वस्तुतः तेरा गीत न था, वरन रोना था जो गीत के रूप में तेरे हृदय से फूटा करता था।

शब्दार्थ- तोल- समता, श्रुति पुट- कान, पट-द्वार, पांडुकपोल- पीले गाल, भूगोल-खगोल- पृथ्वी और आकाश, कल कल्लोल- मधुर क्रीड़ा, भाव- ज्ञान, रूदन- रोना।

विशेष-

1. भाव और कला की दृष्टि से यह गीत गुप्त जी के उत्कृष्ट गीतों में से है। इसका भाव पक्ष जितना मार्मिक है कला पक्ष उतना ही सबल एवं समृद्ध है।
2. पूर्व स्मृतियों को विरहिणी नारी का रूप देना अत्यन्त भावात्मक तथा कल्पना की समृद्धि से पूर्ण है।
3. आँसूओं का पानी खारा होता है पर 'खारी आँसू' में 'खारी' शब्द का प्रयोग आँसुओं के अतिशय खारीपन का, उर्मिला के अपार विरह-व्यथा का सूचक है।
7. 'कर सकते है मोती भी उन बोलों की तोल' में प्रसिद्ध उपमान(मोती) की हीनता का वर्णन होने से व्यतिरेक अंलकार।
5. पूर्व स्मृतियों पर चेतना का आरोप होने से मानवीकरण अलंकार।
6. 'वह तेरा रूदन था मैं समझी थी गान' में सत्य बात को छिपाकर उसके स्थान पर असत्य बात का कथन होने से अपह्नुति अलंकार।

दरसो परसो .... जन के जन बरसो।

प्रसंग- साकेत के नवम् सर्ग में उर्मिला की वेदना का बड़ा करूण एवं मार्मिक प्रकाशन हुआ है। बादलों के उमड़ने घुमड़ने से वेदना की तीव्रता और अधिक बढ़ जाती है। किन्तु उर्मिला का उदास हृदय सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण के लिए बादलों को सम्बोधित करते हुए कहता है।

व्याख्या- बादल को सम्बोधित करती हुई विरहिणी उर्मिला कह रही है कि "है बादल! तुम दर्शन दो, ताकि तुम्हें आकाश में उड़ते देखकर संतप्त पृथ्वी को वर्षा की आशा से सान्त्वना मिले। तुम स्पर्श करो, अर्थात् अपनी शीतल बूंदों को बरसाकर और उनसे प्रकृति के तपते पदार्थों एवं प्राणियों का स्पर्श करके उन्हें शीतलता प्रदान करो और बरसकर सारी प्रकृति को ग्रीष्म के भीषण जाल से मुक्त करो।" है बादल! तुम भीषण गर्मी से दुखी हुई प्रकृति(जगत) के नवीन यौवन हो, अर्थात जिस प्रकार शरीर में नवीन यौवन आने से नवीन स्फूर्ति और चेतना आ जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे आने से संतप्त प्रकृति ग्रीष्म की भीषणता से मुक्त होकर नवीन चेतना से भर जाती है। अतः बरस कर इसमें नवीन जीवन और चेतना का संचार करो। है बादल! तुम आषाढ़ के महीने में घुमड़कर आकाश में छा जाओ और पवित्र सावन के मास में बरस पड़ो। है बादल! तुम्हीं भादो मास के चित्रा और हस्ति नक्षत्र हो और तुम्हीं स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले बादल हो। अतः अपने इन

उपयुक्त समयों पर बरसकर संसार को सुख दो, उसका कल्याण करो। जिस प्रकार आँखों में काजल लगाने से उसकी शोभा बढ़ जाती है, उसी प्रकार तुम आकाश में छाकर सृष्टि को शोभा सम्पन्न बना देते हो। तुम अपनी शोभा, शीतलता के कारण दृष्टि को प्रसन्न करने वाले हो, तुम गर्मी की भीषण तपन को नष्ट करने वाले हो। अतः तुम बरस कर सृष्टि की शोभा बढ़ाओं, दृष्टि को आनन्द दो और गर्मी की भीषणता को नष्ट करो। जिस प्रकार स्तन के अग्रभाग से दूध झरकर शिशु का पालन-पोषण करता है, उसी प्रकार तुम पानी बरसाकर सबका पालन-पोषण करने वाले हो, इसीलिए तुम आकुल और उदार जगज्जनी के स्तन के अग्रभाग के समान हो। अतः बरसकर अपनी सार्थकता सिद्ध करो। विरहिणी उर्मिला कहती है है बादल! तुम बीते हुए समृद्धि तथा सुख के दिनों को वापिस लौटाने वाले हो; अर्थात् ग्रीष्म ऋतु प्रकृति की जिस समृद्धि को झुलसा देती है तुम उसे पुनः लौटा देते हो, तुम मोरो में नाचने का आह्लाद उत्पन्न करो। है जागृति रूप बादल! तुम बरसकर जड़ चेतन पदार्थों और प्राणियों में नवीन चेतना भर दो। तुम पुलक के अंकुर बन कर बरसो, जिससे सृष्टि के चेतना विहीन पदार्थ और प्राणी नवीन चेतना से भर जायें। जिस प्रकार कोई पुरोहित मंत्र पढ़कर और पानी के छींटे लगाकर किसी सोये व्यक्ति को सचेत करता है। उसी प्रकार तुम गर्जन करके और बरसकर ग्रीष्म ऋतु के ताप से निर्जीव हुए संसार को स्फूर्ति दो। तीनो लोको के हृदय रूपी घट को आनन्द रूपी जल से भरो और कन-कन-छन-छन करके बरसो। है बादल! तुम इस तरह बरसो कि आज सभी के प्रिय भीगते हुए ही अपने-अपने घर पहुँचे; अर्थात् बरस कर बिछुड़े हुए जनों का मिलन करा दो।

शब्दार्थ- दरसो- दर्शन दो, परसो- स्पर्श करो, सरसो- हरा-भरा बनाओ, भाद्र- भादों का महीना, आश्विन- क्वार का महीना, चित्रित- चित्रा नक्षत्र, हस्ति- हस्ति नक्षत्र, विभंजन- नष्ट करने वाले, व्यग्र- आकुल, उदग्र- उदार, प्रत्यावर्तन- लौटाना, शिखि नर्तन- मोरों में नाचने का आह्लाद उत्पन्न करने वाला, चिन्मय- चेतना से पूर्ण, मृण्मय- मिट्टी के चेतना विहीन, रस- 1. जल, 2. आनन्द।

विशेष-

1. भावपक्ष की अपेक्षा इन पंक्तियों में कला पक्ष की प्रधानता है।
2. समास शैली का प्रयोग भाव-गाम्भीर्य का कारण है।
3. इन पंक्तियों में छे कानुप्रास अलंकार का चमत्कार सर्वत्र विद्यमान है।
7. सृष्टि दृष्टि के अंजन-रंजन में सृष्टि के साथ अंजन दृष्टि के साथ रंजन का क्रमशः अन्वय होने से यथासंख्य अलंकार।
5. 'मानस' पर 'घट' का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।
6. 'कन-कन छन-छन' में ध्वन्यात्मकता के कारण ध्वनयर्थ व्यंजना अलंकार।

निरख सखी .... अर्घ्य भर लाये।

प्रसंग- शरद ऋतु में प्रकृति के विभिन्न उपमानों को देखकर उर्मिला विरह वेदना की तीव्रता में प्रियतम के मिलन सुख की अनुभूति करती हुई कहती है।

व्याख्या- वर्षा ऋतु के बीत जाने पर और शरद ऋतु के आने पर खंजन पक्षी दिखाई देने लगे हैं। उन्हें देखकर उर्मिला अपनी सखी से कहती है, कि है सखी! देखो खंजन पक्षी आ गये हैं। ये खंजन पक्षी नहीं हैं, वरन् ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरे प्रवासी प्रियतम ने मेरी सुधि करके अपने नेत्रों को इस ओर फेरा हो। धरती पर यह फैली धूप धूप नहीं है, बल्कि मेरे प्रियतम के शरीर का सौन्दर्यजन्य आलोक है सरोवरों में जो सुषमा भरी सरसता दिखाई देती है ये उन्हीं के प्रेम भाव सरस होकर खिल उठे है। मेरी सुधि करके वे वन से इस ओर घूमे हैं इसी कारण से हंस उड़कर यहां छा गये हैं। भाव यह है कि ये जो उड़ते हुए हंस तुम्हें दिखाई दे रहे हैं, ये हंस नहीं हैं, वरन् उनकी इस ओर आती हुई गति है। सरोवरों में जो कमल फूले दिखाई देते है, जो खिले हुए बंधूक पुष्प दिखाई देते हैं, ये न तो कमल है और न ये बंधूक पुष्प हैं, वरन् मुझ विरहिणी का ध्यान करके मेरे प्रियतम निश्चय ही प्रसन्नता से मुस्करा उठे हैं और यह उनके नेत्रों की तथा अधरों की बिखरी हुई शोभा है। है शरद ऋतु! मैं तुम्हारा हार्दिक और उत्साहपूर्वक स्वागत करती हूँ। बड़े ही भाग्य से मुझे तुम्हारे दर्शन मिले है। तुम्हारे स्वागत में आकाश ओस-बिन्दुओं के रूप में तुम पर मोतियों को न्यौछावर करता है और मैं आँसुओं के रूप में तुम्हारे चरणों पर पूजा का जल चढ़ाती हॅू।

शब्दार्थ- निरख- देखो, खंजन- खंजन नामक पक्षी, मेरे रंजन- मेरे प्रियतम, आतप- 1. धूप, 2. आलोक, बंधूक- एक प्रकार का लाल फूल जिसकी तुलना होठों से की जाती है, वारे- न्यौछावर किए, अर्घ्य- पूजा जल।

विशेष-

1. प्रकृति में अपने प्रियतम की छाया देखना साहित्य की प्राचीन परम्परा है। इस परम्परा का पालन अनेक कवियों ने किया है। महादेवी भी मुस्काते आकाश में अपने प्रियतम की प्रसन्नता का रूप देखकर उनके आगमन की आशा से भर जाती है।
   "मुस्काता संकेत-भरा नभ
   अलि! क्या प्रिय आने वाले है?"
2. सम्पूर्ण गीत में अपह्नुति अलंकार का भावमय प्रयोग है।
3. 'अधर से ये बंधूक सुहाये', में अधरों की बंधूक पुष्पों से समानता वर्णित है । अतः उपमा अलंकार ।

7.'नभ ने मोती वारे' में केवल उपमान(मोती) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

मुझे फूल मत .... सिर पर धारो।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में वसन्त ऋतु में कामदेव के उद्दीप्त की प्रताड़ना करती हुई उर्मिला अपने अखंड पतिव्रता रूप का परिचय देती हुई कहती है-

व्याख्या- विरहिणी उर्मिला कामदेव को सम्बोधित करती हुई कहती है, कि है कामदेव! तुम मुझे अपने फूलों के बाण मत मारो, अर्थात् मेरे मन में काम-भावनाएं जगाकर मुझे पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न न करो। मैं शक्तिहीन नहीं हूँ, युवती होते हुए भी विरहिणी हॅू। अतः मेरी असहाय दशा देखकर

मुझ पर कुछ तो कृपा करो। तुम उस बसंत ऋतु के मित्र हो जो सबको सुख देती है, तुम स्वयं बुद्धिमान हो, इसलिए तुम्हें उचित-अनुचित का ज्ञान है। इसलिए मुझ पर भीषण विष न धोलों; अर्थात् मुझे तुम जो यह भयंकर यातना दे रहै हो, तुम्हारे लिए यह कार्य सभी दृष्टियों से अनुचित है। यदि फिर भी तुम मुझे दुख देते ही हो तो यह जान लो कि तुम मुझे व्यथित करने का जो प्रयत्न करोगे, तुम्हारा वह प्रयत्न असफल ही होगा। अतः अच्छा यही है कि ऐसे प्रयत्न के लिए जो श्रम तुम करो, उसे न करो। मैं कोई सांसारिक सुखों को भोगने की इच्छा रखने वाली नारी नहीं हॅू, जो तुम्हें अपना यह जाल फैलाने की आवश्यकता हो। कहने का भाव यह है कि तुम तो उन्हीं नारियों को दुःख देते हो, जो वासना के वशीभूत होती हैं। मैं तो वासना से बहुत दूर हं। अतः तुम्हें न तो मुझे पीड़ित करने का अधिकार ही है और न तुम मुझे पीड़ित ही कर सकते हो। इस पर भी यदि तुम स्वयं को शक्तिशाली समझते हो तो मेरे माथे पर लगे हुए इस सिंदूर के बिन्दु को शिव का तीसरा नेत्र समझो और समझ लो जिस प्रकार शिव के तीसरे नेत्र ने तुम्हंे भस्म कर दिया था, उसी प्रकार मेरा सिंदूर का बिन्दु भी तुम्हें भस्म कर देगा। है कामदेव! यदि तुम्हें अपने रूप का घमण्ड तो उसे मेरे पति के रूप पर न्यौछावर कर दो; अर्थात् मेरे पति तुमसे बहुत ही अधिक सुन्दर हैं। अतः मेरे चरणों की यह धूल लेकर उस रति के सिर पर डाल दो जो तुम्हारे भस्म होने पर भी जीवित रही और अपने रूप का गर्व करती रही। भाव यह है कि तुम्हारी पत्नी रति भी मेरे सामने बहुत ही तुच्छ है, क्योंकि तुम्हारे भस्म होने की उसने तनिक चिन्ता नहीं की, बल्कि वह अपने रूप यौवन पर इठलाती रही। उसने स्त्री धर्म को कलंकित किया, जबकि मैं स्त्री धर्मकी रक्षा के लिए पल-पल जल रही हॅू।

शब्दार्थ- अबला- शक्तिहीन नारी, मधु- वसंत ऋतु, मदन- कामदेव, गरल- विष, परिहारो- दूर करो, हरनेत्र- शिव का नेत्र, कंदर्प- कामदेव, रति- कामदेव की स्त्री।

विशेष-

1. यह माना जाता है कि कामदेव अपने पांच बाणों से, जो फूलों के होते हैं युवक-युवतियों को पीड़ित करते हैं। इसलिए कामदेव के पुष्पशर, पुष्पधन्वा, पंचशर आदि नाम भी हैं।
2. अपने तथा अपने पति के प्रति उर्मिला का आत्मगौरव एवं आत्मविश्वास इस छंद में स्पष्ट रूप से मुखरित है।
3. 'पटु-कटु' में समान स्वरों एवं व्यंजनों की आवृति होने से छेकानुप्रास अलंकार।
7. 'रूप-दर्प कंदर्प' में दर्प शब्द की सार्थक-निरर्थक आवृति होने से यमक अलंकार।

अभ्यास प्रश्न

1. साकेत का क्या तात्पर्य है?
2. साकेत में कुल कितने सर्ग हैं?
3. साकेत में मुख्य रूप से किसके विरह का वर्णन किया है?
7. साकेत खण्ड काव्य है या महाकाव्य?

5. साकेत की भाषा अवधि है या खड़ी बोली?

9.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के जीवन और उनकी कृतियों से परिचित हो चुके होंगे।
2. साकेत की संक्षिप्त कथावस्तु से परिचित हो चुके होंगे।
3. गुप्त की काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो चुके होंगे।
7. साकेत के महत्वपूर्ण सर्गों का आनन्द प्राप्त कर चुके होंगे।
5. साकेत की उर्मिला के विशिष्ट गुणों; चारित्रिक विशेषताओं एवं उसके वियोग की तीव्रता से आप परिचित हो चुके होंगे।

9.8 शब्दावली

जवाजल्यमान- चमकता, विषाद- दुःख, अनुप्राणित- जीवन्त करना, प्राण सिंचित करना, वैमनस्य- बैर-भाव, आधन्त- प्रारम्भ से अंत तक, उत्तरोतर- निरंतर, उद्बोधन- संबोधन, कुतुहल- आश्चर्य

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अयोध्या
2. 12 सर्ग
3. उर्मिला
7. महाकाव्य
5. खड़ी बोली

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, डॉ0 कमला कान्त पाठक
2. गुप्त जी की काव्यकला, डॉ0 त्रिलोचन पाण्डेय, आगरा
3. गुप्त जी की काव्यधारा, श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, प्रयाग
7. साकेत : एक अध्ययन, डॉ0 नगेन्द्र
5. साकेत सौरभ, श्री नगीन चन्द्र सहगत, दिल्ली
6. साकेत के नवम् सर्ग का काव्य वैभव, डॉ0 कन्हैयालाल, साहित्य सदन, झाँसी
7. गुप्त जी कृतियाँ, श्यामनन्दन प्रसाद सिंह, इलाहाबाद
8. मैथिलीशरण गुप्त, प्रो0 विनय कुमार, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
9. हिन्दी साहित्य- युग और प्रवृत्तियाँ, प्रो0 शिव कुमार शर्मा, दिल्ली
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
8. रामकाव्य की भूमिका, डॉ0 जगदीश प्रसाद शर्मा, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर
9. साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना
10. मैथिलीशरण गुप्त का काव्य, डॉ0 एल0 सुनीता

17. गुप्त जी की काव्य कला, डॉ0 सत्येन्द्र
15. मैथिलीशरण गुप्तः व्यक्ति और काव्य, डॉ0 पाठक
16. साकेतः मैथिलीशरण गुप्त

9.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त के जीवन और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?
2. महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों का निर्देश करते हुए साकेत के महाकाव्यत्व पर विचार कीजिए ? क्या आप उसे सफल महाकाव्य मानते हैं ?
3. साकेत के नवम् सर्ग के कला सौष्ठव पर विचार कीजिए ?
7. ‘साकेत की उर्मिला के विरह वर्णन में पुरातनता तथा नवीनता का सामंजस्य’ सिद्ध कीजिए ?

इकाई -10 स्वच्छंदतावादी हिन्दी कविता

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य

10.3 स्वच्छंदतावाद: अर्थ, स्वरूप और पृष्ठभूमि

- 10.3.1 स्वच्छंदतावाद का सामान्य परिचय
- 10.3.2 पाश्चात्य साहित्य में स्वच्छंदतावाद की अवधारणा
- 10.3.3 पाश्चात्य स्वच्छंदतावादी कवि एवं कविता
- 10.4.5 प्रमुख छायावादी रचनाकारों में स्वच्छंदतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ:

10.4 भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वच्छंदतावाद का विकास

- 10.4.1 हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद
- 10.4.2 स्वच्छंदतावादी हिन्दी कविता का उद्भव एवं विकास
- 10.4.3 विद्वानों के अनुसार स्वच्छंदतावाद की परिभाषा
- 10.4.4 हिन्दी साहित्य में स्वच्छंदतावादी कविता का विविध रूप
- 10.4.5 हिंदी कविता के स्वच्छंदतावादी कवि और कविता

10.5 स्वच्छंदतावादी हिन्दी कविता की प्रमुख विशेषताएँ
10.6 सारांश
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 निबंधात्मक प्रश्न
10.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री / संदर्भ ग्रंथ

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्वच्छंदतावादी हिन्दी कविता पर आधारित है। स्वच्छंदतावाद एक ऐसा वैश्विक साहित्यिक प्रवाह है, जिसकी छाप विश्व के विभिन्न साहित्यिक परिदृश्यों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। इस काव्यधारा के निर्माण में प्रथम स्थान पर 1789 की फ्रांसीसी क्रांति, द्वितीय स्थान पर जर्मनी की क्रांति, और तृतीय स्थान पर औद्योगिक क्रांति का विशेष योगदान रहा। इन क्रांतियों के प्रभाव से भौतिक वातावरण में व्यापक परिवर्तन आया। नई-नई मशीनों के निर्माण ने मनुष्य को बौद्धिक और तांत्रिक बना दिया। विज्ञान ने परंपरागत मान्यताओं को तोड़कर नई विचारधाराओं को जन्म दिया। इन तीनों तत्वों के संयुक्त प्रभाव से धीरे-धीरे स्वच्छंदतावाद की अवधारणा विकसित होने लगी।

18वीं सदी के प्रारंभ में जो काव्यगत बंधन और नियम प्रचलित थे, वे टूटने लगे। इसका प्रमुख प्रेरणा-स्रोत फ्रांसीसी क्रांति थी, जिसने स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व जैसे आदर्शों को समाज और साहित्य में प्रतिष्ठा दिलाई। अतीत का मोह समाप्त होने लगा और मनुष्य स्वतंत्र दृष्टि से वर्तमान की ओर देखने लगा।

नव्यशास्त्रवाद की नियमबद्धता, कृत्रिमता और आडंबरप्रियता की प्रतिक्रिया स्वरूप 19वीं सदी के आरंभ में रोमांटिक काव्यधारा का जन्म हुआ। इस धारा ने साहित्य को नियमों, आदर्शों और उद्देश्य-प्रधानता के बंधनों से मुक्त कर स्वच्छंदता प्रदान की तथा अनुकरण के स्थान पर आंतरिक प्रेरणा को महत्व दिया।

कुछ विद्वानों का मत है कि स्वच्छंदतावादी तत्व साहित्य में आदि काल से ही विद्यमान रहे हैं-चाहे वह वैदिक रचनाएँ हों या आधुनिक कविता। वहीं अन्य विद्वानों के अनुसार, यह एक निश्चित ऐतिहासिक परिघटना है, जिसका विकास सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों में हुआ।

यह साहित्यिक प्रवृत्ति क्लासिकी अनुशासन और बंधनों से मुक्त होकर मानवीय कल्पना, स्वभाव और संवेदना को केंद्र में लाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अंग्रेज़ी के *Romanticism* शब्द का हिन्दी रूपांतरण 'स्वच्छन्दतावाद' के रूप में किया।

अतः यह स्पष्ट होता है कि स्वच्छंदतावाद केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों की भी गहन अभिव्यक्ति है।

10.2 अध्ययन उद्देश्य

इस इकाई अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी:

1. स्वच्छंदतावाद की अवधारणा एवं उसका उद्भव और विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
2. पाश्चात्य एवं हिन्दी साहित्य में इसकी भूमिका को जान पाएंगे।
3. हिन्दी साहित्य में स्वच्छंदतावाद के ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे।
4. स्वच्छंदतावादी हिन्दी कविता की विशेषताएँ और कवियों का परिचय प्राप्त कर पाएंगे।
5. छायावादी कविता एवं स्वच्छंदतावादी कविता के अन्त अंतरसंबंधों को जान पाएंगें।

10.3 स्वच्छंदतावाद : अर्थ, स्वरूप और पृष्ठभूमि

स्वच्छंदतावाद' दो शब्दों से मिलकर बना है-

- 'स्वच्छंद' का अर्थ है- स्वतंत्र, बंधनहीन या अपनी इच्छा के अनुरूप
- वाद- किसी विचारधारा या प्रवृत्ति का सूचक
- स्वच्छंदतावाद' शब्द का अर्थ है-"स्वेच्छा से चलनेवाली प्रवृत्ति।" अर्थात, यह ऐसी काव्य-प्रवृत्ति है जो बंधनों से मुक्त होकर व्यक्ति की अंत:प्रवृत्तियों को प्रधानता देती है।
- यह कविता मन की स्वतन्त्रता और भावना की प्रधानता पर आधारित होती है। यह छायावादी काव्य चेतना की पूर्व पीठिका मानी गई है।
- 'रोमैण्टिसिज्म' शब्द की व्युत्पत्ति 'रोमांटिक' विशेषण से हुई है, जिसके प्राचीन फ्रांसीसी भाषा में (Rumontsch, Romance, Romanz) आदि रूप पाये जाते हैं। रोमैण्टिक शब्द को एक काव्य प्रवृत्ति अथवा वाद के रूप में सर्वप्रथम प्रयुक्त करने वाले जर्मन आलोचक फ्रेड्रिक श्लेगल (Friedrich Schlegel) थे जिन्होंने 1798-1800 के बीच में इस शब्द का प्रयोग 'क्लासिसिज़्म' के विरोधी अर्थों में किया। श्लेगल ने अपनी इस कृति में 'रोमांटिक' शब्द का प्रयोग निश्चित साहित्यिक प्रवृत्ति (Romanticism) के रूप में करके इसे सबसे पहले परिभाषित किया।

10.3.1 स्वच्छंदतावाद का सामान्य परिचय

स्वच्छन्दतावाद अंग्रेजी शब्द 'Romanticism' का हिन्दी अनुवाद है। यह शब्द फ्रांसीसी शब्द 'Romanz' (रोमाज या रोमांस) से लिया गया है। स्वच्छन्दतावादी धारा एक सामान्य प्रवृति है। यह किसी भी काल समय में उत्पन्न हो सकती है। स्वच्छन्दतावाद को किसी ने बुद्धि के विरुद्ध भाव का विद्रोह कहा तो किसी ने उसे मध्ययुगीन पुनर्जागरण कहा। परन्तु इसका अर्थ हमेशा बदलता रहा है। 17वीं शताब्दी में इसका अर्थ किया गया था -काल्पनिक और असत्य। 19वीं शताब्दी में इसके अर्थ में पुनः परिवर्तन हुआ और जर्मनी में इसका प्रयोग उपन्यास के अर्थ में होने लगा। आगे चल कर इस शब्द का प्रयोग प्राकृतिक दृश्यों के अर्थ में होने लगा | साहित्यिक रूप में इसका सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस में हुआ। फ्रांस की राज्य क्रांति के बाद यह शब्द विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों का सूचक बन गया। अब इसका अर्थ हो गया -"काव्य की मुक्त एवं स्वछंद अभिव्यक्ति प्रणाली।"

10.3.2 पाश्चात्य साहित्य में स्वच्छंदतावाद की अवधारणा

स्वच्छंदतावाद एक ऐसा विचार है जिसने अट्ठारहवीं सदी से अब तक दर्शन, राजनीति, कला, साहित्य और संगीत को गहराई से प्रभावित किया है। यह विचार व्यक्तिगत स्वतंत्रता, भावनाओं, प्रकृति, विविधता और आत्मअभिव्यक्ति को प्राथमिकता देता है-, और नियम, यांत्रिकता, औसतपन व परंपराओं का विरोध करता है। स्वच्छंदतावाद का उद्भव पाश्चात्य देशों में सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक बदलावों के चलते हुआ।

फ्रांसीसी क्रांति (आजादी, समानता, भाईचारा) ने स्वच्छंदतावाद को गहरी प्रेरणा दी। इसके बौद्धिक नायक रूसो ने सभ्यता को मानवता के भ्रष्ट होने का कारण बताया और प्रकृति की ओर लौटने का संदेश दिया। उनकी रचनाएँ *ज्यूली* और *कन्फेशंस* स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण का उदाहरण हैं। इसके प्रभाव से यूरोप में एक नया साहित्यिक आंदोलन जन्मा, जिसमें ब्लैक, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, बायरन, शैली और कीट्स जैसे रचनाकार शामिल हुए।

स्वच्छन्दतावाद, काव्य सिद्धांत आधुनिक युग की देन है। जैसा की पूर्व में बताया गया कि स्वच्छन्दतावाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1972 में जर्मन आलोचक श्लेगर ने किया। स्वच्छंदतावाद काव्य की लहर सबसे पहले इंग्लैंड और जर्मनी में 18 वीं शताब्दी के अंतिम दशक से 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक के मध्य देखी गई। वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, बायरन, कीट्स जैसे कवियों ने इसकी आधारशिला रखी। इसने सिर्फ कविता ही नहीं, बल्कि आलोचना को भी प्रभावित किया। इंग्लैंड में इस आंदोलन की शुरुआत रॉबर्ट बर्न्स और विलियम ब्लेक ने की। परंतु इसका वास्तविक सूत्रपात वर्ड्सवर्थ की काव्य-पुस्तक *Lyrical Ballads* (1798) से माना जाता है।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में एक नवीन साहित्यिक धारा का उद्भव हुआ, जिसे स्वच्छंदतावाद (Romanticism) कहा गया। यह एक साहित्यिक एवं दार्शनिक आंदोलन था, जिसकी प्रेरणा का प्रमुख स्रोत फ्रांसीसी राज्य क्रांति रही।

फ्रांस की 1789 की राज्य क्रांति ने साहित्य और दर्शन में एक नवीन चेतना का संचार किया। यह क्रांति तीन स्वरूपों में अभिव्यक्त हुई—
(1) सैद्धांतिक स्वरूप,
(2) राजनैतिक स्वरूप, और
(3) सैन्य स्वरूप

इसके सैद्धांतिक पक्ष से रूसो और वाल्टेयर जैसे विचारक जुड़े थे। रूसो ने मानव प्रकृति की मूल प्रवृत्तियों को श्रेष्ठ माना, जबकि समाज की कृत्रिमता, विलासिता और वैभव-लिप्सा को पतन का कारण बताया। उन्होंने सुझाव दिया कि मनुष्य को रोगग्रस्त सामाजिक ढाँचे से मुक्ति पाने के लिए प्रकृति के सहज सौंदर्य जैसे पर्वतों, चारागाहों आदि -की ओर लौटना चाहिए।

रूसो के इन विचारों का विशेष प्रभाव अंग्रेज़ी काव्य पर पड़ा। वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज जैसे कवियों को स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का प्रमुख प्रतिनिधि माना जाता है। इस आंदोलन ने काव्य को रूढ़ियों और बंधनों से मुक्त कर आत्माभिव्यक्ति, प्रकृति-प्रेम, मानवीय भावनाओं और सामाजिक सरोकारों से जोड़ा। कांट का मानना था कि जब तक व्यक्ति स्वतंत्र नहीं होता, वह अपने कर्मों की नैतिक ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता। यह विचार स्वच्छंदतावादी काव्य की आत्मकेंद्रितता और स्वतंत्र चेतना के मूल में विद्यमान है।

- राजनैतिक दृष्टि से, 1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने "स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व" जैसे आदर्शों के माध्यम से इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया।
- सामाजिक रूप से, यह सामंती व्यवस्था के पतन और पूंजीवाद के उदय की प्रतिक्रिया थी।
- साहित्यिक रूप से, यह नवशास्त्रवाद और क्लासिसिज्म के बंधनों से विद्रोह था।

फ्रांस की क्रांति ने पूरे यूरोप को झकझोर दिया, जिससे लोगों में स्वतंत्रता की भावना जागी। कवियों ने परंपरागत नियमों को त्यागकर स्वतंत्र रूप से कविता लिखनी शुरू की। वे केवल राजनीतिक और सामाजिक अत्याचारों के विरुद्ध ही नहीं थे, बल्कि नीति, धर्म, साहित्य और शास्त्रीय परंपराओं के भी विरोधी थे। इससे साहित्य और जीवन के हर क्षेत्र में बदलाव आया। भारत में इसका प्रभाव सर्वप्रथम बांग्ला साहित्य पर पड़ा और वहाँ से हिंदी में यह प्रवृत्ति 20वीं

शताब्दी के दूसरे दशक में आई, जिसे हम 'छायावाद' के रूप में पहचानते हैं। छायावाद और स्वच्छंदतावाद में गहरा संबंध है।

10.3.3 पाश्चात्य स्वच्छंदतावादी कवि एवं कविता

18वीं शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य में शास्त्रीय नियमों का प्रभाव था, जिससे काव्य में स्वाभाविकता दब गई। इसी के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छंदतावाद की उत्पत्ति हुई।

रूसो ने कहा – "प्रकृति की ओर लौटो।" (Back to Nature)

रूसो स्वच्छंदतावादी विचारधारा के प्रमुख प्रवक्ता थे। उन्होंने मानव की स्वतंत्रता, आत्म-अभिव्यक्ति, और प्रकृति से जुड़ाव का संदेश दिया। उनका मानना था कि मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है, लेकिन समाज ने उसे कृत्रिम बंधनों में बांध दिया है। इसलिए उन्होंने स्वाभाविक और नैसर्गिक जीवन की ओर लौटने की प्रेरणा दी।

स्वच्छंदतावाद यूरोप में विशेषतः वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, बायरन, कीट्स (Wordsworth, Byron, Shelley, Keats) जैसे कवियों के माध्यम से फैला। इस आंदोलन में प्राकृतिक सौंदर्य, मानवीय भावनाएँ, और विवेक से अधिक भावना को महत्व दिया गया।

पाश्चात्य कविता के कवि

- विलियम वर्ड्सवर्थ (William Wordsworth) इनको प्रकृति और बालमन का कवि कहा गया है। उन्होंने प्रकृति को शिक्षक, मित्र और मार्गदर्शक माना। उनका कथन- “Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings: it takes its origin from emotion recollected in tranquility.”(काव्य तीव्र भावनाओं का सहज प्रवाह है, जिसकी उत्पत्ति शांत चित्त् में स्मरण की गयी भावना से होती है)
- सैमुअल टेलर कोलरिज)Samuel Taylor Coleridge) – कल्पना के कवि। Wordsworth के साथ मिलकर उन्होंने *Lyrical Ballads* (1798) की रचना की, जिसे स्वच्छंदतावादी काव्य का प्रारंभिक ग्रंथ माना जाता है।
- लॉर्ड बायरन (Lord Byron) – वे विद्रोही स्वभाव के थे। उन्होंने समाज, धर्म और परंपराओं के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उनकी कविताओं में आत्मसंघर्ष, स्वतंत्रता और प्रेम की तीव्र अभिव्यक्ति मिलती है।

- परसी बिश शेली (Percy Bysshe Shelley – वे क्रांतिकारी कवि थे। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं की आलोचना की और मानवता, प्रेम और स्वतंत्रता को उच्च मूल्य माना।
- जॉन कीट्स (John Keats – उन्होंने सौंदर्य और कल्पना को सर्वोच्च माना। उनका कथन है –
  "A thing of beauty is a joy forever." वे सौंदर्य के शाश्वत मूल्य में विश्वास करते थे।

10.4 भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वच्छंदतावाद का विकास

भारत में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आई। वास्तव में, स्वच्छंदतावाद ने ही आगे चलकर छायावाद की नींव रखी।

यद्यपि भारतीय स्वच्छंदतावाद की जड़ें पश्चिमी स्वच्छंदतावाद से जुड़ी हैं, फिर भी उसमें कुछ भिन्न चिंतन और भावनात्मक स्वर दिखाई देते हैं। मूल प्रवृत्तियों में यह पश्चिम से मेल खाता है, लेकिन भारत के सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवेश के कारण इसकी अभिव्यक्ति अलग रूप में हुई।

जहाँ पश्चिम में समस्या थी- मशीनीकरण और औद्योगीकरण से उत्पन्न विकृतियाँ, वहीं भारत की चुनौतियाँ थीं-

- राष्ट्रीय पराधीनता,
- सामाजिक रूढ़ियाँ,
- तथा सांस्कृतिक दमन।

भाषा के स्तर पर भी अंतर था। यहाँ समस्या स्वाभाविकता की नहीं, बल्कि यह थी कि नए भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए एक नई भाषा शैली और संरचना की आवश्यकता थी। भारतीय स्वच्छंदतावाद ने इन सभी स्तरों पर प्रतिक्रिया और विद्रोह करते हुए साहित्य में नई दृष्टि और सृजनात्मक चेतना की स्थापना की।

10.4.1 हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद

स्वच्छंदतावाद हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण काव्य प्रवृत्ति है, जिसे अंग्रेज़ी साहित्य की *Romanticism* धारा का हिंदी रूपांतरण माना जाता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हिन्दी विद्वानों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पहले पहल अपनी कृति *हिंदी साहित्य का इतिहास* में किया, जहाँ उन्होंने द्विवेदी युग के कवि 'पंडित श्रीधर पाठक' को स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का प्रवर्तक बताया। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार, पूर्वी यूरोप में स्वच्छंदतावाद का जन्म सामंतवाद और विदेशी शासन के विरोध के रूप में हुआ था। हिंदी का स्वच्छंदतावाद अंग्रेज़ी साहित्य के रोमैंटिसिज़्म से नहीं, बल्कि पूर्वी यूरोप के उस स्वच्छंदतावाद से प्रेरित है, जो स्वतंत्रता, व्यक्तिगत अनुभूति और प्रकृति की ओर उन्मुख था। भारतीय साहित्य में इसका प्रवेश सर्वप्रथम बांग्ला साहित्य के माध्यम से हुआ। यद्यपि भारत में यह आंदोलन बांग्ला साहित्य के माध्यम से प्रविष्ट हुआ, जहाँ माइकेल मधुसूदन दत्त के साहित्य में इसकी प्रारंभिक झलक मिलती है। बाद में यह मराठी, उर्दू, तमिल, कन्नड़, और अंततः हिंदी साहित्य में प्रमुखता से प्रकट हुआ। हालांकि विभिन्न भाषाओं में इसे अलग-अलग नामों से जाना गया—जैसे मलयालम में "कल्पनाप्रधान काव्य", तेलुगु में "भावकविता", तो हिंदी और बांग्ला में इसे "स्वच्छंदतावाद" कहा गया।

हिंदी में यह आंदोलन केवल साहित्यिक न रहकर सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्ष का भी प्रतीक बना, जिसमें राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष और भाषा के आधुनिक स्वरूप की स्थापना जैसी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

जहाँ पश्चिम में यह आंदोलन मशीन युग और सामाजिक जड़ताओं के विरोध का स्वर था, वहीं भारत में इसका स्वरूप राष्ट्रीय पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ। इस प्रवृत्ति ने पहली बार साहित्य में व्यक्तिवाद, यथार्थबोध और स्वच्छंद चिंतन की प्रतिष्ठा की।

- स्वच्छंदतावाद का जन्म उस समय हुआ जब सामंती समाज खत्म हो रहा था और औद्योगिक विकास से पूंजीवाद आ रहा था।
- 1789 की फ्रांसीसी क्रांति (स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व) ने इस आंदोलन को ताकत दी।
- छायावाद से इसके संबंध को प्रारंभ में विरोधात्मक माना गया, किन्तु समकालीन आलोचना यह स्वीकार करती है कि छायावाद वस्तुतः स्वच्छंदतावाद का परिष्कृत और विकसित रूप है।

10.4.2 विद्वानों के अनुसार स्वच्छंदतावाद की परिभाषा

1- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार
आचार्य शुक्ल ने *हिंदी साहित्य का इतिहास* में सबसे पहले स्वच्छंदतावाद का संकेत दिया। उनके अनुसार यह वह भावधारा है, जिसमें जनता अपने स्वाभाविक और नैसर्गिक भावों को प्रकट करती है। जब काव्य परंपरा कृत्रिम हो जाती है, तब इसे फिर से प्रकृति और सहज अनुभूति की ओर लौटना होता है। यही स्वच्छंदता का वास्तविक स्वरूप है।

2- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-
उनका कहना है कि अंग्रेज़ी साहित्य में जो भावनाओं, आत्मानुभूति और कल्पना से भरपूर काव्यधारा प्रवाहित हुई, उसे हिंदी में "स्वच्छन्दतावाद" कहा गया। परंतु उनका मानना था कि यह नाम उस संपूर्ण भावधारा को व्यक्त नहीं कर पाता। वे इसे जीवन की भीतर से उठने वाली ऊर्जा और दृष्टि से प्रेरित मानते हैं, न कि केवल विद्रोह से।

3- पं. नंददुलारे वाजपेयी का मत
वाजपेयी जी ने स्वच्छंदतावाद को स्वतंत्रता की भावना और बंधनों के निषेध से जोड़कर देखा। उनके अनुसार यह धारा भावना के अतिरेक, कल्पना की उड़ान और नियमों की अवहेलना की ओर संकेत करती है। यह परंपरा की बजाय कल्पना और अनन्त की ओर झुकती है। उन्होंने इसे रहस्यवाद से भिन्न बताया।

4- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- स्वच्छंदतावाद का तात्पर्य है सामाजिक बंधनों को तोड़कर स्वतंत्रता से जीने की लालसा। वे मानते हैं कि रहस्यवाद, स्वच्छंदतावाद और छायावाद एक साथ विकसित हुए, लेकिन भारत की परिस्थितियाँ पाश्चात्य से भिन्न होने के कारण यह आंदोलन यहाँ पूरी तरह विकसित नहीं हो सका।

5- डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार-“पश्चिम में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जो विशाल सृजन-आंदोलन पुराने रीतिवाद के बंधनों को तोड़कर उठा, उसी की भारतीय भाषाओं में बीसवीं शताब्दी में पुनरावृत्ति हुई, जिसे स्वच्छंदतावाद नाम दिया गया।”

6- डॉ. अमरनाथ के अनुसार- "छायावाद और स्वच्छंदतावाद में गहरा साम्य है—प्रकृति प्रेम, आत्माभिव्यक्ति, रहस्य भावना, प्रतीक योजना आदि दोनों में समान रूप से विद्यमान हैं।"

10.4.3 स्वच्छंदतावादी हिन्दी कविता का उद्भव एवं विकास

स्वच्छंदतावाद की एक क्षीण धारा भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों की कविताओं, निबंधों, उपन्यासों एवं नाटकों में परिलक्षित होती है। भारतेन्दु ने पहले ही यह उद्घोष किया था- *"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।"* इस स्वर को पुनर्जागरण युग में महावीर

प्रसाद द्विवेदी ने गंभीरता से ग्रहण किया और साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की। इस युग में अतीत को समसामयिक सामाजिक संदर्भों में देखा गया। मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में परंपरा और समकालीनता का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। उनकी भाषा में स्पष्टता, सहजता और भावनात्मक गहराई है, जो स्वच्छंदतावाद की पूर्व-चेतना से जुड़ती है।

इसी युग में अनुभूतिमूलक साहित्यधारा भी विकसित हुई। श्रीधर पाठक-, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, बालमुकुन्द गुप्त इसके प्रमुख प्रवर्तक थे। उनकी रचनाओं में प्रकृतिचित्रण-, कल्पनाशीलता तथा अतीत के प्रति आकर्षण के तत्व प्रमुखता से उपस्थित हैं।

हिंदी में स्वच्छंदतावाद की जड़ें भारतेंदु युग में भी देखी गयी हैं, जहाँ गद्य में यद्यपि नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही थीं, परंतु काव्य अब भी ब्रजभाषा की परंपरा से बंधा था। आचार्य शुक्ल ने श्रीधर पाठक को हिंदी स्वच्छंदतावाद का प्रारंभिक कवि माना, और उनके बाद रायदेवीप्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, माखनलाल चतुर्वेदी, बच्चन, नरेंद्र शर्मा, अंचल आदि ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

इन कवियों में भी भिन्न-भिन्न प्रभाव देखने को मिलते हैं। प्रसाद का काव्य विशुद्ध भारतीय परंपरा से प्रभावित है, जबकि पंत और निराला पर अंग्रेजी एवं बांग्ला साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है। फिर भी, निराला ने हिंदी कविता में जिस स्तर के प्रयोग प्रस्तुत किये, वे अद्वितीय हैं । स्वच्छंदतावाद और छायावाद की प्रवृत्तियों को लेकर साहित्य जगत में लंबे समय से मतभेद हैं।

छायावाद का आरंभ 1920 के आसपास माना जाता है। मुकुटधर पांडेय ने *श्री शारदा* पत्रिका में छायावाद पर लेखमाला प्रकाशित की, जिसमें इसे *मिस्टिसिज्म* से जोड़ा। उन्होंने कवि-स्वातंत्र्य और सूक्ष्म अनुभूति की महत्ता बताई। छायावादी कवि वस्तुओं को विशेष दृष्टि से देखता है, जिससे रचना संकेतात्मक और भावप्रधान बनती है। छायावाद, स्वच्छंदतावाद का परिष्कृत रूप है, जहाँ वैयक्तिक अनुभूति, कल्पना, रहस्यवाद और सौंदर्य-बोध अधिक गहराई से व्यक्त होते हैं।

10.4.4 हिन्दी साहित्य में स्वच्छंदतावादी कविता का विविध रूप

- 18 वीं सदी के अंत और 19 वीं सदी के शुरू में जर्मन स्वच्छंदतावाद और भारतीय स्वच्छंदतावाद आपस में किस तरह संबंधित है यह जानना आवश्यक है। स्वच्छंदतावादी आंदोलन जर्मनी में उस समय शुरू हुआ, जब फ्रांस में क्रांति हो चुकी

थी और नेपोलियन ने जर्मनी को हरा दिया था। स्वच्छन्दतावाद का उदय ऐसे समय हुआ जब कई देशों में सामान्य नागरिक जीवन और सामाजिक ढाँचा संकट में था।

जर्मन स्वच्छन्दतावाद

- जर्मनी में यह आंदोलन उस समय आरंभ हुआ जब फ्रांस की क्रांति हो चुकी थी और नेपोलियन ने जर्मनी को हराया था।
- समाज अर्द्ध-सामंती था और पूंजीवाद पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था।
- आधुनिकता एवं औद्योगिक पूंजीवाद का विकास नागरिकों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्म-अभिव्यक्ति की भावना जाग रही थी, पर कोई बड़ा जनांदोलन नहीं था।

भारतीय स्वच्छन्दतावाद

- भारत में रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे लेखकों ने इस धारा को अपनाया। यहाँ भी समाज में अर्द्ध-सामंती ढांचा था और किसान-विद्रोह तथा औपनिवेशिक दमन का प्रभाव था।
- भारत में जब रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वच्छन्दतावादी लेखन शुरू किया, तो उसकी विशेषता यहाँ के किसान-विद्रोह और औपनिवेशिक संघर्ष एवं नवीन राष्ट्रवाद के उदय में निहित थी, इसी कारण भारतीय स्वच्छन्दतावाद, अंग्रेज़ी और जर्मन से अलग, रूसी स्वच्छन्दतावाद से ज्यादा मिलता-जुलता है।

इन सभी देशों में स्वच्छन्दतावाद का जन्म ऐसे माहौल में हुआ जहाँ न तो पूरा पूँजीवाद था और न ही मजबूत मजदूर आन्दोलन।

जर्मन और भारतीय स्वच्छन्दतावाद में समानता

- दोनों का जन्म ऐसे समय में हुआ जब समाज संकट में था और जनता संगठित नहीं थी।
- दोनों में व्यक्तिगत संवेदना, प्रकृति-प्रेम, और स्वतंत्रता की आकांक्षा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।
- मजबूत मजदूर आंदोलन स्पष्ट पूंजीवादी ढाँचा, दोनों ही स्थानों पर अपनी प्राथमिक अवस्था में था।

भारतीय साहित्य में स्वच्छंदतावाद के विविध रूप है। भारत में रोमांटिक आंदोलन (स्वच्छंदतावाद) के संदर्भ में यह कहा जाता है कि यहाँ कोई एकमात्र स्वच्छंदतावाद नहीं था। बांग्ला, हिंदी, उर्दू, पंजाबी, मराठी और मलयालम जैसी भाषाओं में स्वच्छंदतावाद की विभिन्न धाराएँ विकसित हुईं।

परंतु समूचे भारतीय स्वच्छंदतावाद को प्रेरित और प्रभावित करने वाले प्रमुख व्यक्तित्व रवीन्द्रनाथ ठाकुर (टैगोर) रहे।

- रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 19वीं सदी में कविता लेखन आरंभ किया। उनकी कविता में व्यक्ति की स्वाययत्ता व्यक्तिगत स्वतंत्रता, नए भाव क्षितिजों की खोज, प्रकृति से सह संबंध और व्यक्ति एवं समाज के सौन्दर्यपूर्ण संबंध की छाप अपनी मौलिकता में भारतीय साहित्य के लिए प्रेरणा का कार्य करने लगी। हिन्दी साहित्य भी इस प्रेरणा से अछूता नहीं रहा।
- हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का संबंध 1920 से 1936-38 तक के कालखंड से माना जाता है, जो विशेष रूप से गांधीजी के नेतृत्व में चले स्वतंत्रता संग्राम और सत्याग्रह आंदोलन से जुड़ा हुआ था।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भारत में स्वच्छंदतावाद का प्रारंभ 19वीं सदी के अंतिम दशकों में ही हो चुका था।
रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं को इस प्रवृत्ति की आधारशिला माना जाता है।

उनकी पहली प्रसिद्ध कविता 'निझीरेर स्वप्नभंगो' (निर्झर के स्वप्न का टूटना) वर्ष 1882 में लिखी गई, जो उनके काव्य-संग्रह 'प्रभात संगीत' में प्रकाशित हुई।
इस संग्रह में पहली बार स्वतंत्रता का उद्घोष —
"भांगो, भांगो, भांगो कारा" (तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो बंधनों को) का स्वर सुनाई देता है।

भारतीय स्वच्छंदतावाद केवल राष्ट्रीय स्वतंत्रता का पक्षधर नहीं था, बल्कि उसने जागीरदारी और साम्राज्यवाद, दोनों का विरोध किया।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और स्वच्छंद चेतना

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता 'बादल राग' में किसान की व्यथा और विद्रोह की भावना दिखाई देती है:

"रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष
अंगना अंग लिपटे भी आतंक
अंक पर काँप रहे हैं धनी,
वज्र गर्जन के बादल त्रस्त
नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लव के वीर!"

निराला ने रवीन्द्रनाथ टैगोर को बांग्ला में पढ़ा और उन पर एक पुस्तक लिखी। टैगोर के विचारों का प्रभाव उनके स्वच्छंदतावाद में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

10.4.5 स्वच्छंदतावादी हिंदी कवि और कविता

श्रीधर पाठक (1856–1928)

रीतिकाल की कविता छंद, रस और अलंकारों के पुराने नियमों में बंधी थी, जिसे भारतेंदु युग भी नहीं बदल सका। काव्यक्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वछदतावाद(रोमैन्टिक) का आभास कराने वाले पं श्रीधर पाठक पहले कवि थे। इस पथ पर चलने वाले दिवतीय रामनरेश त्रिपाठी थें, जिन्होंने प्राकृतिक चित्रण, ग्राम्य लय और रहस्यभावना को कविता में लाकर छायावादी प्रवृत्तियों की शुरुआत की। इसलिए उन्हें इस नई धारा का प्रवर्तक माना जाता है। श्रीधर पाठक की रचनाओं को अनूदित और मौलिक दो श्रेणियों में बांटा गया है।

1. अनूदित काव्य
2. मौलिक काव्य

अनूदित काव्यों में उन्होंने ग्रे की शेफर्ड एण्ड फिलासफर पुस्तक का गड़रिये और दार्शनिक शास्त्री नाम से अनुवाद किया। गोल्डस्मिथ के तीन काव्यों हरमिट, ट्रेवलर और डेजर्टेड विलेज को बाद में अनूदित किया गया। हरमिट का एकान्तवासी योगी, खड़ी बोली में उल्लेख किया , ट्रेवलर का श्रान्त पथिक और ड्रेजर्टेड विलेज का ऊजड़ग्राम के नाम से अनुवाद किया। कालिदास के ऋतुसंहार के प्रथम तीन सर्गों का अनुवाद ब्रजभाषा में किया गया है। उनकी मौलिक कृति 'जगत सचाई सार' जिसमें उन्होंने कहा- जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा,समझो बच्चा इसका भेद’। इसके अलावा उनकी रचनाओं में निम्न है।

अनूदित रचनाएँ:

- *गड़रिये और दार्शनिक शास्त्री* – ग्रे की पुस्तक का अनुवाद
- *एकान्तवासी योगी*, *श्रान्त पथिक*, *ऊजड़ ग्राम* – गोल्डस्मिथ की कविताओं के अनुवाद
- *ऋतुसंहार* (कालिदास) – पहले तीन सर्गों का ब्रजभाषा में अनुवाद
- *इजावियला* – कीट्स की *इजाबेला* का भावानुवाद

मौलिक रचनाएँ:

- *जगत सचाई सार* – 51 पदों की कविता, जीवन की सार्थकता पर चिंतन
- *कश्मीर सुषमा* – प्रकृति का गहरा और आत्मीय चित्रण
- *भारतगीत* – फुटकर गीतों का संग्रह
- अन्य रचनाएँ – *मनोविनोद*, *धनविजय*, *वनाष्टक*, *देहरादून*, *स्वर्गीय वीणा* आदि

रामनरेश त्रिपाठी (1886–1963)

रामनरेश त्रिपाठी हिंदी साहित्य में उस समय के कवि हैं जो द्विवेदी युग की इतिहासपरकता और छायावाद की आत्मनिष्ठता के बीच की कड़ी माने जाते हैं। उन्होंने देशभक्ति को केवल भावुकता या देश की दुर्दशा का वर्णन भर नहीं बनाया, बल्कि उसे अनुभव और आत्मीयता से जोड़ा।

उनके तीन प्रमुख खंडकाव्य हैं-'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न'।

- 'मिलन' में देशभ्रमण के माध्यम से देशप्रेम का भाव विकसित होता है।
- 'पथिक' में एकतंत्र से मुक्ति के लिए बलिदान की बात की गई है, हालांकि यह गांधीजी के विचारों से प्रभावित होकर कुछ उपदेशात्मक हो गया है।
- 'स्वप्न' में आक्रमणकारियों से देश की रक्षा की गाथा कही गई है, जो ज्यादा भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक बन पड़ी है।

इन तीनों रचनाओं में त्रिपाठी जी ने लोकतंत्र को खतरे में डालने वाली तीन शक्तियों की ओर ध्यान खींचा—विदेशी शासन, तानाशाही और बाहरी आक्रमण। त्रिपाठी जी मानते थे कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण का असली भार युवाओं पर ही होता है। उनकी रचनाओं में केवल पराधीनता का दुख नहीं है, बल्कि अपने स्वाभिमान और अधिकारबोध का स्पष्ट संदेश भी है। 'पथिक' काव्य में इसी भाव को रेखांकित किया गया है।

तुम अपने सुख के प्रबन्ध के हो न पूर्ण अधिकारी।

यह मनुष्यता पर कलंक है प्रिय बन्धु, तुम्हारी॥

पराधीन रहकर अपना सुख शोक न कह सकता है।

यह अपमान जगत् में केवल पशु ही सह सकता है।

रामनरेश त्रिपाठी की नवीन काव्य प्रवृत्ति को मुकुटधर पाण्डेय ने आगे बढ़ाया।

मुकुटधर पाण्डेय (1865 ई.)

इन्होंने 1911-12 के आसपास खड़ीबोली में कविता लेखन प्रारंभ किया, जब नवीन काव्य के लिए पर्याप्त मार्ग प्रशस्त हो चुका था। पाण्डेय की प्रारंभिक रचनाएँ विषयप्रधान थीं, परंतु इन्दु (1914) में प्रकाशित कविता *'पंथी'* में आत्मानुभूति की प्रमुखता दिखती है, जिसमें भावी जीवन को लेकर नैराश्य और कर्म के प्रति जागरूकता अभिव्यक्त हुई है। *प्रेमबन्धन* (1913) और *आँसू* (1916) जैसी रचनाओं में प्रेम को आत्मसमर्पण और उच्चतर भावना से जोड़ा गया है। उनकी कविता में भ्रमर की गूंज, नदियों की कलकल, तथा गिरिनभ के आलिंगन में प्रेम की प्रतिध्वनि, उस भाव-व्यापकता की पूर्वछवि है जो आगे चलकर छायावादी काव्य में विकसित होती है। पाण्डेय की रचनाओं में निस्सीम प्रेम, अद्वैत भावना और अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा की स्पष्ट झलक मिलती है। *विश्वबोध* और *नमक की डली* जैसी रचनाएँ इस प्रवृत्ति का प्रमाण हैं। कवि की प्रकृति के साथ भावात्मक तादात्म्य निम्न पंक्तियों में प्रत्यक्ष है—

"जब मध्याह्न पवन ने आकर, तप्त किया जलथल आकाश।
पाया मैंने उसमें तेरे, व्यथित हृदय का खर विश्वास॥
कलनिनादिनी तटिनी ने भी, संध्या को हो भ्रांत महान।
पहुँचाया मेरे कानों तक, विरह वेदना का तब गान॥"

अर्थ- दोपहर की गर्म लू केवल प्रकृति को ही नहीं, बल्कि कवि के मन को भी झुलसा रही है। यह उसे अपनी प्रिय की पीड़ा और दुःख का तीव्र अनुभव कराती है। संध्या में नदी की कल-कल ध्वनि भी कवि को विरह-गीत जैसी लगती है, मानो प्रकृति भी उसकी प्रेम-वेदना में सहभागी हो।

मुकुटधर पाण्डेय छायावाद के प्रवर्तक माने जाते हैं, जिनकी काव्य-विशेषताएँ छायावाद से सीधे जुड़ी हैं, जबकि रूपनारायण पाण्डेय मूलतः स्वच्छन्दतावादी कवि हैं। व्यापक अर्थ में सुभद्रा कुमारी चौहान, गुरुभक्त सिंह, गोपालशरण सिंह आदि को इसी धारा के अन्तर्गत है।

सरस्वती के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गद्य पद्य की-भाषा को समृद्ध किया। उन्होंने ज्ञानराशी के संचित कोश ही का नाम साहित्य बताया'।'

हिंदी कविता का प्रारंभिक स्वर राष्ट्रभावना, सामाजिक चेतना और नैतिकता पर केंद्रित था, जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध की रचनाओं में देखा जा सकता है। किंतु बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में युवाकवियों ने आत्मानुभूति और भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति को महत्व देना प्रारंभ किया, जो पाश्चात्य स्वच्छंदतावाद से प्रेरित था।

10.4.5 प्रमुख छायावादी रचनाकारों में स्वच्छंदतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ:

1- जयशंकर प्रसाद-

उनकी प्रारंभिक काव्य-कृतियाँ जैसे *कानन कुसुम*, *झरना*, आदि में स्वच्छंदतावादी भावों की प्रमुखता है। वे कल्पनाशीलता, भावुकता और प्रकृति-प्रेम से युक्त कवि रहे।

2- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला':

- यद्यपि वे छायावाद के प्रमुख कवि माने जाते हैं, परंतु उनकी अनेक रचनाओं में *व्यक्तिगत पीड़ा*, *क्रांति की भावना*, और *मुक्त अभिव्यक्ति* की चेतना मिलती है।
- उनका विद्रोही स्वभाव और छंदों से मुक्ति की आकांक्षा स्वच्छंदता का ही परिचायक है।

3- सुमित्रानंदन पंत:

- उनकी आरंभिक कविताओं में प्रकृति-प्रेम, कल्पनाशीलता, सौंदर्यानुभूति और कोमल भावनाओं की प्रधानता मिलती है।
- 'पल्लव' संग्रह की कुछ कविताएँ पूर्णतः स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं।

4- मैथिलीशरण गुप्त:

- यद्यपि वे *खड़ी बोली के महाकवि* के रूप में जाने जाते हैं और उन्होंने राष्ट्रीयता को अपनी रचनाओं में स्थान दिया, परंतु कुछ प्रारंभिक रचनाओं में व्यक्ति की संवेदना और करुणा की झलक मिलती है, जो स्वच्छंदतावाद की ओर संकेत करती है।

5-महादेवी वर्मा (1907–1987):

- यद्यपि वे मुख्यतः छायावादी कवयित्री मानी जाती हैं, पर उनकी गहन भावुकता, आत्मसंवाद और आत्म-चेतना में स्वच्छंदतावादी झलक मिलती है।

स्वच्छंदतावाद का महत्व और छायावाद से संबंध-

स्वच्छंदतावाद छायावाद की पूर्वपीठिका है। दोनों में कल्पना, भावुकता और व्यक्तिवाद की प्रमुखता है, लेकिन छायावाद में रहस्यवाद और दर्शन अधिक है।

- यह आंदोलन *छायावाद* की भूमिका बना। छायावाद में जो आत्मनिष्ठता, प्रकृति-प्रेम, भावुकता और प्रतीकात्मकता मिलती है, उसकी बुनियाद स्वच्छंदतावाद ने रखी।
- इसने हिंदी कविता को *बाह्य समाज से अंतर जगत* की ओर मोड़ा।
- कविता केवल सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम न रहकर *कविके निजी अनुभवों और भावनाओं* की अभिव्यक्ति बन गई।

10.5 स्वच्छंदतावादी हिन्दी कविता की प्रमुख विशेषताएँ

1- निषेधात्मक और विद्रोही दृष्टिकोण
स्वच्छंदतावाद विद्रोही प्रवृत्ति से जुड़ा है, जिसकी प्रेरणा फ्रांसीसी क्रांति और रूसो जैसे विचारकों से मिली। इस धारा में अन्याय का विरोध, स्वतंत्रता की आकांक्षा और स्वाभिमान प्रमुख हैं। स्वच्छंदतावादी कवि धर्म, नीति, परंपरा और शास्त्रीय नियमों के विरुद्ध भी आवाज उठाते हैं।

2- आडम्बर का निषेध और सहजता का आग्रह
स्वच्छंदतावादी काव्यधारा कृत्रिमता का विरोध करती है और सहजता को महत्व देती है। रूसो के विचार—प्रकृति की ओर लौटने और सरल जीवन जीने—ने कवियों को प्रभावित किया। इस प्रवृत्ति ने जीवन और काव्य में आडंबर छोड़कर स्वाभाविकता अपनाने की प्रेरणा दी। *लिरिकल बैलेड्स* की भूमिका में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया है। स्वच्छंदतावादी कवियों ने सरल शैली और बोलचाल की भाषा को अपनाकर यथार्थ अभिव्यक्ति को महत्व दिया।

3- अतीतोन्मुखता
स्वच्छंदतावादी कविता में अतीत की ओर झुकाव भी दिखाई देता है। वाल्टर पेटर के अनुसार, मध्य युग के कई प्रसंग कवियों की कल्पना को प्रेरित करते हैं। वर्ड्सवर्थ और

शैली की रचनाओं में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। यद्यपि अतीतमुखता इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषता नहीं है, फिर भी प्रेम, सौंदर्य और कल्पना से जुड़ाव के कारण इसे महत्व मिला।

4- कल्पना की प्रधानता

स्वच्छंदतावादी कवियों के लिए कल्पना सुख का स्रोत थी। वे यथार्थ से दूर रहकर नवीन, अद्भुत और अप्रतिम की ओर आकर्षित रहते थे। अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों ने भी भौतिक जीवन से हटकर कल्पनालोक में विचरण किया। इसलिए उनकी रचनाएँ - पुराने से नवीन, शुष्क से सरस और स्थूल से सूक्ष्म बन गईं। हिंदी में यह प्रवृत्ति प्रसाद जैसे कवियों में भी छायावाद के प्रभाव से दिखाई देती है।

5- अद्भुत तत्त्व

कल्पनाशील होने के कारण स्वच्छंदतावादी कवियों का झुकाव अद्भुत और उदात्त की ओर रहा। उनके काव्य में अति-मानवीयता और यांत्रिकता को भी स्वाभाविक और आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया गया। यही अद्भुत तत्त्व आगे चलकर छायावादी काव्य को भी प्रेरित करता है, जहाँ पावनता और गरिमा इसी प्रभाव का परिणाम हैं।

6- वैयक्तिकता

स्वच्छंदतावाद में कवियों ने अपनी रुचि, भावना और दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी। कवि अपने भावों और अनुभवों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करते हैं। 'मैं' की भावना, निजी अनुभूतियाँ और आत्ममंथन इनकी काव्य-दृष्टि का केंद्र हैं। प्रबन्धकाव्य के नायक आत्मकेंद्रित हो गए और गीतों में उदासी-, निराशा व वेदना प्रमुख हो गई। तर्क और बुद्धि की बजाय भावुकता और आदर्शों को महत्व मिला। यह व्यक्तिवाद इतना बढ़ा कि कई बार भावोन्माद का रूप ले लिया।

7- सौन्दर्यमयी दृष्टि और जिज्ञासा

स्वच्छंदतावादी कवियों में सौंदर्य के प्रति गहरी रुचि और जिज्ञासा मिलती है। शेली ने पूरी प्रकृति को सुंदर माना, जबकि कीट्स ने कहा"—Beauty is truth, truth is beauty." उनके काव्य में स्पर्श, गंध और दृष्टि से जुड़ा सौंदर्य वर्णित है। यह धारा सौंदर्य की खोज में निरंतर नवीनता की ओर बढ़ती है। प्रकृतिप्रेम और उसका सरस - चित्रण इसी सौंदर्य-दृष्टि का परिणाम है, जो छायावादी काव्य में भी दिखाई देता है।

8- राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना-

भारत में स्वच्छंदतावाद केवल व्यक्ति की मुक्ति तक सीमित नहीं रहा, बल्कि राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव और सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा भी उसमें दिखाई देती है। देश की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक गौरव और आत्मगौरव की भावना भी प्रमुख रूप से

अभिव्यक्त होती है, जो भारतीय स्वच्छंदतावाद को पश्चिम स्वच्छंदतावाद से भिन्न बनाती है।

10.6 सारांश

स्वच्छंदतावादी हिंदी कविता ने हिंदी साहित्य को भावनाओं की गहराई, कल्पना की ऊँचाई और आत्मा की स्वतंत्रता का मार्ग दिखाया। यह कविता आत्मकेंद्रित होते हुए भी व्यापक मानवीय संवेदना को प्रकट करती है। छायावाद इसी प्रवृत्ति का विकसित और परिष्कृत रूप है। स्वच्छंदतावाद हिंदी कविता का एक महत्वपूर्ण चरण था जिसने कवियों को भावों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति दी। इसमें कल्पना, प्रकृतिप्रेम-, व्यक्तिवाद और रूढ़ियों से विद्रोह के स्वर उभरते हैं। स्वच्छंदतावाद हिंदी साहित्य का एक ऐसा आंदोलन है, जिसने साहित्य को भावनात्मक स्वतंत्रता, आत्म-अभिव्यक्ति, प्रकृति-प्रेम, मानवतावाद और नवीन काव्य-भाषा के साथ जोड़ा। यह काव्यधारा न केवल पाश्चात्य रोमैंटिसिज्म से प्रेरित है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और राष्ट्रीय चेतना की भूमि पर भी गहराई से आधारित है। श्री अमरनाथ के अनुसार "छायावाद और स्वच्छंदतावाद में गहरा साम्य है। दोनों में प्रकृति-प्रेम, मानवीय दृष्टिकोण, आत्माभिव्यंजना, रहस्यभावना, वैयक्तिक प्रेमाभिव्यक्ति, प्राचीन संस्कृति के प्रति व्यामोह, प्रतीक-योजना, निराशा, पलायन, अहं के उदात्तीकरण आदि के दर्शन होते हैं।"

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्वच्छंदतावाद का संबंध किस पाश्चात्य काव्य प्रवृत्ति से है?
A. यथार्थवाद
B. प्रतीकवाद
C. रोमांटिसिज्म
D. प्रगतिवाद
उत्तर: C. रोमांटिसिज्म

2. हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का प्रारंभिक रूप किस कवि में दिखाई देता है?
A. मैथिलीशरण गुप्त
B. जयशंकर प्रसाद
C. पं. श्रीधर पाठक
D. सुमित्रानंदन पंत
उत्तर: C. पं. श्रीधर पाठक

3. स्वच्छंदतावादी कविता किस तत्त्व पर विशेष बल देती है?
A. सामाजिक बंधन
B. राष्ट्रहित
C. व्यक्तिगत स्वतंत्रता
D. धार्मिक आस्था
उत्तर: C. व्यक्तिगत स्वतंत्रता

4. हिन्दी में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था?
A. रामविलास शर्मा
B. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
C. नामवर सिंह
D. डॉ. नगेन्द्र
उत्तर: B. आचार्य रामचंद्र शुक्ल

5. स्वच्छंदतावाद की प्रमुख विशेषता क्या है?
A. सामाजिक यथार्थ
B. आत्मानुभूति और कल्पना
C. वैज्ञानिक दृष्टिकोण
D. राजनीतिक चेतना
उत्तर: B. आत्मानुभूति और कल्पना

10.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वच्छंदतावादी को स्पष्ट करते हुए हिन्दी स्वच्छंदतावाद पर एक निबंध लिखिए।
2. स्वच्छंदतावाद के क्रमिक विकास को विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

10.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री / संदर्भ ग्रंथ

1- साहित्यिक निबंध –डॉ लक्ष्मीनारायण चातक,डॉ राजकुमार पाण्डेय कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, नवीन संस्करण 2005, पृ. 305-311
2- द्वाभा-विजय प्रकाश सिंह, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली , पहला संस्करण 2018, पृ0 25-39
3- छायावाद-नामवर सिंह,राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली। पहला संस्करण, 1995 पृ0 11

4- हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली-डॉ अमरनाथ,राजकमल प्रकाशन,पहला संस्करण, पृ0 390
5- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,संस्करण 2010 पृ0 135-224
6- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,संस्करण 2010 पृ0
7- हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. रामचंद्र शुक्ल
8- छायावाद और उसका यथार्थ – डॉ. नामवर सिंह
9- स्वच्छंदतावाद और हिंदी कविता – डॉ. शंभुनाथ पांडे

इकाई -11छायावादी कविता

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 छायावाद

11.3.1 परिभाषा

11.3.2 मत-मतान्तर

11.4 प्रवृत्ति

11.4.1. व्यक्तिवाद

11.4.2 जिज्ञासा व रहस्य

11.4.3 प्रेम व प्रकृति

11.4.4 रुढियों से मुक्ति

11.4.5 नवजागरण का काव्य

11.4.6 व्यक्ति सत्य व शाश्वत बोध के द्वंद्व की कविता

11.4.7 भाषा और शैली

11.5 छायावाद का मूल्यांकन

11.5.1 छायावाद का प्रदेय

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

काव्यान्दोलन के सन्दर्भ में प्रासंगिकता के प्रश्न को जड़-जीवन संवेदनाओं के बीच लेखक की रचनात्मक उपस्थिति के रूप में देखा जाता है. किन्तु साहित्य में प्रासंगिकता हर बार अपना अर्थ विस्तार करती है...वैविध्य उत्पन्न करती है. छायावादी साहित्य ने हमें कविता को आधुनिक (पूरी तरह नहीं) सन्दर्भ दिया या प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के आधार के रूप में या कविता में राग, लय कैसे उत्पन्न करें, यह सीखने की तमीज़ दी या कविता में 'भावात्मक औदात्य' के लिए या यह सीखने के लिए कि 'साहित्यिक आन्दोलन के बीच कविता के विकास की परिणति' किस प्रकार होती है या साहित्यिक आन्दोलन के नेतृत्वकर्ता के बीच कवि के अपने विकास की दृष्टि से ...या अन्य कुछ कारण भी हैं? जिनके कारण छायावादी कविता को देखना काम्य हो सकता है. आज छायावादी कविता को पढना 'बौद्धिक उत्तेजना' उत्पन्न नहीं करता, जैसा कुछ दशक पूर्व किया करता था. आज छायावादी कविता पढ़ते समय लगता है कि हम बहुत पुरानी कविता पढ़ रहे हों, ऐसा आभास प्रगतिवादी, प्रयोगवादी या नयी कविता को पढ़ते समय नहीं होता; किन्तु छायावाद या छायावाद से पूर्व तक की कविता पढ़ते समय ऐसा ही लगता है. प्रश्न है कि ऐसा क्यों होता है कि हम छायावादी कविता मात्र 'भाव की थिरता' के लिए पढ़ते हैं, किसी बौद्धिक उत्तेजना के लिए नहीं? कारण की तलाश बहुत कठिन नहीं है. छायावादी कविता ने हमारे मस्तिष्क को आधुनिक बनाया, अपनी कीमत पर. मेरी बात शायद आगे स्पष्ट हो. यहाँ हम मात्र इस संकेत से आगे बढ़ जाना चाह रहे हैं कि कालिदास या दूसरे संस्कृत कवियों की हजारों वर्ष प्राचीन कविता पढ़ कर भी हमें यह नहीं लगता कि ये बहुत प्राचीन मनोवृत्ति की कवितायेँ हैं, किन्तु ऐसा छायावादी कविता को पढ़कर लगता है. ऐसा क्यों? छायावादी कविता 'मनोभावों को टाइप्ड' रूप में तैयार करती है...'मनोभावों को व्यैक्तिक' रूप प्रदान करती है; यह काम संस्कृत या कोई दूसरी हिन्दी कविता नहीं करती. संस्कृत कविता अपनी संरचना में प्राचीन है, उसकी वैचारिकता सामंती मूल्य हैं या भक्तिकालीन कविता सामंती औदात्य मूल्यों से आच्छादित है, किन्तु अपनी 'कहन शैली' की 'सार्वभौमिक छवि' के कारण वह आज भी हमारी बौद्धिकता को तृप्त करती है, किन्तु यह काम छायावादी कविता नहीं करती. छायावादी कविता हमारे भाविक अंतर्छावियों के तृप्ति की कविता है. अत: छायावादी कविता की प्रासंगिकता के प्रश्न को ठीक उसी प्रकार नहीं देखा जाना चाहिए जैसा कि क्लासिक या आधुनिक कविता को देखा जाता है. इस संक्षिप्त प्रस्तावना के बाद हम अपने मूल बिंदु पर लौटते हैं कि छायावादी कविता और छायावादी आलोचना की उत्पत्ति के बिंदु कौन-से हैं? या छायावादी आलोचना के उर्जा-श्रोत क्या हैं?

छायावादी काव्यान्दोलन हिंदी कविता में एक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक अभ्युदय तो था ही किन्तु उससे ज्यादा आधुनिक कविता...आधुनिक कवि का पहला महत्वकांक्षी प्रयास था. भारतेंदु , द्विवेदी युग का साहित्य भी एक गतिशील परंपरा का साहित्य था, किन्तु किसी कवितान्दोलन के

साथ ही उसकी सैद्धांतिकी गढ़ने-बनाने की दृष्टि से छायावादी आन्दोलन हिन्दी का प्रथम काव्यान्दोलन था. भारतेंदु युग, द्विवेदी युग में भी भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व केन्द्रीय रूप में स्थापित था, किन्तु 'उनकी कविता से ज्यादा उनका युग प्रभावी' था. छायावादी कवियों का रचनात्मक व्यक्तित्व उनके युग पर हावी था. इस ढंग से छायावादी कवियों का रचनात्मक व्यक्तित्व हिंदी कविता की अपनी गति से आगे या बढ़ा हुआ था. क्या यह विरोधाभासी कथन होगा कि छायावादी कवि अपने युग के दबाव से मुक्त थे? नहीं हम ऐसा नहीं कह सकते. 'हर युग का साहित्य व साहित्यकार अपने युग की सम्भावना के निचोड़ होते' हैं, जैसे कथा साहित्य में प्रेमचंद का आगमन या नाटक में प्रसाद का आगमन या आलोचना में रामचंद्र शुक्ल का आगमन ... . उसी प्रकार क्या छायावादी कवियों का रचनात्मक आगमन भी था? छायावादी कविता को लेकर इतने भ्रम-अनिश्चय की स्थिति बन गयी है, क्योंकि इसकी सूक्ष्मता इसे सामाजिक –राजनीतिक दृष्टि से परंपरा का विकास सिद्ध करने में बाधक होती है तो छायावादी कविता में ऐसी विचित्रता थी कि यह आलोचकों के लिए उलझन का विषय बन गयी. एक ओर यह पश्चिमी काव्यान्दोलन से प्रभावित है तो दूसरी ओर बंगला कविता के प्रभाव को भी धारण किये हुए है. एक ओर यह आधुनिक कविता भी है तो दूसरी ओर परंपरा व दर्शन से गहरे प्रभावित भी. एक ओर यह 'हृदय की कविता' है तो दूसरी ओर 'बुद्धि के औदात्य' की भी.. . एक ओर यह 'अमूर्तता को धारण' किये हुए है तो दूसरी ओर 'नवजागरण से गहरे प्रभावित' भी.. . यानी विचित्र ढंग से छायावाद अपनी व्याप्ति में इतनी संभावनाओं को समेटता काव्यान्दोलन था कि इसके प्रारंभ और व्याप्ति को लेकर एका नहीं बन पाई.

11.2 उद्देश्य

विद्यार्थियों! इस इकाई में आप छायावाद और उसकी मुख्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप हिंदी कवितान्दोलन के बरक्श छायावादी कवितान्दोलन को समझ सकेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप छायावाद के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप छायावाद की प्रमुख विशेषताओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप छायावादी आलोचना से परिचित हो सकेंगे

11.3 छायावाद

11.3.1 परिभाषा

रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में छायावाद शब्द के प्रयोग को दो अर्थों में स्वीकार किया है। एक रहस्यवाद के अर्थ में तथा दूसरा प्रयोग काव्यशैली तथा पद्धति विशेष के अर्थ में। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी छायावादी कविता में रहस्य व अस्पष्टता को रेखांकित किया। एक जगह उन्होंने लिखा है-"छायावादी कवि कुछ कह रहे हैं। यह सुनाई तो पड़ता है। किंतु क्या कह रहे हैं, यह समझ में नहीं आता"। इसी प्रकार एक जगह उन्होंने छायावाद का अर्थ उन्होंने छाया के अर्थ में ग्रहण किया। डॉ नगेन्द्र ने छायावाद को "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। इसी संदर्भ में नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है-"मानव अथवा प्रकृति में व्यक्त आध्यात्मिक छाया का भान मेरे हिसाब से छायावाद की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा हो सकती है"। इस प्रकार ह। देखते हैं कि छायावाद को हर आचार्य ने अलग-अलग ढंग से ग्रहण किया है। इसी कारण अपनी पुस्तक छायावाद में नामवर सिंह ने इन सब का समन्वय करते हुए **1918** से **1936** के बीच चले हिंदी काव्यान्दोलन के रूप में स्मरण किया।

छायावाद का आंदोलन हो या कोई और कवितान्दोलन, उसे किसी परिभाषा में नहीं बांधा जा सकता। कारण यह कि किसी भी परिभाषा से किसी एक प्रवृत्ति को ही पकड़ा जा सकता है, जबकि काव्यान्दोलन में अनेक प्रवृत्तियों का संगुम्फन होता है।

11.3.2 मत-मतान्तर

किसी काव्यान्दोलन के प्रारंभ और समापन को लेकर इतना विवाद या चर्चा नहीं हुई, जितना कि छायावादी आन्दोलन को लेकर हुआ. प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अ-कविता, मोहभंग की कविता, जनवादी कविता...की समाप्ति या प्रारंभ को लेकर 'छायावाद' की तरह कौतुक की सृष्टि नहीं हुई. उपरोक्त आन्दोलनों को यह मानकर कि वे ऐतिहासिक गति-क्रम में उत्पन्न हुए और उसी से समाप्त हो गए, के तर्क से छायावाद को कई बार अलग ढंग से देखा गया. छायावादी काव्यान्दोलन के प्रारंभ और समापन को एक बड़ी साहित्यिक घटना के रूप में देखा गया. यह छायावाद की विशिष्टता के कारण हुआ. छायावाद की समाप्ति से एक प्रकार से साहित्य में महावितान/महाख्यान की समाप्ति भी हुई. छायावादी काव्यान्दोलन के बाद मिथक को लेकर अनेक महत्वपूर्ण कवितायेँ लिखी गयीं, किन्तु उनमें एक खास मनोवृत्ति को पकड़ने का प्रयास हुआ, उनमें सभ्यता के विमर्श महाख्यान के रूप में न आये...मुक्तिबोध का प्रयास इस ढंग से उल्लेखनीय है. छायावादी कवि ही छायावाद की समाप्ति की घोषणा करे (देखें युगांत में पन्त की घोषणा) , यह तथ्य इस बात का संकेत है कि छायावादी कवि अपने ऐतिहासिक दायित्व के प्रति कितने सजग थे.

छायावादी कविता में 'प्रश्न' और 'जिज्ञासा' है. वैसे ही उसमें प्रश्नवाचक और विस्मयादिबोधक चिह्न भी हैं; खासतौर से पन्त की कविता में. इस प्रकार का विस्मय वैदिक कविता में भी है...यानी संस्कृति के प्रारंभ के साहित्य में इस प्रकार का कौतूहल होता है. तो क्या छायावादी साहित्य पीछे

की ओर जा रहा था? या छायावाद किसी नवीन सभ्यता का प्रारंभ है? कोई भी सभ्यता जब प्रारम्भिक अवस्था में होती है तो साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति जिज्ञासा और कौतूहल में होती है. अर्थात एक, तो छायावाद से हिन्दी कविता पुराने केंचुल छोड़ रही है तो दूसरी ओर छायावाद ने जिज्ञासा-कौतूहल को 'रचनात्मक टेक्नीक' बनाया. जिज्ञासा यहाँ बौद्धिक बाध्यता नहीं है, भावनात्मक बाध्यता है. रोमैंटिक कविता में 'अतिरिक्त जिज्ञासा' का भाव उत्पन्न करना उसकी एक रचनात्मक टेक्नीक होती है. वैदिककाल से लेकर रीतिकाल तक का समय सामंती मनोरचना का समय है. इसके बाद हिंदी कविता नवजागरण (सांस्कृतिक) से प्रभावित है, किन्तु कविता में इसका प्रारंभ छायावादी कविता से हुआ. इस प्रकार छायावादी कविता पूंजीवादी समाज के उत्कर्ष कल का आन्दोलन है. किन्तु इस आन्दोलन में 'बुद्धि' और 'ह्दय' का द्वंद्व भी कम नहीं है. इस ढंग से एक ओर छायावाद 'बुद्धिवाद के उत्कर्ष' को सामने लाता है किन्तु दूसरी ओर पुराने जीवन मूल्य भी इसमें कम नहीं हैं.

छायावादी काव्यान्दोलन बहुधा लोगों को 'अस्पष्ट' लगता है. इस अस्पष्टता के कुछ ठोस कारण हैं. छायावाद में अस्पष्टता का आना 'कथ्यगत' या 'रहस्यात्मक' होने के कारण नहीं है, बल्कि इसका कारण खुद 'छायावादी कवियों के भीतर का आंतरिक द्वंद्व' है. सिद्ध कवियों के संध्या भाषा, कबीर की ऊलटबांसी , सूर के कूट पद अपने जटिल विधान के बावजूद अस्पष्ट नहीं हैं. वे दुर्बोध हैं किन्तु अस्पष्ट नहीं हैं. अस्पष्टता का कारण छायावादी कवियों का अपने कथ्य की अभिव्यक्ति में संकोच है न कि कथ्य के प्रति अज्ञानता. इस दृष्टि से छायावादी कविता को पढने की तमीज यह होनी चाहिए कि हम इसे मात्र सौन्दर्य-प्रेम की कविता के रूप में न पढ़ें , मात्र प्रकृति काव्य के रूप में न देखें, मात्र रोमैंटिक आन्दोलन के रूप में न देखें, अपितु इसे साभ्यतिक वैचारिक परिवर्तन के रूप में देखें, तभी छायावादी कविता का मर्म हमारे सामने खुल पायेगा.

छायावादी काव्यान्दोलन मूल रूप से नवजागरण का साहित्यिक रूपांतरण व उत्कर्ष था. नवजागरण का केंद्र बिंदु सांस्कृतिक-आध्यात्मिक-चेतनागत होता है. सामजिक जागरण इसी का अगला चरण है. चेतना का विकास जब सौन्दर्य से आवृत्त होता है, तब छायावादी काव्यान्दोलन की सृष्टि होती है. यानी मूल रूप से यह नवजागरण का साहित्यिक रूपांतरण तो है ही, साथ ही प्राचीनता-नूतनता के द्वंद्व से युक्त भी है. साहित्य में सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण नया नहीं है. वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक और आगे भी लम्बी परंपरा रही है. किन्तु पूर्व के सौन्दर्य चित्र और छायावादी सौन्दर्य चित्रों में प्रमुख अंतर यह है कि छायावादी सौन्दर्य आधुनिक जीवन-दर्शन से आप्लावित है. छायावाद का प्रेम पूंजीवादी-बौद्धिक प्रेम है, जिसमें भाव और बुद्धि का द्वंद्व प्रमुखता से रेखांकित है.)

छायावाद और भ्रम

छायावाद को लेकर हिन्दी आलोचना में इतने भ्रम-संशय है कि कई बार लगता है कि ये आलोचनाएँ न होतीं तो संभवतः छायावादी साहित्य पाठकों को ज्यादा अच्छे प्रकार से समझ में आता. यानी छायावादी आलोचना ने छायावाद को समझने में सहयोगी की भूमिका कम निभाई, उलझाव ज्यादा पैदा किया. आज भी हिन्दी के किसी विद्यार्थी से आप छायावाद की परिभाषा पूछें तो वह डॉ नगेन्द्र की परिभाषा- "छायावाद स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह है" ही बतायेगा. किन्तु यह स्थूल क्या था? यह स्थूल द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता मात्र न थी. क्या छायावाद से पूर्व की सभी कृतियाँ इतिवृत्तात्मक थीं? डॉ देवराज जी ने प्रश्न उठाया है- 'भारत-भारती' को इतिवृत्तात्मक कृति कह सकते हैं. किन्तु क्या 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास' अथवा गुप्त जी का 'जयद्रथ वध' भी इतिवृत्तामक कृतियाँ हैं? हम ऐसा नहीं समझते. और यदि हमारी यह सम्मति ठीक है तो द्विवेदी युग के समस्त काव्य को इतिवृत्तात्मक कैसे कहा जा सकता है? (पृष्ठ **77,** छायावाद: उत्थान,पतन ,पुनर्मूल्यांकन) यहाँ 'स्थूल' से यदि हम दूसरा अर्थ लें कि छायावाद से पूर्व व्यक्तिक भावनाएं , भाषा का कल्पनात्मक प्रयोग , स्त्री-प्रकृति का आलाम्वित रूप, कविता और दर्शन की सूक्ष्म व्याखाएं बाधित थे और छायावादी कविता ने इसकी प्रतिक्रिया की. द्विवेदी युगीन कविता 'नैतिक कविता' थी, जिसकी नैतिकता ईश्वरोंमुखी सामंती मूल्यों से संचालित थी, इसलिए पश्चिमी प्रभाव, रवीन्द्रनाथ का अंतर्राष्ट्रीयतावाद, नवजागरण की सांस्कृतिक चेतना तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से संभावित (सम्पूर्ण रूप से युक्त नहीं) छायावादी कविता को द्विवेदी युग एवं पूर्व की कविता से प्रतिक्रिया करना ही था. डॉ देवराज जी ने लिखा है- "छायावाद अनाधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह था" (पृष्ठ **78,** वही). द्विवेदी युग तक की कविता और छायावाद तक की कविता के एक अंतर को देखना हो तो दोनों काव्यान्दोलनों में आये नायकों के स्वरुप की तुलना कर लें. मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध के नायकों के साथ पन्त, निराला, प्रसाद के नायकों को को देखें तो स्पष्ट रूप से आप महसूस करेंगे कि छायावाद ने पौराणिक नायकों के स्थान पर ऐतिहासिक नायकों को स्थापित किया. छायावाद के बारे में एक बड़ा भ्रम है भी है कि इसके नायक-नायिका वायवी हैं, अर्थात बादल,वर्षा, नदी, रजनी....आदि, किन्तु सम्राट एडवर्ड अष्टम ,मार्क्स, गांधी, अरविन्द , विवेकानंद ...से लेकर अनेक भारतीय नायक इसके केंद्र में रहे हैं. किन्तु छायावाद का एक अंतर्विरोध या कहें कि ऐतिहासिक गति का एक पड़ाव यह रहा कि छायावाद पूरी तरह से आधुनिक काव्य नहीं बन सका है. छायावाद में 'आधुनिकता का प्रकाश' है, 'आभा' है, 'दर्शन' है, किन्तु 'जीवन यथार्थ' नहीं है.प्रसाद की मूल चेतना 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के इर्द-गिर्द धूमती रही है तो निराला के ऊपर वेदांत का प्रभाव रहा है. महादेवी के ऊपर बौद्ध दर्शन का पर्याप्त प्रभाव रहा है. हाँ इस ढंग से सुमित्रानंदन पन्त जरुर मार्क्सवाद, अरविन्द और रवीन्द्रनाथ के दर्शन-मान्यताओं से प्रभावित रहे हैं. नंददुलारे बाजपेयी जब छायावाद को 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान' (हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ **163)** को छायावाद की सर्वमान्य परिभाषा बताते

हैं तो वे छायावाद को उसी 'फ्रेम' में 'फिट' कर रहे होते हैं जिसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी , प्रसाद जी उसे 'फिट' करने का प्रयास कर चुके होते हैं. छायावादी कवियों का अध्यात्म वैचारिक था, उनके जीवन का सत्य न था. महादेवी वर्मा का 'रहस्यवाद' (वैसे हम इसे रहस्यवाद नहीं समझते) भी वैचारिक है, उनका 'अनुभूतिगत सत्य' नहीं है. वस्तुतः छायावादी 'रहस्यवाद' या 'आध्यात्मिकता' की अपनी पृष्ठभूमि है. हमने ऊपर कहा कि छायावाद विचित्र ढंग से 'सामंती और वैज्ञानिक चेतना के बीच का काव्य' है, इसलिए यह अपनी सौन्दर्य चेतना को व्यक्त करने के लिए आध्यात्मिकता/छाया का आधार ग्रहण करता है, ठीक वैसे ही जैसे भक्तिकालीन कवि समाज को व्यक्त करने के लिए ईश्वर का आधार ग्रहण करते हैं.

छायावादी कवि जब काव्य-क्षेत्र में आये तब भाव या कहें कि श्रद्धापूर्ण भाव की प्रबलता थी, जिसमें तर्क के लिए कम-से-कम जगह थी. पन्त की कविता को देखें, खासतौर से 'गुंजन' और 'पल्लव' की कविता को; उसमें विस्मय और प्रश्नवाचक चिह्नों की भरमार है. कविता अब बुद्धि और तर्क से युक्त हो रही है, किन्तु उसमें विस्मय भी है. यह विस्मय सामंती मूल्य चेतना और आधुनिक चेतना के द्वंद्व से सृजित हुआ है. यही छायावादी कविता का ऐतिहासिक-गति क्रम है. नंददुलारे बाजपेयी जी ने निराला काव्य में आये बुद्धि-तत्व को विशेष रूप से रेखांकित किया है.

छायावाद और रहस्यवाद

छायावादी भ्रम के निराकरण के प्रसंग में कुछ बातें रहस्यवाद के सन्दर्भ में करनी आवश्यक है. छायावादी कवि रोमांटिक हैं, रहस्यवादी/मिस्टिक नहीं. उपनिषद का ऋषि जब कहता है- 'वेदाहमेतं ('अहम वेद एतम' – मैं इसे जानता हूँ) तो वह रहस्यवाद है, यानी परम सत्ता से साक्षात्कार. रोमैंटिक आन्दोलन व छायावाद में परम सत्ता का साक्षात्कार नहीं है, उसका आभास है. यहाँ विषयांतर करते हुए रोमैंटिक अवधारणा की पश्चिमी व्याख्या को देखना उचित प्रतीत होता है. पश्चिम में क्लासिक और रोमैंटिक विचारधारा का लम्बा द्वंद्व रहा है. भारत में दोनों वृत्तियों का अद्भुत समन्वय रहा है. कालिदास एक साथ रोमैटिक व क्लासिक दोनों है. अंगरेजी के विद्वान प्रोफ़ेसर श्रीनिवास आयंगर ने राम को क्लासिक नायक व कृष्ण को रोमैंटिक नायक कहा है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखें तो ये दोनों विष्णु के अवतार है. कहने का अर्थ यह कि भारतीय परंपरा में रोमैंटिक वृत्तियों को क्लासिक के अंतर्गत समेट लेने का चलन रहा है. आइए इस सन्दर्भ में एक पश्चिमी लोकख्यात कथा का आश्रय लेकर अपनी बात आगे बढ़ाएं. रोमैंटिक परंपरा और क्लासिक के द्वंद्व को पश्चिमी परंपरा में एडम-ईव के आख्यान में देखा गया है. एडम-ईव का शैतान के उकसाने पर फ़ल खाना और स्वर्ग से बहिष्कृत होना, नर और नारी होने का स्व-बोध, संतान की उत्पत्ति और उसे पाप का मूल और ज्ञान का फ़ल के रूप में देखना क्लासिक वृत्ति का मूल है. 'स्व' के ज्ञान , उत्पत्ति ने मनुष्य को 'ओरिजनल सिन' या 'सिनर' /पापी के रूप में देखा... और इसके उपचार क्रम में संयम, नियंत्रण, प्रभु, चर्च एवं परम्परा का सम्मान तथा उनके समक्ष समर्पण की

अवधारणा सामने आयी. क्लासिक अवधारणा मानती है कि मनुष्य पापी है, अपूर्ण है. इसलिए उसे नियम व शास्त्रीय विधानों के अनुसार चलना चाहिए. रोमांटिसिज्म के दार्शनिक रूसो ने इस विधान को इंकार किया. रूसो ने कहा 'मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ, किन्तु वह हर जगह बेड़ियों में जकड़ा हुआ है'. यह बेड़ियाँ परंपरा, समाज, शास्त्र की बेड़ियाँ हैं. इसीलिए रोमैंटिक व्यक्ति/ कवि जो अदृश्य, परोक्ष है, उसे देखता है, जबकि क्लासिक कवि –जो है, उसका वर्णन करता है. इसीलिये रोमैटिक कविता में कल्पना, स्वप्न अनिवार्य व महत्वपूर्ण होते हैं. आध्यात्मिक भाव, अमूर्त भाव –प्रेम, करुणा, दया, उदारता...रोमैंटिक के लिए मूल्यवान हो जाते हैं. हृदय के भाव , हृदय की सत्ता रोमैंटिक व्यक्ति व कविता के लिए सार्थक हैं.

रोमैंटिक आन्दोलन के कवियों- ब्लेक, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स- ने इसीलिये सत्ता के प्रतीक चर्च को नहीं माना. चर्च के ईश्वर को नहीं माना. ईश्वर की अपनी खोज प्रारंभ की. वर्ड्सवर्थ को परम सत्ता की प्रतीति प्रकृति में –नदी, बादल, झील, झरने में हुई. शेली शक्ति का उपासक है. पूरे ब्रह्माण्ड में हर जगह गतिमान परम सत्ता का आभास उसे प्रकृति की गत्यात्मकता में हुआ. 'ओड टू द वेस्ट विंड, 'स्काई लार्क' में वह गति में परम सत्ता को देखता है. जॉन कीट्स ब्यूटी/ सौन्दर्य में ही परम सत्ता को देखता है. ब्लेक इस ढंग से रहस्यवादी है. उसे प्रकृति के कण-कण में ईश्वर, चेतन-अचेतन का आभास होता है. यानी रोमैंटिक कवि अदृश्य लोक में आस्था रखता है, इसीलिये इस प्रकार की कविता में कल्पना की उड़ान मिलती है. किन्तु इस तथ्य को भी समझे जाने की आवश्यकता है कि रोमैंटिक को परमसत्ता का आभास है, साक्षात्कार नहीं. वर्ड्सवर्थ, कीट्स अपने विजन को डाउट/संदेह में समाप्त करते हैं. संदेह दुविधा का ही दूसरा नाम है.कीट्स के 'नाईटेंगल' में परमसत्ता रूपी बांसुरी की धुन बजती सुनाई पड़ती है, किन्तु अपनी तन्मयता के अंतिम क्षणों में उसे लगता है कि कहीं यह सपना तो नहीं था. इसी प्रकार वर्डसवर्थ को एक कविता 'टिंटर्न ऐनी' में ईश्वर के साक्षात्कार से ताकत मिलती है, किन्तु तभी वह कहता है-अगर यह कोरा विशवास हुआ तो .... स्पष्ट है कि रोमैंटिक कवि एक संदेह, दुविधा की सृष्टि करता है. आभास ऐसा ही होता है. रवीन्द्रनाथ को ईश्वर का साक्षात्कार नहीं आभास है. शिशिर कुमार घोष ने कहीं टिप्पणी की है-रवीन्द्र नाथ उस विरहिणी के समान हैं जो दिन-रात ईश्वर को पुकारा करती है, किन्तु जब ईश्वर आकर कहते हैं कि चलो मेरे साथ चलो तो वह कहते हैं 'नहीं यहीं ठीक हूँ' . कहने का अर्थ यह है कि छायावादी कविता के संदेह, दुविधा को भी इसी ढंग से देखे जाने की आवश्यकता है.

रहस्यवाद का अध्यात्म और रोमानीपन से गहरा नाता है.आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'अज्ञात के प्रति जिज्ञासा का भाव' को रहस्यवाद कहा था. हम इसे अज्ञात के प्रति तादात्म्य को रहस्यवाद कहेंगे. तो यह अज्ञात परम सत्ता भी हो सकती है और कोई विचार, व्यक्तित्व भी. जहाँ अज्ञात परम सत्ता का बोधक है, वहां अध्यात्म है और जहाँ अज्ञात प्रिय या चेतना की बोधक है, वहां छायावाद है.

वैसे अध्यात्म और रोमैनटीसिजम किसी बिंदु पर जाकर मिल जाते हैं. कबीर , सूफी कविता या मीरा की कविता को देखें...अपनी तन्मयता के क्षणों में अध्यात्म किस प्रकार रोमानी हो चला है.इसीलिये तो भक्त और प्रेमी की दशा एक समान हो जाती है. विरह का यह द्वैत एक रहस्यवाद को जन्म देता है. छायावादी 'रहस्यवाद' को समझना है तो अध्यात्म और प्रेम दोनों को समझना होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे छायावाद को समझने के लिए भारतीय चिंतन परंपरा और पाश्चात्य चिंतन परंपरा दोनों को समझना अनिवार्य है. बहुत पहले भोलाशंकर व्यास जी ने टिप्पणी की थी- 'छायावाद तक के साहित्य को समझना है तो हमें भारतीय दर्शन, चिंतन परंपरा को समझना अनिवार्य है और छायावाद के बाद के साहित्य को समझना है तो हमारे पास पाश्चात्य, चिंतन-दर्शन का ज्ञान अनिवार्य रूप से होना चाहिए. आचार्य व्यास की टिप्पणी हमें एक संकेत करती है. छायावाद इस ढंग से निर्णायक बिंदु है. यहाँ हम व्यास जी के मतों में आंशिक सुधार करना चाहेंगे.छायावाद के पूर्व या बाद के भेद की बजाय हमें इस ढंग से देखना होगा कि छायावाद में पूर्व और पश्चिम –भारतीय और पाश्चात्य चिंतन परंपरा दोनों का संयोजन है.

11.4 छायावादी कविता: प्रवृत्ति

छायावादी काव्यान्दोलन का आधुनिक हिंदी साहित्य में विशिष्ट योगदान है। छायावादी कविता को भक्ति कविता के बाद सर्वश्रेष्ठ हिंदी कविता का सम्मान भी प्राप्त है। इसका कारण यह है कि छायावादी कविता अपने युग में एक बड़े दायित्व का निर्वहन कर सकी है। इस कवितान्दोलन की विशिष्टता यह रही है कि इसके बाद हिंदी कविता आधुनिकता के धरातल पर गतिशील हो सकी है।

छायावादी कविता की आंतरिक विशेषताओं के कारण ही उसे आधुनिक हिंदी कविता में शीर्ष स्थान प्राप्त है। यहां हम संक्षेप में छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे।

11.4.1 व्यक्तिवाद

व्यक्तिवाद आधुनिक जीवन की विशेषता है। आधुनिकता ने व्यक्ति सत्य की घोषणा की। सामंतवाद में सामूहिकता पर बल था। सामूहिक सत्य में व्यक्ति सत्य स्थगित हो जाता है। आधुनिक जीवन मूल्यों ने व्यक्ति सत्य की प्रतिष्ठा की। स्मरण रहे कि छायावादी कविता का व्यक्ति सत्य प्रयोगवाद व नई कविता के व्यक्तिवाद से भिन्न है। छायावाद के समय तक पूंजीवाद अपने प्रारंभिक दौर में था। अर्थात विकास की अवस्था में था। एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह था कि छायावादी काव्यान्दोलन रोमैंटिसिज्म को लेकर चला था। रोमैंटिसिज्म में व्यक्ति सत्य को प्रमुखता मिले, यह स्वाभाविक है। निराला ने लिखा है-" मैंने मैं शैली अपनाई"। पंत ने लिखा-" वह बालिका मेरी मनोहर मित्र थी"। भावी पत्नी के प्रति, जूही की कली आदि कविताओं में तथा महादेवी वर्मा की

कविताओं में व्यक्ति की निजी अनुभूतियों का प्रकाश है। मैं नीर भरी दुःख की बदली, मैं राग भी हूँ, रागिनी भी हूँ, जैसी कविताएं व्यक्ति सत्य की उद्घोषणाएं हैं।

11.4.2. जिज्ञासा व रहस्य

छायावादी कविता की दूसरी प्रमुख विशेषता जिज्ञासा व रहस्य की अभिव्यक्ति है। यह वही विशेषता है, जिसके कारण छायावाद पश्चिम के रोमैंटिसिज्म या रोमैंटिक आंदोलन से भिन्न हो जाता है। पश्चिम के रोमैंटिक आंदोलन में जिज्ञासा तो है किंतु रहस्य की ऐसी गाढ़ी परत नहीं है। ब्लेक जैसे कवियों में रहस्य तो है, किन्तु छायावाद की तरह उसमें धुंधलापन नहीं है।

हर रोमानी कविता में जिज्ञासा होती है। देख लूं उस पार क्या है, वाली मनोवृत्ति जिज्ञासा ही है। यह जिज्ञासा रोमैंटिक कविता का प्रमुख लक्षण है। इस पार प्रिये तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा, इस प्रकार की मनोवृत्ति छायावाद में बड़ी गहराई से दर्ज़ हुयी है।

छायावादी कविता के साथ एक बड़ी समस्या यह रही कि छायावादी कवियों ने अपनी जिज्ञासा के ऊपर एक अस्पष्टता का आवरण डाल दिया, जिसके कारण छायावादी कविता रहस्यवादी कविता की तरह पढ़ी जाने लगी। वास्तव में हर रोमैंटिक कविता की तरह छायावादी कविता भी जिज्ञासापरक कविता है।

11.4.3 प्रेम व प्रकृति

रोमानी कविता का एक लक्षण प्रेम की गहरी अनुभूति व उसकी अभिव्यक्ति होती है। हिंदी साहित्य में अपने प्रेम पर बात करना पहली बार हो रहा था। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा जैसे छायावादी कवियों ने सुंदर प्रेम कविताएं लिखीं। आधुनिक जीवन सत्य में व्यक्ति सत्य की प्रतिष्ठा होती ही है। इस ढंग से छायावादी कविता में निज प्रेम की सार्थक अभिव्यक्ति हुई।

छायावाद में सुमित्रा नंदन पंत तो प्रारंभ से ही प्रकृति के प्रति मोह (बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन/ छोड़ अभी से इस जग को) जैसी कविताएं लिख ही रहे थे। छायावाद के अन्य कवियों ने भी प्रकृति के ऊपर महत्वपूर्ण कविताएं लिखीं। नदी, तालाब, झरना, पर्वत, समुद्र, पेड़, पक्षी आदि पर हिंदी कविता में पहली बार इतनी संख्या में कविताएं लिखी गईं। निराला ने लिखा है-

घर की लघुसीमा में

बंधें हैं मेरे क्षुद्र विचार

प्रेम का पयोनिधि तो

उमड़ता है निःसीम भू पर।

छायावाद में प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टि अपनाई गई। छायावाद से पहले प्रकृति आलंबन या उद्दीपन रूप में आई है। किंतु छायावाद ने उसे आश्रय बनाया। छायावाद में प्रकृति को लेकर इसी आत्मीयता के कारण मानवीयकरण अलंकार ही चल पड़ा। यह छायावाद की अपनी उपलब्धि रही।

11.4.4 रूढ़ियों से मुक्ति

प्रत्येक रोमैंटिक कविता सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति के तहत अभिव्यक्त होती है। रूढ़ियों से मुक्ति यहां दो स्तरों पर होती है। एक, व्यक्तित्व के स्तर पर। दूसरे, सामाजिक रूढ़ियों के मुक्ति के स्तर पर। रोमैंटिक कविता में व्यक्ति सत्य के आलोक में समाज को देखने पर बल होता है, जबकि क्लैसिक कविता में समाज के संदर्भ में व्यक्ति को देखने की कोशिश की जाती है। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावादी कविता में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह हमेशा देखने को मिलता है। निराला ने मुक्त छंद का प्रवर्त्तन किया। निराला ने इसे कविता की मुक्ति घोषित किया। छायावादी कविता एक ओर पुरानी काव्य पद्धति से टकरा रही थी तो दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न चिह्न भी खड़ा कर रही थी। इस रूढ़ि मुक्ति को कविता के कथ्य, भाषा-शिल्प में नवीनता और नवीन दृष्टि में खोजा जा सकता है।

11.4.5 नवजागरण का काव्य

छायावादी साहित्य नवजागरण की उपज था। रामविलास शर्मा ने छायावादी साहित्य को नवजागरण के संदर्भ में ही याद किया है। नवजागरण दो संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक-आत्मीय ऊर्जा को कहा गया है। वर्तमान के प्रश्नों का रचनात्मक उत्तर अपनी परंपरा, अतीत व समाज में खोजना, उसे नए ढंग से व्यवस्थित करना और उसे क्रियान्वित करने के सूत्र उपस्थित करना भारतीय नवजागरण का ध्येय रहा है। भारतीय नवजागरण बड़ा पद रहा है। बाद के दिनों में इस नवजागरण के क्षेत्रीय रूप भी चल निकले। रामविलास शर्मा ने हिंदी क्षेत्र के नवजागरण के बरक्स 'हिंदी जाति' शब्द का प्रयोग किया। इसी तरह बांग्ला नवजागरण, तमिल नवजागरण, मराठी नवजागरण जैसे ढेरों पद चल पड़े। यह भ्रामक स्थिति है। भारतीय नवजागरण के ही छोटे-छोटे सत्य क्षेत्रीय अस्मिताएं हैं। अतः हम भारतीय नवजागरण के वृहत्तर संदर्भ में ही छायावाद को समझने का प्रस्ताव करेंगे।

निराला ने जागो फ़िर एक बार का उद्घोष किया। प्रसाद, पंत, महादेवी की कविता में ढेरों जागरण गीत लिखे गए हैं। प्रसाद की प्रसिद्ध कविता 'बीती बिभावरी जाग री' अपने बड़े अर्थ में राष्ट्रीय जागरण का पर्याय बन जाती है। निराला की कविता राष्ट्रीय जागरण का उद्घोष करती है। जयशंकर प्रसाद अपने नाटकों में उद्बोधन गीत लिख ही रहे थे। कई बार प्रश्न किया गया है कि छायावाद में राष्ट्रीय आंदोलन गायब है। यह भी कहा गया कि किसी भी छायावादी कवि ने राष्ट्रीय आंदोलन

के ऊपर कविता नहीं लिखी। वस्तुतः छायावाद में सांस्कृतिक जागरण मुख्य है। नवजागरण के विशेषता सांस्कृतिक-आत्मिक जागरण की होती ही है।

11.4.6 व्यक्ति सत्य व शाश्वत बोध के द्वंद्व की कविता

छायावादी कविता व्यक्ति सत्य व शाश्वत बोध के द्वंद्व के रूप में हमारे सामने आती है। एक ओर इस पर आधुनिक जीवन, मूल्य व दर्शन-विचार का प्रभाव है तो दूसरी ओर भारतीय दर्शन का प्रभाव भी कम नहीं है। जयशंकर प्रसाद शैव दर्शन के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित हैं। प्रसाद की कामायनी का मुख्य प्रतिपाद्य आनंदवाद है। निराला वेदांत से प्रभावित हैं। महादेवी के ऊपर बौद्धों के करुणावाद का गाढ़ा प्रभाव है। हां इनमें पंत जरूर आधुनिक अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं। वर्तमान व अतीत के दर्शनों की टकराहट या संयुक्त समवाय छायावाद को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है।

11.4.7 भाषा और शैली

छायावादी कविता ने हिंदी कविता में ब्रजभाषा की बजाय खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया। नए कथ्य नई भाषा में ही आ सकते हैं। ब्रजभाषा श्रृंगार व भक्ति के

अनुकूल भाषा थी। आधुनिक भावबोध को अभिव्यक्त करने के लिए तब हिंदी ही उचित भाषा हो सकती थी। इस दाय को हिंदी कविता में सबसे पहले छायावाद ने समझा। छायावादी शिल्प को लेकर हिंदी आलोचना में लंबा विवाद रहा है। छायावादी शिल्प को अन्योक्ति कहा गया है। लाक्षणिकता छायावाद की एक प्रमुख विशेषता रही है। आलंकारिकता से युक्त भाषा, सूक्ष्मता और अस्पष्टता ने मिलकर छायावादी कविता को विशिष्ट रूप प्रदान किया।

अभ्यास प्रश्न 1

1. 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है'। यह कथन किस आलोचक का है**?**

क. रामविलास शर्मा ख. नन्ददुलारे बाजपेयी ग. डॉ नगेन्द्र घ. रामचंद्र शुक्ल

2. पल्लव काव्य संग्रह के रचनाकार हैं**?**

क. जयशंकर प्रसाद ख. निराला ग. सुमित्रानंदन पंत घ . महादेवी वर्मा

3. छायावाद का पतन नामक पुस्तक के लेखक हैं**?**

क.डॉ देवराज ख. रामचंद्र शुक्ल ग. नन्ददुलारे बाजपेयी घ. निराला

7. मुक्त छंद की अवधारणा किसने दी**?**

क. जयशंकर प्रसाद ख़. निराला ग.रामचंद्र शुक्ल घ. नन्ददुलारे बाजपेयी

5. कामायनी को मनुष्यता के रसात्मक विकास के रूप में किस आलोचक ने देखा है?

क. रामचंद्र शुक्ल ख. डॉ नगेन्द्र ग. नन्ददुलारे बाजपेयी घ. जयशंकर प्रसाद

11. 5 छायावाद का मूल्यांकन

11.5.1 छायावाद-प्रदेय

छायावाद की देंन क्या रही? यह प्रश्न अक्सर पूछा जाता रहा है. हिन्दी कविता को आधुनिक वृत्तियों से

जोड़ने की कड़ी के रूप में , नए सौन्दर्य चित्र देने, सौन्दर्य दृष्टि का विस्तार करने में, प्रकृति-स्त्री को केंद्र

में लाने या आलंबन बनाने में , भाषा-कथ्य के विस्तार के लिए , सभ्यता प्रश्न के निर्माण के लिए, राग

निर्माण के लिए ....आदि अनेक बिंदु हैं, जिनसे छायावादी कविता हमें समृद्ध करती है. कोई भी कविता

हमें स्थूल चित्र नहीं देती, बल्कि वह सांस्कृतिक उपादान ही होती है, इस दृष्टि से छायावाद को पढ़ा जाना

चाहिए.

छायावादी कविता हिंदी का श्रेष्ठ कवितान्दोलन है। इस श्रेष्ठता का कारण है सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि। यह सौंदर्य दृष्टि रचना को व्यापक व शाश्वत आधार देती है। सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि किसी रचना को शाश्वत रूप देती है। शाश्वत रूप दृष्टि प्राप्त करने के पश्चात रचना स्थूल यथार्थ व मोटे विवरणों से मुक्त होकर भावजगत की गहराई में प्रवेश करती है। छायावादी कविता ने अपने समय में यह कार्य किया था। संक्षिप्त रूप में छायावादी कविता के प्रदेय के निम्न बिंदु हो सकते हैं-

* छायावाद में स्त्री को सबसे पहले मानवीय दृष्टि प्रदान की गई। छायावाद से पूर्व स्त्री या तो अबला थी या देवी। स्त्री को मनुष्य रूप में स्थापित करना छायावादी कविता की एक उपलब्धि है। सुमित्रा नंदन पंत ने लिखा है-'देवी,मां, प्राण, सहचरि, प्रिये हो तुम'।

* छायावाद ने प्रकृति को आत्मीय भाव से देखा। छायावादी कविता में प्रकृति आश्रय है। यहां प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता है। छायावाद में सर्वाधिक प्रकृति केंद्रित कविताएं लिखी गईं।

* छायावादी कवितान्दोलन की एक बड़ी उपलब्धि यह भी रही कि इसने कविता में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया। खड़ी बोली की प्रतिष्ठा ने हिंदी कविता के विषय को व्यापक बनाया।

* छायावादी कविता ने हिंदी कविता को आधुनिक भाव बोध प्रदान किया। यदि छायावाद के माध्यम से व्यक्ति सत्य न आया होता तो आधुनिक जीवन बोध की प्राप्ति भी न होती।

* छायावादी कविता ने हिंदी कविता को चित्रभाषा की शैली थी। बिम्ब व प्रतीक विधान की दृष्टि से भी हिंदी कविता ने नए रूप दिए।

11.6सारांश

1-छायावाद को समझने में प्राय: आलोचक असमर्थ रहे हैं. कोई इसे व्यक्तिवादी कविता के रूप में (नामवर

सिंह) कोई रोमैंटिक (प्रेम व् सौन्दर्य की कविता- डॉ देवराज) , कोई रहस्यवाद की कविता के रूप में (

मुकुटधर पाण्डेय , महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल) , कोई शक्तिकव्य (रामस्वरूप चतुर्वेदी), कोई

नवजागरण के रूप में (डॉ बच्चन सिंह) , कोई सूक्ष्मता के रूप में (डॉ नगेन्द्र) के रूप में व्याख्यायित

करता रहा; किन्तु छायावादी कविता की समझ पन्त की आलोचना सर्वाधिक देती है. हाँ अन्य आलोचकों

की दृष्टि-आलोचना छायावाद को स्फुट रूप में विवेचित अवश्य करती है और छायावाद की समझ विस्तृत

होती है.

2- छायावाद और रहस्यवाद को बहुत दिनों तक एक समझा जाता रहा किन्तु छायावाद और रहस्यवाद एक

नहीं है, इसे स्पष्ट रूप से समझे जाने की आवश्यकता है. छायावाद मुख्यतः रोमैंटिक आन्दोलन है और

रहस्यवाद अपरोक्ष की तादात्मकता से समन्वित एक मनोवृत्ति. छायावाद की सूक्ष्मता, अपरोक्ष का आभास,

जिज्ञासा रोमैंटिक तत्व है न कि रहस्यवादी प्रवृत्ति. प्रसाद और महादेवी इसे भारतीय परंपरा में खोजते रहे,

किन्तु स्पष्ट रूप से समझ लें कि रोमैंटिक कविता में अपरोक्ष का आभास होता है और रहस्यवादी कविता

में अपरोक्ष से तादात्म्य.

3- छायावादी आन्दोलन को नए ढंग से देखे जाने की आवश्यकता इसलिए भी है कि इसकी विवेचना में रूचि-

विशेष बाधक रहा है. कोई प्रसाद को श्रेष्ठ सिद्ध करता रहा तो कोई निराला को. हालांकि हिन्दी के दो

क्लासिक समीक्षक – राम चन्द्र शुक्ल, डॉ देवराज - की दृष्टि में पन्त श्रेष्ठ छायावादी कवि हैं. मेरी

सम्मति में भी पन्त श्रेष्ठ छायावादी कवि हैं. छायावाद की प्रतिनिधि विशेषता पन्त काव्य में सर्वाधिक

प्रकट हुई है. इस प्रकार वे छायावाद की शक्ति और सीमा का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं.

4- छायावाद के सर्वश्रेष्ठ आलोचक पन्त जी हैं. किन्तु पन्त की आलोचना को पढ़े जाने की समझ हमारे पास

होनी चाहिए. पल्लव के 'प्रवेश' में छायावादी शब्दों की भरमार है-दूसरे शब्दों में कहें तो यह कि पल्लव की

भूमिका छायावादी कविता की छायावादी आलोचना है. पन्त की दूसरी छायावाद पर आलोचना

'छायावाद; पुनर्मूल्यांकन' छायावाद के आक्षेपों का प्रति-उत्तर है. एक ढंग से छायावाद के भ्रमों का निराकरण

करती आलोचना. हमें इस प्रश्न का उत्तर खोजने की आवश्यकता है कि छायावादी कविता पर इतने विस्तार

से आलोचना लिखने की बाध्यता केवल पन्त ही क्यों महसूस करते हैं? प्रारंभिक दिनों में जयशंकर प्रसाद

ने छायावाद और रहस्यवाद को लेकर विचार किया किन्तु उनकी आलोचना छायावाद के भ्रम को और पुष्ट

ही करती है.

5- छायावादी कविता आन्दोलन के सन्दर्भ में एक तथ्य को समझा जाना चाहिए कि इसका पूर्वार्द्ध और

उत्तराद्ध एक ही नहीं हैं अर्थात इसे अलग ढंग से देखे जाने की आवश्यकता है. डॉ नामवर सिंह ने इस

भेद को अनौचित्यपूर्ण कहा है , किन्तु मुझे लगता है कि इसे भी पन्त के सन्दर्भ में देखे जाने की

आवश्यकता है. छायावाद के सन्दर्भ में कुछ बातें समझने की हैं. यह बातें इसलिए भी अनिवार्य है क्योंकि

इनसे छायावाद की समझ बनाने में हमें मदद मिलती है. छायावाद के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है

कि छायावादी आन्दोलन मुख्य है या इसकी प्रवृत्ति. देखने-सुनने में एक एक ही लगता है किन्तु इसकी

व्यंजना में थोडा फर्क है. एक आन्दोलन जब चलता है तब वह किन्हीं निश्चित सिद्धांतों, मान्यताओं को

लेकर चलता है. अपने उतरार्द्ध में वह आन्दोलन धीरे-धीरे अन्य वृत्तियों-प्रवृत्तियों को भी समेत लेता है,

किन्तु वह वृत्ति-प्रवृत्ति (उतरार्द्ध के) उस आन्दोलन के मूल नहीं होते. ठीक उसी प्रकार जैसे एक कवि या साहित्यकार जब अपनी रचनात्मकता में प्रवृत्त होता है तो वह किन्ही निश्चित मान्यताओं को लेकर चलता

है. वह निश्चित मान्यताएं ही उसके व्यक्तित्व या रचना के मूल होते हैं. समय के साथ वह अपनी

रचनात्मकता को नयी दिशा देता है और अपने मूल वृत्त को विस्तृत करता है. (श्री अरविन्द के एक

उदाहरण से हम अपनी बात को समझाने का प्रयास करेंगे. श्री अरविन्द ने अपने बालकाल में एक कविता

लिखी थी, जिसमें प्रेम और मृत्यु के द्वंद्व को लेकर कुछ पंक्तियाँ रची थीं. युवा काल में इसी विषय पर

वे कविता रचते हैं और अपनी अंतिम कृति सावित्री में वे इसे ऊंचाई पर ले जाते हैं. इसी प्रकार रामचंद्र

शुक्ल के 'कविता क्या है' निबंध को लें, जिसमें वे अपनी मान्यताओं को विस्तृत करते चले हैं.) इस

प्रक्रिया में हो सकता है रचनाकार अपने मूल वृत्त का विस्तार करे और यह भी हो सकता है कि वह अपने

मूल वृत्त से इतर की वृत्तियों-प्रवृत्तियों को भी अपनी रचनात्मकता में शामिल करे. हाँ दोनों स्थितियां हो

सकती हैं, किन्तु उसके रचना-प्रस्थान या उसके रचना-आन्दोलन के समय की वृत्तियाँ ही उस रचनाकार का

मूल व्यक्तित्व होती हैं. यानी यदि रचना आन्दोलन के सन्दर्भ में बात करें तो यह कि एक रचनान्दोलन

अपनी जिस सैद्धांतिक मान्यताओं को लेकर चलता है, उठ खड़ा होता है, वह उसका मूल व्यक्तित्व होता

है.... और इस व्यक्तित्व से जुड़ने वाला रचनाकार ही उसका प्रतिनिधि रचनाकार माना जाना चाहिए. कहने

का अर्थ यह है कि छायावादी आन्दोलन के वृत्त से संचालित वृत्तियाँ ही छायावाद का मूल हैं. इसकी

प्रवृत्तियों-विशेषताओं में विस्तार हो सकता है, इसलिए वे द्वितीयक हैं. यह स्पष्ट रूप से समझने की

आवश्यकता है. छायावादी आन्दोलन और उसकी प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में बात करें तो चिंतन की सूक्ष्मता,

अस्पष्टता, छायाभास् , व्यक्तिवाद, प्रेम व सौन्दर्य, कथन की भंगिमा , विद्रोह , प्रकृति का आलंबन रूप

में चित्रण हैं. बाद के दिनों में इसमें सामजिक वैषम्य , संघर्ष, तनाव , वर्गीय अंतर्विरोध, सभ्यता

संघर्ष...आदि भी आ जाते हैं, जो इसकी विशेषता होते हुए भी छायावादी आन्दोलन की विशेषता नहीं हैं.

डॉ नामवर सिंह ने अपनी छायावाद पुस्तक में इस बात पर आपत्ति उठाई है कि 'छायावाद के भीतर

छायावादी और अन्य प्रवृत्तियों का भेद सही नहीं है'. दरअसल यहाँ नामवर सिंह सत्य से मुंह मोड़ रहे हैं.

तारसप्तक के माध्यम से प्रयोगवादी आन्दोलन हमारे सामने आया किन्तु वही दूसरा सप्तक नयी कविता

में रूपांतरित हो गया. एक ही कवि अपने आन्दोलन के पूर्वार्द्ध, उतरार्द्ध या आन्दोलन की समाप्ति के

बाद एक ही ढंग से रचना नहीं करता, इसे विविध उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता है. अज्ञेय या

पन्त की उतरार्द्ध काल की रचनाओं को हम प्रयोगवादी या छायावादी कैसे कह सकते हैं? या निराला की

1936-38 के बाद की रचनाओं को हमें छायावादी कहने में संकोच होगा. हमारे कहने का अर्थ यह है कि

आन्दोलनकारी साहित्य का विकास-क्रम सपाट ढंग से नहीं चला करता.

11.7 शब्दावली

आच्छादित- किडी वास्तु,विचार के प्रभाव से मन,विचार का घिर उठना

सार्वभौमिक- ऐसा सत्य, जो देश-काल की सीमाओं से परे हो

अन्तःछवियों- हृदय की आंतरिक अवस्था का प्रतिबिम्बन

नवजागरण- दो संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक जागरण

संध्या भाषा- सिद्ध कविता में प्रतुक्त रहस्यात्मक भाषा शैली

11. 8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. ग

2. ग

3. क

7. ख

5. क

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. छायावाद का पतन- डॉ देवराज

2. महादेवी-दूधनाथ सिंह

3. हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी-नन्ददुलारे बाजपेयी

7. क्रांतिकारी कवि निराला-बच्चन सिंह

5- निराला की साहित्य साधना, **1,2-** रामविलास शर्मा

6- आत्महंता आस्था-दूधनाथ सिंह

7- छायावाद-नामवर सिंह

8- हिंदी साहित्य का इतिहास-रामचंद्र शुक्ल

9- छायावाद की प्रासंगिकता-रमेशचंद्र साह

11. 10 निबंधात्मक प्रश्न

1- छायावादी कविता की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिये।

2- छायावादी आलोचना पर विचार कीजिये।

3- छायावादी कवितान्दोलन के प्रदेय को रेखांकित कीजिये।

इकाई 12 -जयशंकर प्रसाद:पाठ एवं आलोचना (आशा,श्रद्धा,लज्जा और आनन्द सर्ग)

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 कवि परिचय (व्यक्तित्व और कृतित्व)
  12.3.1 जीवन-परिचय, परिवेश और व्यक्तित्व
  12.3.2 कवि-कर्म
12.4 कामायनी : संक्षिप्त परिचय
12.5 काव्य-वाचन और ससन्दर्भ व्याख्या
  12.5.1 ऐतिहासिक और अतीत के गौरव के प्रति श्रद्धा
  12.5.2 प्रकृति सौन्दर्य
  12.5.3 प्रेम भावना
  12.5.4 नारी भावना
  12.5.5 नियति निरूपण
  12.5.6 मैत्री और करूणा का स्वर
  12.5.7 आनन्दवाद और समरसता की अभिव्यक्ति
  12.5.8 वसुधैव कुटुम्बकम
12.6 प्रसाद-काव्य का संवेदनागत पक्ष
12.7 काव्य का शिल्पगत पक्ष
  12.7.1 काव्य-भाषा
  12.7.2 अप्रस्तुत विधान
  12.7.3 बिम्ब विधान
  12.7.4 छन्द विधान
12.8 सारांश
12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

द्विवेदी युग आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक ओर समाज-सापेक्षता को प्रश्रय दे रहा था, दूसरी ओर देश-प्रेम की रागिनी अपने मादक स्वरों में जन-मन को आप्लावित करने लगी थी। और दूसरी ओर ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ले रही थी। यह एक प्रकार से रीतिकालीन काव्य की प्रतिक्रिया थी और तत्कालीन परिस्थितियों की सहज पुकार। द्विवेदी युग के पश्चात् हिन्दी काव्य साहित्य ने एक अभिनव काव्य-विधा के दर्शन किये जो छायावाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस विधा में हम विषय-विष्ठता से हटकर आत्मनिष्ठ हुए। रूप विवरण के स्थान पर भावाभिव्यंजना की ओर प्रवृत्त हुए और सामान्य अलंकारिकता की अपेक्षा शब्दों में नवीन अर्थ, अर्थो में नवीन चेतना, चेतना में अभिनव हार्दिक अनुभूतियों और हार्दिक अनुभूतियों को समाविष्ट करने लगे। कविवर प्रसाद के काव्य में हमें छायावाद की यही विशेषताएं विशेष रूप परिलक्षित होती हैं। जयशंकर प्रसाद छायावाद के उद्भावक, युग के नियामक और असाधारण व्यक्तित्व के धनी बनकर काव्य जगत में अवतरित हुए। प्रसाद जी ने हिन्दी कविता को द्विवेदीयुगीन कविता की रूखी एवं उपदेशात्मक काव्य शैली से मुक्त करे सरस एवं अनुभवजन्य बनाया। उनका सम्पूर्ण काव्य हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत है जिसमें प्रेम एवं सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनकी काव्य-संवेदना का मुख्य गुण है।

उनके काव्य में जातीय बोध विद्यमान है। उन्होंने अतीत की परम्परा का सार्वजनिक एवं युग-संदर्भो के अनुरूप उपयोग करते हुए छायावाद को हमारी जातीय परम्परा का काव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

प्रसाद की प्रतिभा का उत्तमांश 'कामायनी' के रूप में हमारे सामने है। यह माना कि वह छायावाद का उपनिषद और जीवन काव्य है। उसमें प्रतिपादित चिन्तन हमें राह दिखाता है और आज अपनाये जा रहे जीवन-क्रम पर पुनर्विचार के लिए आमंत्रण देता है। प्रसाद का काव्य विविधता लिये हुए है। हिन्दी गीति काव्य-परम्परा को उन्होंने युगानुरूप नवीनता एवं सरसता से सम्पन्न किया। गीत, प्रगीत, आख्यानपरक लम्बी कविताओं के साथ ही प्रबन्ध एवं मुक्तक सभी तरह की काव्य-शैलियों को अपनाते हुए उन्होंने हिन्दी कविता का फलक व्यापक बनाया। काव्य और संगीत का समन्वय प्रसाद की काव्यकला का एक विशेष गुण है। इस प्रकार प्रसाद का काव्य भाव, रस, रचना-विधान, काव्यभाषा, बिम्ब, प्रतीक, संगीत और लय की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में अद्वितीय है। उन्होंने युगीनपरिस्थितियों से काव्य के निर्माणकारी तत्वों का संकलन करके, पारिवारिक संस्कारशीलता से शैव दर्शन का मंत्र पाकर, इतिहास, दर्शन और संस्कृति से गृहीत जीवन के निर्मायक तत्वों को भावना के रंग में रंगकर जिस मानवता की विजयगाथा हिन्दी पाठकों को सुनाई है वह उनके काव्य, नाटक, कहानी और उपन्यास साहित्य में आद्यन्त विद्यमान है और उनकी परम्परा का विकास आगे चलकर अनेक कवियों में विविध रूपों

में होता देखा जा सकता है। इस इकाई के माध्यम से हम जयशंकर प्रसाद के काव्य की प्रमुख विशेषताओं से परिचित होंगे।

12.2 उद्देश्य

यह जयशंकर प्रसाद के पाठ और आलोचना विषय पर केन्द्रित है। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप -

- कविवर जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- जीवन परिवेश व साहित्यिक पृष्ठभूमि रचनाकर्म को प्रभावित करती है, प्रसाद के काव्य के अध्ययन से इस तथ्य को समझ सकेंगे।
- प्रसाद कृत कालजयी कृति कामायनी के कथानक की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कामायनी के महत्वपूण सर्गों से व्याख्या योग्य पदों की भावात्मकता व कलात्मकता को समझ कर व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रसाद काव्य की संवेदनागत और शिल्पगत चेतना का अध्ययन कर सकेंगे।
- छायावाद कवियों में प्रसाद के स्थान और उनके योगदान को समझ सकेंगे।

12.3 कवि परिचय

12.3.1 जीवन परिचय परिवेश और व्यक्तित्व

छायावाद शिरोमणि प्रसाद जी का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार 'सुंघनी साहू' में माघ शुक्ला दशम् सं. 1946 वि. (सन् 1889 ई.) को हुआ। कलाकारों और साहित्यकारों का इनके परिवार में विशेष मान था। काशी-राजघराने से भी प्रसाद के परिवार के अच्छे सम्बन्ध थे। जयशंकर और हर-हर महादेव का अभिवादन काशीराज के अलावा लोग इन्हीं के परिवार वालों से करते थे। अपने बचपन में प्रसाद जी ने बहुत वैभव का जीवन देखा था। प्रसाद जी ने काशी के क्वींस कॉलेज में आठवीं तक की शिक्षा विधिवत् रूप में प्राप्त की थी। उन्होंने कई शिक्षकों से संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू-फारसी आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। प्रसाद जी बचपन से ही प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने नौ वर्ष की अवस्था में ही 'लघु-कौमुदी' और अमरकोश जैसे ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिए थे और उन्होंने बचपन से ही काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी।

प्रसाद जी अन्तर्मुखी एवं सौम्य प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्हें काव्य-संस्कार कुछ अपने परिवार के अभिजात एवं सुसंस्कृत वातावरण से तथा कुछ शिक्षकों-मित्रों के साहचर्य से प्राप्त हुए

थे। अपना व्यवसाय करते हुए अवकाश मिलने पर वे सदा कुछ न कुछ लिखते-पढ़ते रहते थे। उनकी दुकान पर साहित्यिक मित्रों की बैठकें होती रहती थी।

सुख-दुख, धूप-छांव की तरह होते हैं। प्रसाद जी ने भी अपने जीवन में जितना सुख भोगा उतने ही अभाव भी उनके साथ रहे। पिता कि मृत्यु के पश्चात चाचा से संयुक्त परिवार की संपत्ति के बंटवारे को लेकर उनके भाई को मुकदमा भी लड़ना पड़ा। बढ़ते हुए घर खर्च एवं व्यापार में घाटे के कारण प्रसाद जी के परिवार पर कर का बोझ बढ़ गया। इसी बीच उनकी माता का देहान्त हो गया। उन्हें अपने तीन विवाह भी स्वयं के प्रयासों से ही करने पड़े। ऐसी विषम परिस्थितियों में सृजन कर्म निरन्तर चलता रहता था। एक प्रकार से प्रसाद जी का संपूर्ण जीवन संघर्ष और विडम्बनाओं की करूण कथा ही था।

12.3.2 कवि-कर्म

प्रसाद जी का रचनाकर्म प्रेम-सौन्दर्य नैतिकता, आनंद उदात्तता, रहस्यवाद, मानववाद उच्च आदर्शों से सराबोर था। प्रसाद जी ने बाल्यावस्था में ही कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1906 में भारतेन्दु पत्रिका में उनकी प्रथम कविता का प्रकाशन हुआ था लेकिन उनकी कवि प्रतिभा की वास्तविक पहचान सन् 1909 में प्रकाशित 'इन्दु' पत्रिका से हुई जो उनके भान्जे अम्बिकादत्त गुप्त द्वारा सम्पादित होती थी। उनकी ब्रजभाषा व खड़ी बोली की आरम्भिक कविताओं का स्वरूप और उनके प्रारम्भिक लेख 'इन्दु' पत्रिका में ही प्रकाशित हुए थे।

प्रसाद मूलतः कवि हैं और इस इकाई में भी उनके काव्य पर ही चिन्तन किया गया है। प्रसाद जी का कवि-कर्म प्रेम सौन्दर्य प्रकृति-चित्रण, संस्कृति, दर्शन, कल्पना और अनुभूति का विनियोजन है। चित्राधार (1975 वि. सं.), काननकुसुम (1918 ई.), झरना (1918 ई.), आंसू (1926 ई.), लहर (1935) और कामयनी (1936) उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह है। उनकी प्रारम्भिक काव्य यात्रा का सोपान है - चित्राधार और कानन-कुसुम। 'झरना', 'आंसू' 'लहर' और सर्वप्रमुख काव्य 'कामायनी' उनके विकसित और प्रौढ़ कृतित्व परिचायक है।

प्रसाद जी का पहला प्रकाशित संग्रह 'चित्राधार' था जिसमें उनकी ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली-दोनों ही तरह की रचनाएं संगृहीत थी। चित्राधार कविता संग्रह की कविताए उनके मध्यम मार्ग को दर्शाती है। कभी अतीत और कभी वर्तमान की ओर झुकाव है तो वे कभी परम्परा के प्रति आसक्त और उससे विद्रोह करते हुए नए पथ की ओर अग्रसर होते है और कभी इन सबसे उबकर स्वच्छंद प्रगीत रचना की ओर। वस्तुतः प्रसाद की भावी रचनाओं के लिए मनोभूमि यहीं से प्राप्त होती है।

'कानन-कुसुम':- प्रसाद की काव्य मात्रा का द्वितीय सोपान है। 'कानन-कुसुम' सहज स्वाभाविक और प्राकृतिक रूप रचना की प्रतीक कविताएं हैं और ये काव्य संग्रह के नाम को सार्थक करती है। यह खड़ी बोली की कविताओं का पहला स्वतंत्र संग्रह है। इस संकलन में प्रकृतिपरक, भक्तिपरक, विनयपरक और आख्यानपरक कविताएं संकलित है। 'चित्रकूट', 'भरत' 'कुरूक्षेत्र', 'वीर बालक' और श्री कृष्ण जयन्ती, आदि पौराणिक व आख्यानपरक कविताओं में प्रमुख है। इनकी कविताओं में सौन्दर्य, श्रृंगार व प्रकृति के बिम्बांकन में मर्यादा व शालीनता सदैव चित्रित होती हैं शिल्प में पूर्व संग्रह से किंचित परिवर्तन दिखाई देता है। भावमयी कल्पना के साथ विनयभाव, प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण के साथ अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की नवीनता 'कानन-सुसुम' की कविताओं की विशेषताएं थीं, जिनसे आगे चलकर छायावाद के रूप में प्रतिष्ठित होने वाले काव्यान्दोलन की पृष्ठभूमि का अंदाज लग सकता है।

इसी दौर में प्रसाद जी ने 'करूणालय', महाराणा का महत्व, और प्रेमपथिक जैसी आख्यानक रचनाएं लिखी। 'करूणालय गीतिनाट्योपरक काव्य है। यह प्रथम गीतिनाट्य माना जाता है। काव्य में अभिव्यक्त 'करूणा' की भावना के दर्शन इस कृति में होते है। नर-बलि का विरोध करते हुए तत्कालीन समाज की विविध स्थितियों का चित्रण करने की भावना इस काव्य में है। इसमं कला-शिल्प की दृष्टि से अतुकांत छन्द का प्रयोग है। 'महाराणा का महत्व' का प्रकाशन सन् 1914 में हुआ। ऐतिहासिक आख्यानक खण्डकाव्य में प्रसाद ने महाराणा प्रताप, रहीम और अकबर से सम्बद्ध कथानक लेकर पांच दृश्यों में विभक्त कथा को पूर्णतः नियोजित एवं सुसम्बद्धित किया है। नाटकीयता, चरित्रोद्घाटन क्षमता, वातावरण निर्माण और कलात्मक स्वच्छंदता के वरण के कारण इस कृति का महत्व सर्वाधिक है। प्रेमाख्यानक के आधार पर रचित प्रेमपथिक भी एक उल्लेखनीय रचना है जिसमे प्रेम के पावन और निष्कलुष रूप को अभिव्यक्ति मिली है। इसमें कवि का जीवनदर्शन और सत्य भी कलात्मक शैली में अभिव्यक्त हुआ है।

परम्परागत भावबोध एवं काव्यशिल्प को तोड़ते हुए प्रकृति, प्रेम एवं सौन्दर्य-दृष्टि से ओतप्रोत स्वच्छंदतावादी काव्य चेतना को प्रमुखता से प्रस्तुत करने वाला प्रसाद जी का पहला छायावादी काव्य-संग्रह 'झरना' (1918 ई.) था, जिसमें छायावादी गीतिशैली से ओतप्रोत रचनाएं संगृहीत थी। इसी कारण आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसे छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार माना है। 'झरना' प्रेम व सौन्दर्य की अनुभूतियों के अनवरत् प्रवाह को ध्वनित करता है। छायावाद के समस्त लक्षण इस संकलन में है।

छायावादी काव्य चेतना की स्वच्छन्दतावादी मुक्तक शैली की प्रसाद की एक और रचना 'आंसू' है। जिसमें वेदना की घनीभूत अनुभूति व्यक्ति हुई है। 'झरना' में प्रणयानुभूति का अविरल प्रवाह था तो आंसू में प्रेमजनित घनीभूत पीड़ा की मादक तरंगे। आंसू में अभिव्यक्त वेदना की घनता के मूल में जो रूप-सौन्दर्य है, वह यौवन के मद की लालिमा से रंजित और काली जंजीरों

से बंधे हुए विधु का सौन्दर्य है तभी तो ''अभिलाषाओं की करवट फिर सुस्त व्यथा का जगना, सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना'' जैसी पंक्तियां लिखी गयी हैं। वेदना-विचलित काव्य का शिल्प-सौष्ठव भी अनुपम है। भाषा में लक्षणा व्यंजना चित्रोपम शब्द और संवेद्यता विद्यमान हैं। प्रसाद जी का 'लेवल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे' जैसे वैयक्तिक बोध की गीतिपरक मुक्तक कविताओं का संग्रह 'लहर' है। इनमें वैयक्तिकता होते हुए भी तटस्थता का भाव विद्यमान है। अशोक की चिंता, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण पेशोला की प्रतिध्वनि तथा प्रलय की छाया आदि इतिहास विषयक कविताएं इसमें संकलित है। रागात्मकता लयात्मकता, संगीतात्मकता के साथ अनुभूतियों की संवेदनात्मक व्यंजना लहर के गीतों की विशिष्टताएं है।

कामायनी (1936) प्रसाद जी कृत अंतिम महाकाव्यात्मक रचना है। इसमें कवि ने एक प्राचीन मिथक के माध्यम से मानव जीवन और मनोविज्ञान की जटिलताओं को कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। इस कृति का परिचय इसी इकाई में अगले शीर्षक में दिया जा रहा है।

12.4 कामायनी : संक्षिप्त परिचय

प्रसाद जी ने अपने इस महाकाव्य द्वारा जहां अमूर्त जगत को मूर्तिमान किया है वहां उसने मानवता को एक संदेश भी दिया है। आज का मानव संघर्ष के घोर रूप का अनुभव करता है। विषमता, उच्च नीच का भेद, रंग का उत्कर्षाकर्ष मानव-मानव के बीच में गहरी खाई खोद रहे हैं जिसके कारण नित नूतन समस्याएं हमारे सम्मुख उपस्थित होकर जीवन के संहार में तत्पर हो रही है। आज का पीड़ित मानव यदि समन्वय और साम्य की भित्ति पर अपना जीवन यापन करने लगे तो उसे शीघ्र ही कष्टों से त्राण मिल सकता है।

सब भेद भाव भुलवा कर
सुख दुख को दृश्य बनाता।
मानव कह रे यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता।

इस प्रकार काव्य में कुल 15 सर्ग है और उनका नामकरण भी एक विशेष क्रम से हुआ है जिसमें 'चिन्ता' सर्ग से काव्य का सूत्रपात होता है - वैसे 'चिन्ता' भाव विकास की प्रथम भावभूमि भी है। यही भावभूमि क्रमशः आशु, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वद, दर्शन, रहस्य आदि परिणत होती हुई अपनी समान्वित क्रिया के परिणाम स्वरूप अन्त में आनंदवाद में पर्यवसित हो जाती है। मनोभावों का इतना सफल चित्रण इस युग के अन्य किसी कवि की कृति में परिलक्षित नहीं होता। यहां कथा-वस्तु सूक्ष्म पात्रों की संख्या भी कम है परन्तु

कवि का चेतन-मानस प्रमुख रूप से जागरूक है जो, आदि से अन्त तक पाठकों की चेतना को भी जगाए रखता है।

काव्य वस्तु का प्रारम्भ जलप्लावन की घटना से होता है। यह जलप्लावन एक प्रकार का खण्ड प्रलय था जिसमें देवजाति समाप्त हुई। केवल मनु बचे। यह मनु श्रद्धा के संयोग से आगामी मानव वंश के निर्माता हुये। खण्ड प्रलय का जो चित्र कामायनी के प्रथम सर्ग में खींचा गया है वह अत्यन्त भयावह है। देवजाति सुख समृद्धि में लीन होकर असीम विषय विलास की आखेट बनी। कवि ने देव जाति के इस विलास का भी सम्पूर्ण चित्र अंकित किया है। देव जाति का उत्कर्ष ज्ञान-विज्ञान का उत्कर्ष था और जैसे आज वैज्ञानिक जगत प्रलय की कगार पर खड़ा है, अणुबम, परमाणु बम जैसे संहारात्मक अस्त्रों का विपुल भण्डार निकट प्रलय की सूचना दे रहा है, वैसा ही देव जाति के इतिहास में भी कोई समय आया था। प्रसाद जी ने लिखा है- ''सुख केवल सुख का वह संग्रह केन्द्रीभूत हुआ इतना। छायापथ में नव तुषार का सघन मिलन होता जितना।।' जिन देवों और अप्सराओं के हृदयों में मणियों के दीपक जलते हों, दम्भ परकाष्ठा पर पहुँच गया हो, विलास की बाढ़ आ गई हो उसका सर्वस्व यदि प्रलय यज्ञ का हविष्य बनता है जो इसमें आश्चर्य ही क्या?

प्रसाद ने जिस जलप्लावन का इतना भयंकर वर्णन चिन्ता सर्ग में किया है उसका ऐतिहासिक आधार है। शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा कई पुराणों में जलप्लावन का वर्णन मिलता है। सम्भवतः जलप्लावन की घटना भूमण्डल की सभी जातियों को विदित थी और सभी ने उसका अपने-अपने ढंग से वर्णन भी किया है। इस जलप्लावन का ऐतिहासिक तथा पौराणिक आधार तो है ही, भूगर्भशास्त्रीय आधार भी उपलब्ध हो रहा है। हिमालय की निर्मिति में कुछ ऐसे तत्व पाये गये हैं जो उसके निर्माण से पूर्व की अवस्था पर प्रकाश डालते हैं। प्रसाद ने इन सभी उपलब्ध सामग्री का काव्याचित प्रयोग अपनी 'कामायनी' में किया है। जिस सारस्वत प्रदेश की चर्चा कामायनी के स्वप्न सर्ग में है वह सरस्वती तटवर्ती प्रदेश था। सरस्वती अब भूगत है, परन्तु उसका प्रदेश पंचनद के नाम से आज भी विख्यात है। मनु ने इस प्रदेश को वैज्ञानिक आधारों पर धनधान्य सम्पन्न बनाया और प्रजातंत्र का बीजारोपण किया।

प्रसाद जी ने कामायनी में जिस महामत्स्य द्वारा मनु की नौका को हिमगिरि तक ले जाने और मनु को कतिपय उपकरणों के साथ बचाने का वर्णन किया है, उसका उल्लेख हमारे प्राचीन साहित्य में कई स्थानों पर है। प्रसाद ने मनु के साथ उत्तर गिरि के स्थान को ही सम्बद्ध किया है और गान्धार प्रदेश का उल्लेख भी है। श्रद्धा कामायनी है, काम की पुत्री अथवा काम गोत्रजा है और गान्धार प्रदेश की रहने वाली है।

महाकाव्य का प्रारम्भ चिन्ता सर्ग में जिस जलप्लावन और विभीषिका से हुआ आशा सर्ग में धीरे-धीरे जल-प्लावन समाप्त हुआ। हिमालय तटवर्ती सामुद्रिक जल वाष्प बन-बन कर

उड़ने लगा और जहां जल था, वहां स्थल के दर्शन होने लगे। मनु भी देव-दम्भ का प्रायश्चित करने के लिये वासना जगत से निकलकर तपश्चर्यापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। यज्ञ साधना का प्रतिफल उन्हें श्रद्धा के रूप में प्राप्त हुआ जिसने मनु के साथी के रूप में भावी मानव-संतति का बीजारोपण किया।

देवों की संस्कृति को विनष्ट करने वाले असुर भी जीवित थे। किलात और आकुलि उन्हीं के पुरोहित थे। असुर अैर दानव, राक्षस और पिशाच हिसा में विश्वास रखते थे, वन्य मृगों पर उनकी दृष्टि गई एक मृग श्रद्धा ने भी पाल रखा था। किलात और आकुलि ने मनु को हिंसा के लिए उकसाया। यज्ञ में इस पालित पशु का मांस आहुति के रूप में डाला गया। मांस-लोलुप किलात और आकुलि के साथ मनु भी मांसाहारी बन गये। बस, यहीं से मनु और श्रद्धा के हृदय पृथक हुए, जिसकी चरम परिणति कुमार के उत्पन्न होने पर हुई। श्रद्धा कुमार की देख-रेख में अधिक समय देने लगी। मनु को अपनी ओर से यह अपकर्षण खला और वे एक दिन चुपचाप श्रद्धा को सोती छोड़कर चल दिये। मनु की यह मानसिक स्थिति उसे सारस्वत प्रदेश में पहुंचाती है, जहां इड़ा का राज्य था। प्रसाद ने वर्णन किया है कि इड़ा का सारस्वत प्रदेश मनु के द्वारा विज्ञान-विधियों पर समुन्नत हुआ। यन्त्रों के आधार पर कृषि-कर्म आगे बढ़ा, उद्योग-धन्धे विकसित हुए, प्रजा धन धान्य से सम्पन्न बनी और नियमों की कर्कश श्रृंखला में सभी अधीन हो गये। परन्तु मनु अपनी प्रवृति के अनुसार अपने लिए अनियंत्रित एवं अबाध अधिकार चाहते थे। परिणामस्वरूप विद्रोह हुआ और मनु घायल होकर भूमि पर गिर पड़े। श्रद्धा मनु को तलाश करते हुए सारस्वत प्रदेश पहुँच गयी। मनु और श्रद्धा का पुनःमिलन होता है। श्रद्धा अपने पुत्र मानस को सारस्वत प्रदेशवासियों की सेवा के लिए छोड़ने को तत्पर होती है। प्रसाद ने इस स्थल पर वत्सल रस की भी झलक दिखा दी है। श्रद्धा अपने पुत्र से कहती है -

''सबकी समरसता कर प्रचार,

मेरे सुत सुन मां की पुकार''।।

मनु पश्चाताप-सा करते हुए कहते हैं - 'अचिते, तुमने अपना सब कुछ खो दिया और अपने एकांकी पुत्र को भी ऐसे मनुष्यों के हाथों में सौंप दिया, जो क्रूर हैं, हिंसक हैं और जिनसे मैं अपने प्राण बचा कर भागा था। श्रद्धा प्रत्युत्तर देती है कि सारस्वत प्रदेश के तुम ऋणी थे अब तुम्हारा कुमार सारस्वत प्रदेश को अपना ऋणी बना लेगा। तुमने सारस्वत प्रदेश छोड़ा और मैंने कुमार को सारस्वत प्रदेश की सेवा में समर्पित कर दिया। अब हम दोनों ही मुक्तात्मा जैसी स्थिति में हैं। प्रसाद ने इसी स्थल पर परमशिव के दर्शन करने वाले मनु और श्रद्धा का का चित्र अंकित किया है।

अन्तिम सर्ग आनन्द में प्रसाद जी इड़ा, कुमार और सारस्वत प्रदेश के निवासियों को वहां ले जाते हैं जहाँ श्रद्धा और मनु मानसरोवर के समीप एकान्त-शान्त कैलास पर्वत पर आनन्दमग्न अवस्था में विराजमान हैं। महाकाव्य में वर्णित है कि तीर्थयात्रा में वृषभ साथ है जो धर्म का या पुण्य का प्रतीक माना गया है। यात्रियों का दल श्रद्धा के समीप पहुंचता है और कहता है कि हम यहां अपने पाप धोने के लिये आये हैं।

कामायनी का यह दृश्य जिसमें श्रद्धा की गोद में बैठकर कुमार एक अभाव को पूर्ण कर रहा है और इड़ा का सिर श्रद्धा के चरणों में झुका है, अत्यन्त रोचक और प्रेरणास्पद है। प्रसाद ने यहाँ श्रद्धा व इड़ा के मिलन में माध्यम से हृदय और बुद्धि का संगम दर्शाया है जो कामायनी का आधार स्थल है।

प्रसाद का यह कथन सत्य है कि ''जब तक मानव इड़ा या बृद्धि के विकास तक पहुंचता है, तब तक पाप उसका पीछा नहीं छोड़ते। पर, जब बुद्धि दैवी और यज्ञिय बन जाती है, तब वह पापीयसी नहीं रहती। बुद्धि के ऊपर मेघा तथा प्रज्ञा के स्तर हैं। प्रज्ञा विशुद्ध प्रकाश की पवित्र अवस्था है। श्रद्धा का पूरा सहयोग प्रज्ञा के साथ ही रहता है।''

वस्तुतः कामायनी हिन्दी का एक युगान्तरकारी महाकाव्य है। वह इड़ा और श्रद्धा के सम्मिलन द्वारा आज की विशद-जर्जर मानवता को जो समरसता का संदेश दे रहा है, वह अपने में एक अद्भुत क्रांतिकारी संदेश है। आज नहीं तो कल, मानवता इसी समरसता-श्रद्धा तथा बुद्धि अथवा हृदय और मस्तिष्क के समन्वय द्वारा ही सुख एवं शान्ति का अनुभव कर सकेगी।

12.5 काव्य वाचन और ससन्दर्भ व्याख्या

उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई;

उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यावतरण छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की अमर कृति कामायनी के आशासर्ग से उद्धृत है। इससे पूर्व महाकाव्य के प्रथम सर्ग चिन्ता में जलप्लावन की घटना का चित्रण है, जिसमें देव जाति समाप्त हुई। खण्ड प्रलय का जो चित्र कामायनी के प्रथम सर्ग में चित्रित है वह अत्यन्त भयावह व यर्थाथ लगता है। देवजाति सुख में लीन होकर असीम विषय विलास की आखेट बनी। यह सत्य कथन है कि दुःख के बाद ही सुख का आगमन होता है। जलप्लावन समाप्त हुआ। प्रस्तुत पद्यांश में नवीन सूर्योदय के साथ आस्था वादी भाव का चित्रण है।

शब्दार्थ : सुनहले तीर: सुनहरी किरणें, जय-लक्ष्मी: विजय की देवी, कालरात्रि: प्रलय का अंधकार, पराजित: हारी हुई, अंतर्निहित: छिपजाना।

व्याख्या : कामायनी के चिन्तासर्ग के अंतिम पद में जयशंकर प्रसाद लिखते है कि हिमालय तट का भीषण जलसंघात वाष्प बनकर उड़ने लगा और जहां जल था वहां स्थल के दर्शन होने लगे और प्रलय निशा की समाप्ति प्रतीत हो रही थी। आशा सर्ग के इस प्रथम पद में चित्रित है कि जलप्लावन की समाप्ति के बाद अंधकार छट गया। प्रातःकालीन सूर्योदय या उषा सुनहले तीर बरसती विजय की देवी के समान प्रकट हुई है और उधर प्रलय की रात्रि (अंधकार) हार मानकर धरती के भीतर जल में विलीन हो गयी। जल में भी अंधकार है तो इस प्रकार अंधकार अंधकार में विलीन होकर अस्तित्वहीन हो गया।

विशेषः कवि ने यहां युद्ध का चित्रण किया है। एक पक्ष कालरात्रि है तो दूसरा पक्ष उषा। प्रातःकालीन सूर्य की सुनहरी किरणें मानो तीर है, उषा ने किरणों के नुकीले तीर बरसाकर कालरात्रि को पराजित कर दिया और अंत में वह जल में डूब मरी इस प्रकार उषा विजयिनी हो गई।

- उपमा अंलकार द्वारा कवि ने उषा को जयलक्ष्मी के समान माना है और रात्रि को शत्रु योद्धा के रूप में।
- इस पद में अंधकार पराजय का और प्रकाश विजय का प्रतीक है।

देव न थे हम और न ये है, सब परिवर्तन के पुतले;

हाँ कि गर्व-रथ में तुरंग सा; जितना जो चाहे जुत ले।

प्रसंग : आशा सर्ग के इस पद में मनु की चेतना आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होती है। मनु सोचते है कि इस सृष्टि को संचालित करने वाला कोई ऐसा परम पुरूष है जिसके आगे सूर्य, चन्द्र, पर्वत और वरूण सब नगण्य है। पर वह है कौन? इस संदर्भ में मनु का विस्मय व चिन्तन बढ़ता जाता है।

व्याख्या : मनु चिन्तन करते है कि हम जो स्वयं को देवता कहते थे वह सत्य नहीं, फिर प्रलय क्यों हुआ? सूर्य, चन्द्र-वरूण आदि को भी देवता समझते थे वह भूलवश ही। न तो आकाश में दिव्य शक्तियाँ अमर है और न हम देवजाति। सब परिवर्तनशील, अस्थिर और नश्वर है। हाँ यह दूसरी बात है कि जैसे रथ को खींचने वाला थोड़ा यह समझ ले कि रथ उसकी ताकत से चल रहा है उसी तरह हम अपने अभिमानवश यह समझ बैठे कि संसार हमारी शक्ति पर निर्भर है। हम इस अभिमान रूपी रथ में घोड़े के समान जुते हुए हैं।

विशेष :

- परिवर्तनशीलता व नश्वरता शाश्वत सत्य है।
- यहाँ पर परम सत्ता की ओर संकेत है जो ब्रह्मण्ड का शासक है। घोड़ो को जैसे चाबुक चलाता है उसी प्रकार इन सब को भी किसी महाशक्ति के नियंत्रण में रहना पड़ता है उसकी इच्छानुसार ही हम कर्म से संचालित होती है। शासक देव नहीं वरन् वह परम सुन्दर सत्ता है।
- यहाँ पर प्रसाद ने नियति का निरूपण और उसकी सही व्याख्या की है।

आह! वह मुख पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम;

अरूण, रवि मण्डल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम।

प्रसंग : प्रस्तुत काव्य पंक्तियां छायावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित महाकाव्य कामायनी के श्रद्धा सर्ग से उद्धृत है। महाप्रलय के उपरान्त परम सत्ता का चिन्तन करते हुए चिन्ताग्रस्त मनु के मन में आशा का संचार होता है। तपस्या यज्ञ के कार्य को सम्पन्न कर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में मनु को अपने अभावपूर्ण जीवन नजर आता है और वे एक साथी की कल्पना करने लगते हैं। एक दिन गांधार देश की युवती श्रद्धा घूमती हुई अचानक मनु की गुफा के पास पहुँच जाती है और मनु से परिचय प्राप्त करने लगती है। उस अनुपम सुन्दरी को एकान्त स्थल पर अप्रत्याशित रूप से उपस्थित हुई देखकर मनु चकित हो जाता है। उसके रूप सौन्दर्य को देखकर उनके मन में जो कल्पनाएं जगती है उन्हीं का बिम्बग्राही चित्रण यहाँ हुआ है।

शब्दार्थ : व्योम - आकाश, अरूण - लालिमायुक्त, छविधाम - सौन्दर्य महल

व्याख्या : आह! श्रद्धा के उस सुन्दर मुख का वर्णन कैसे किया जाए। सूर्यास्त अर्थात संध्या समय पश्चिम के आकाश में जब काले बादल घिर आते है और उन्हें चीरता हुआ लालिमा से युक्त सूर्यमण्डल झाँकता हुआ सौन्दर्य महल जैसा प्रतीत होता है वैसा ही श्रद्धा के काले बालों के बीच झाँकता हुआ उसका चेहरा था - दैदीप्यमान कामनापूर्ण और मोहक।

विशेष :

- अरूण रवि श्रद्धा के मुख के लिए तथा घनश्याम उसके बालों के लिए प्रयुक्त हुआ है। शब्द संयोजन व बिम्ब प्रस्तुतीकरण प्रभावी है।
- आह! शब्द यहां श्रद्धा के मुख की अनन्त छवि और उसके दर्शन के उपरान्त व्याप्त सकून की ओर संकेत करता है।

- इस वर्णन में श्रद्धा के मुख की तुलना एक विस्फोट रहित लघु ज्वालामुखी से की हैं श्रद्धा का लालिमा मुक्त तेजोमय धीर गम्भीर मुख का विम्ब उभरता है।
- उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अनित्य यौवन.......................... गोद।

शब्दार्थ : नित्य यौवन छवि-चिर यौवन का सौन्दर्य। दीप्त-दैदीप्यमान। करूणा कामनामूर्ति-करूणा से भरी हुई कामना की मूर्ति। कान्त लेखा-उज्ज्वल किरण। तारकद्युति - तारों की आभा।

प्रसंग : पूर्ववत्

व्याख्या : श्रद्धा का सौन्दर्य दिव्य था। उसे देखकर ऐसा प्रतत होता था जेसे श्रद्धा अनन्त काल तक रहने वाले यौवन के सौन्दर्य से सुशोभित है। उसके मुख पर छाई हुई करूणा के कारण वह कामना की सौम्य एवं साकार मूर्ति सी प्रतीत होती थी। उस श्रद्धा की छवि में कठोर हृदय-व्यक्ति के हृदय में भी जागृति उत्पन्न करने की क्षमता थी। नवयौवना श्रद्धा के सहज लालिमा से युक्त मुख पर उज्ज्वल मुसकान छाई हुई थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो माधुर्य में डूबी हुई, उल्लास एवं प्रसन्नता से युक्त, स्वच्छन्दता एवं लज्जा से पूर्ण उषा की सबसे शुभ्र किरण प्रभातकालीन ताराओं की गोद में सुशोभित हो रही हो।

- अलौकिक सौन्दर्य वाली श्रद्धा को यहां ''विश्व की करूण कामना मूर्ति'' कहा गया है अर्थात् श्रद्धा को विश्व की समस्त इच्छाओं को देने वाली देवी माना है। श्रद्धा के दूसरे नाम 'कामायनी' का अर्थ भी कामना का अयन या आश्रय है।
- कामना - मूर्ति में रूपक अलंकार हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार का भी प्रयोग हुआ हैं यहां शब्द-चित्र द्रष्टव्य है।

दुःख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात।

एक परदा यह झीना नील छिपाऐ है जिसमें सुख गात।।

प्रसंग : श्रद्धा निर्जन वन में यज्ञ से बचे को देखकर किसी व्यक्ति के जीवित होने के अनुमान से घूमती हुई मनु से मिलती है और उसकी निराशःक्लान्त स्थिति को देखकर समझाती है

व्याख्या : कि सुख और दुःख साथ-साथ चलते है। दुःख की विगत रात्रि के बाद सुख का अगला नया सवेरा उदय होता है। जैसे रात्रि के बाद सवेरा होना स्वाभाविक क्रिया है इसी तरह दुःख के बाद सुख का आगमन भी स्वाभाविक है। सुख का शरीर अन्धकार (दुःख) के झीने (हल्के) परदे

से ढका रहता है जैसे उषा का शरीर अंधकार के हल्के पट से ढका रहता है। दुःख की स्थिति आने पर ही सुख की महत्ता का पता लगता है।

विशेष :

- दुःख में ही सुख के छिपे रहने से ही मनुष्य उसे देख नहीं पाता। मनुष्य की व्यापक दृष्टि होनी आवश्यक है। यहाँ सुख-दुख की सुन्दर व्याख्या है।
- सुख-दुख के क्रम का वर्णन प्राचीन कवियों ने भी किया है। महाकवि भास ने 'स्वप्न वासवदन्तक' नाटक में लिखा है कि ''चक्र इव परिवर्त्तन्ते दुःखानि सुखानि च'' अर्थात् दुःख और सुख चक्र के समान बदलते है।
- प्रतीकात्मकता दृष्टव्य है। दुःख रात्रि का तो सुख प्रभात का प्रतीक है।

पुरातनता का यह निर्मोक, सहन करती न प्रकृति पल एक;

नित्य नूतनता का आनन्द किये हैं परिवर्तन में टेक।

शब्दार्थ : पुरातनता - प्राचीन, अनुपयोगी, निर्मोक - केंचुली, टेक -टिकना, छिपना - गुप्त।

सन्दर्भ : मनु की मनःस्थिति विरक्ति की हो गई है। प्रलय के समय जीवन की सफलता व अस्तित्व का विनाश मनु ने देखा है, वे स्मृतियाँ और जीवनानुभव से अभी भी ग्रस्त है जबकि श्रद्धा ने पूर्व पदों में सुख-दुःख की व्याख्या से मनु के भीतर सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास भी किया है। मनु संसार से विरक्ति को जीवन सत्य समझ बैठे है, जबकि श्रद्धा कहती है संसार में इच्छाओं से परिपूर्ण आनन्द देने वाली आशाएं छिपी पड़ी है, उन्हे उभारने की आवश्यकता है। इसी संदर्भ में श्रद्धा आगे बढ़ती है और मनु को समझाती है कि जिसे तुम परिवर्तन करते हो, वह नित्य नवीनता है।

व्याख्या : जब प्रकृति भी पुराना आवरण या केंचुली सहन नहीं करती है तो मानव को भी सीख लेनी चाहिए। जिस तरह साँप पुरानी केंचुली उतारकर नई केंचुल धारण करता है, उसी तरह प्रकृति भी पुरातनता का परित्याग करती है। पल-पल में यहाँ परिवर्तन होता है इस परिवर्तन में नित्य नूतनता सामने आती रहती है। पतझड़ आने पर पत्ते गिरते हैं परिवर्तन होता है नये कोंपल फूटते हैं, नये पत्ते व फूल खिलते हैं इस तरह नवीनता का संचार होता है। परिवर्तन से ही विकास सम्भव है। मनुष्य शिशु रूप में जन्म लेकर यौवनावस्था, प्रौढ़ावस्था व वृद्धावस्था तक पहुँचता है फिर मृत्यु का दर्शन। परन्तु पुरानी नष्ट तो नई का पुनःसृजन भी होता है। पुरातनता/नवीनता या दुःख सुख का क्रम चलता रहता है।

विशेष : जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, जो वस्तु जीर्ण हो चुकी है या अनुपयोगी है उसका मिट जाना ही श्रेयस्कर है। सृष्टि विकासशील है इसी से वह दिन प्रतिदिन एक से एक अच्छी वस्तु का निर्माण करती बढ़ती रहती है। परिवर्तन को नित्य नवीनता के रूप में देखना चाहिए।

लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन सी लगती।

कुंचित अलकों सी घुंघराली मन की मरोर बनकर जगती।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश कामायनी में लज्जा सर्ग से अवतरित है। श्रद्धा अपने शारीरिक और मानसिक परिवर्तन के अन्तर्द्वन्द्व में थी तभी छायारूप में एक नारी जो रति की प्रतिकृति लज्जा का ही प्रतिरूप होती है, प्रकट होती है और श्रद्धा को अपनी प्रकृति, महत्त्व व प्रभाव क्षेत्र के बारे में बताते हुए कहती है।

व्याख्या : मेरे कारण युवतियों व रमणियों के सुन्दर व सरल गाल लाल हो जाते हैं अर्थात् लज्जा में प्रकट होने पर गालों की लालिमा के रूप में मैं दिखाई देती हूँ। युवतियों की आँखों में काजल न होने पर भी मेरी अनुभूति में ऐसा लगता है जैसे वह लगा हुआ हो। मेरे प्रभाव से आँखों में एक विशेष चमक व अदभुत शोभा आ जाती है। बल खाती हुई घुंघराली लटों के समान मैं रमणियों के मन में ऐंठन उत्पन्न कर दर्शकों के मन में वासना उत्पन्न करती हूँ।

विशेष :

- लज्जा को लाली, 'अंजन', घुंघराली, और मरोर के समान कह कर मालोपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- 'लज्जा' भाव की व्याख्या की गई है।

चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली।

मैं वह हलकी सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली।।

शब्दार्थ : किशोर सुन्दरता-किशोरावस्था का सौन्दर्य, मसलन-अंगुलियों से किसी वस्तु को दबाते हुए मलना या रगड़ना।

प्रसंग : पूर्ववत् प्रसंग

व्याख्या : लज्जा अपना स्वरूप बताते हुए कहती है कि मैं सुन्दर किशोरियों के चंचल मन की रखवाली करती हूँ। लज्जा भाव के कारण ही उनका मन नियंत्रण में रहता है। कहते है कि लज्जा स्त्री का आभूषण होता है परन्तु यहाँ लज्जा स्त्री का भूषण ही नहीं अपितु सुरक्षा कवच भी है। चंचलता व मस्ती के आवेग और यौवन के उन्माद वश भटक जाने वाली किशोरियों के सौन्दर्य की रक्षा लज्जा के कारण ही हो पाती है। लज्जा के कारण चंचलता वश जो विकार उत्पन्न होते हैं वे नहीं उठ पाते और यदि उठते हैं तो शान्त हो जाते है इस प्रकार सौन्दर्य की रक्षा हो जाती है। जिस तरह से कानों को हल्के-हल्के मसलने पर वे लाल हो जाते है इस क्रिया से थोड़ी पीड़ा तो होती है परन्तु सीख भी मिलती है और सुन्दरता भी बढ़ती है उसी तरह लज्जा के नियंत्रण में रहने वाली स्त्री थोड़ी क्षुब्ध तो रहती है पर उस संयम से उसके सौन्दर्य में विलक्षण दीप्ति झलकने लगती है।

विशेष :

- कवि ने लज्जित आनन्द के सौन्दर्य को चुना है। इसके लिए उसने दो सौदर्य प्रकारों की कल्पना की है, प्रथम है किशोर सुन्दरता और द्वितीय है - मतवाली सुन्दरता। मतवाली सुन्दरता रतिमूलक है और उसका मनुहार व मान लज्जा का प्रीति धर्म करता है। किशोर सुन्दरता चंचल है और उसका भार वहन लज्जा के नियन्त्रण में है। इस तरह शालीनता से सुन्दर लज्जित मुख लावण्यमय होता है। इस प्रकार दो लघु सौन्दर्य भेदों का सौन्दर्य तत्व व्यक्त किया गया है।

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था;

चेतना एक विलसती आनंद अखंड घना था।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यावतरण छायावाद के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की अमर काव्य-कृति 'कामायनी' के आनन्द सर्ग से लिया गया है। श्रद्धा के द्वारा फैलाई गई इस अलौकिक प्रेमज्योति को देखकर पर्वत पर उपस्थित संपूर्ण जड़-चेतन एवं प्राणी एक विशेष आनंद की अवस्था में जिस समरस भाव की अनुभूति करते हैं, इसी की सुन्दर प्रस्तुति उपर्युक्त पंक्तियों में हुई है।

व्याख्या : श्रद्धा के फैलाए प्रेम एवं अलौकिक ज्योति के रूप का दर्शन कर उस समय प्रकृति के सभी पदार्थ - चाहे वे जड़ थे या चेतन, एक समान आनंद में लीन थे। लगता था मानो सौन्दर्य ने साकार रूप धारण कर लिया है। सभी एक ही विराट चेतना शक्ति को समूची प्रकृति में क्रीड़ारत देख रहे थे। चारों ओर अखंड आनंद का साम्राज्य छाया हुआ था।

विशेष : काव्यभाषा में व्यंजकता और दार्शनिकता है। यहां आनन्द के साथ 'अखण्ड' विशेषण समष्टि-बोध या विश्व बोध का द्योतक है। क्योंकि आनन्द (व्यापक भाव) भाव विषयगत है जब यह निर्विषय होगा तभी अखण्ड होगा। सविषय या व्यक्तिगत आनन्द 'घना' भी नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि अखण्ड आनन्द की उपलब्धि व्यक्तिगत हित को विश्वहित में समाहित करने में है। हम सब एक है, 'वसुधैव कुटुम्बकुम' यही कामायानी का संदेश है।

12.5.1 ऐतिहासिक और अतीत के गौरव के प्रति श्रद्धा भाव

प्रसाद जी को भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्रति अटूट आस्था रही है। इतिहास की गौरवशाली परम्परा - चरित्र से कथानक ढूंढ़ कर प्रसाद जी ने काव्य मे ही नहीं अपितु नाटक, उपन्यास व कहानी लेखन में इनका प्रयोग किया है। यथार्थवाद, व्यक्तिवाद और ऐतिहासिक तत्व उनकी कृतियों में प्रथम बार इतने सशक्त रूप में प्राप्त होते है। 'प्रेमराज्य' उनकी पहली काव्य कृति है जो प्रसाद के मन में स्थित सांस्कृतिक, राष्ट्रीय ऐतिहासिक गौरव के प्रति श्रद्धा-भावना को व्यक्त करती है।

प्रेम राज्य में प्रकृति, पौरूष और वीरभावों की व्यंजना आकर्षक पद्धति पर की गई है। इसमें मार्मिकता भी हैं-वह मार्मिकता जो प्रबन्ध के लिये जरूरी होती है।

डॉ. शान्तिस्वरूप के शब्दों में इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है उसका महान संदेश जो आगे चलकर कामायनी में पूरा हुआ। युद्ध से आरम्भ होने वाला यह काव्य अन्त में मानवतावाद, विश्वप्रेम और समन्वयवाद का संदेश देता है। 'महाराणा का महत्व' रचना भी खड़ी-बोली के कारण ऐतिहासिक महत्व रखती है। प्रसाद 'महाराणा' जैसे ऐतिहासिक व्यक्तित्व के माध्यम से उनके चारित्रिक महत्व का उद्घाटन कर वीरता व देशप्रेम का स्वर प्रदान करते है। प्रसाद जी के 'काननकुसुम' काव्य संग्रह में जो भी रचनाएं है वे प्रायः सभी पौराणिक और ऐतिहासिक आधार लेकर तैयार की गई है। कामायनी का भी ऐतिहासिक व पौराणिक आधार है।

12.5.2 प्रकृति सौन्दर्य

प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति का सूक्ष्म और उदात्त चित्रण मिलता है। उनके विविध काव्यसंकलनों की प्रकृति परक कविताएं - प्रकृति के विविध चित्र प्रस्तुत करती है। उन्होंने अनेक कविताओं के माध्यम से प्रकृति और मानव को एक दूसरे के निकट लाने का यत्न किया है। प्रकृति का मानवीकरण, इसके अतिरिक्त प्रकृति का उपदेश, आलम्बन उद्दीपन, रहस्य, अप्रस्तुत विधान, पृष्ठभूमि, अन्योक्ति प्रतीक आदि रूप भी चित्रित हुए हैं। झरना काव्य संग्रह के पावस प्रभात का यह दृश्य जिसमे उषा का मानवीकरण मधुर और सजीव है-

रजनी के रंजक उपकरण बिखर गए।

घूंघट खोल उषा ने झांका और फिर।।

अरूण आपांगों से देखा, कुछ हंस पड़ी।

लगी टहलने प्रापी प्रांगण में तभी।

लहर काव्य संकलन के प्रकृति गीत मे प्रकृति का आलम्बन व दार्शनिक विचार देखने को मिलता है।

''बीती विभावरी जाग री

अम्बर-पनघट में डूबो रही

तारा-घट उषा नागिरी (लहर)

प्रभातकालीन प्राकृतिक शोभा का उषा के सौन्दर्य, पक्षियां के कलरव, लता किसलयों की सुमधुर गति, और मंद-मंथर पवन आदि का बड़ा हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत है। इन गीतों में कोई न कोई दार्शनिक विचारण मिलता है।' 'बीती विभावरी' में यदि कवि जागरण का संकेत देता है तो कहीं कोई कविता परमात्मा के चित्रण को लक्ष्य करके लिखी गई है।

इसी तरह प्रसाद जी ने आंसू में विरह जनित तीव्र वेदना से पूर्ण प्रकृति-रमणी की मनोरम छटा अंकित की है। कहीं रात्रि रोती, कलपती लगातार आंसू टपका रही है।

आंसू में कवि ने मानव जीवन में व्याप्त विरोध वैषम्य और पीड़ा को भी प्रकृति के माध्यम से व्यक्ति किया। वेदना के साथ-साथ संयोग के क्षणों में भी सहचरी प्रकृति का चित्रण दृष्टव्य है।

''हिलते दुमदल कल किसलय देती गलवांही डाली

फूलों का चुम्बन छिड़ती मधुपों की तान निराली''

12.5.3 प्रेम भावना

छायावादी कवि प्रसाद प्रेम व सौन्दर्य के कवि है। प्रसाद के प्रेम में न तो मांसलता है और न इन्द्रियों का आवेग ही। रूपाकर्षक के सहारे किया गया प्रेम उनकी दृष्टि में मोह भर है, प्रेम ही है। प्रसाद के प्रेम मे गाम्भीर्य है- प्रसाद जी का काव्य प्रेम पथिक केवल भावना और प्रेम का काव्य ही नहीं है अपितु इसमे प्रेम की ऊंचाई व दर्शन पक्ष भी काफी मात्रा में उभरा है। ''करूणा-यमुना, प्रेम-जाहनवी का संगम है भक्ति प्रयाग, जहां शान्ति अक्षय-वट बनकर, युग-युग तक परिवर्धित हो।''

वैयक्तिक प्रेम यदि विश्व में वितरित कर दिया जाये तो मानव को सुख मिलता है। प्रेम भी असीम और अपरिमेय है, ठीक सन्दर्य की तरह। डॉ. प्रेमशंकर के शब्दों में 'प्रेम पथिक' हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण रचना है, इसमे प्रसाद ने प्रेम और श्रृंगार का आदर्शवादी रूप प्रस्तुत किया है, हिन्दी में यह श्रृंगार का नव निर्माण था।

प्रसाद के काव्य संग्रह 'झरना' में भी प्रेम अजस्त्र स्त्रोत प्रवाहित हुए है। प्रेम का पवित्र झरना उसके तनःमन के प्रवाहित है और वह उसके भाव तटौ को स्पर्श करता हुआ एक जीवन स्पंदन और स्फूर्ति से भर उठा है।

कवि कहता है -

''सत्य स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में,

मन पवित्र उत्साहपूर्ण सा हो गया,

विश्व विमल आनन्द भवन सा हो गया,

मेरे जीवन का वह प्रथम प्रभात था।''

प्रसाद जी का आंसू काव्य संग्रह प्रेमी की वेदनानुभूति और अतीत की स्मृतियों की अभिव्यक्ति है। ''आंसू'' में प्रेमानुभूति निम्न चार स्तर पर अभिव्यक्त हुई हैं।

1. अतीत के मिलन क्षणों की मादक स्मृति और प्रेमी की मनोदशा।

2. प्रिय के अलौकिक सौन्दर्य का निरूपण

3. प्रेम-वेदना की हृदय स्पर्शी अभिव्यक्ति

12. पीड़ामय विश्व के प्रति हार्दिक सहानुभूति।

कवि के प्रिय के रूप सौन्दर्य का अद्भुत चित्रण दृश्य है -

बांधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से

मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा आज हीरों से।।

काली आंखों में कितनी यौवन के मद की लाली

माणिक मदिरा से भरदी किसने नीलम की प्याली।।

कोमल कपोल लाली में सीधी साधी स्मित रेखा।

जानेगा वही कुटिलता जिसने भौं में बल देखा।।

विदुरम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे ?

है हंस न शुक वह, फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे ?

प्रसाद जी सृष्टि-विकास की मूल शक्ति प्रेम मानते हैं और प्रेम का मूल आधार श्रद्धा है। प्रसाद जी का साहित्य प्रेम व्यक्ति प्रेम, पारिवारिक प्रेम तथा विश्व-प्रेम के रूप मे दिखाई देता है।

12.5.4 नारी भावना

प्रसाद जी का प्रेम भाव पावन और दैहिक आकर्षण से परे है इसीलिए उन्होंने नारी के जिस रूप की कल्पना की है वह भी विशुद्ध और पावन है। प्रसाद जी ने नारी के भीतरी सौन्दर्य को परखा जो वासना का नहीं वरन, अर्पण का विषय है, जो पुरूष मे प्रेरणा, शक्ति और स्फुरण उत्पन्न करे।

नारी जागृति का स्वरूप भी प्रसाद काव्य में सर्वत्र लक्षित होता है। श्रद्धा के रूप में प्रसाद की नारी भावना को विशेष बल मिलता है। उनके काव्य में एक ओर नारी स्वातन्त्रय को समर्थन प्राप्त है तो दूसरी ओर उसके चरित्र का सूक्ष्म, विस्तृत और मनौवैज्ञानिक विवेचन भी पूरी गम्भीरता के साथ किया गया है। प्रसाद जी का साहित्य नारी संदर्भ में उसकी स्वतंत्रता और जागृति का इतिहास है। लज्जा सर्ग में नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण इस प्रकार अभिव्यक्त है।

क्या कहती हो ठहरो नारी! संकल्प अश्रु जल से अपने

तुम दान कर चुकी पहले ही जीवन के सोने से सपने।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में

पीयूष-स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।

नारी जागृति व सृजनाशक्ति का स्वरूप भी प्रसाद काव्य में सर्वत्र लक्षित होता है। श्रद्धा के रूप में प्रसाद की नारी भावना को विशेष बल मिलता है। उनके काव्य में एक ओर नारी स्वातन्त्र को समर्थन प्राप्त है तो दूसरी ओर उसके चरित्र का उत्पन्न सूक्ष्म, विस्तृत और मनौवैज्ञानिक विवेचन भी पूरी गम्भीरता के साथ किया गया है। प्रसाद जी का साहित्य नारी संदर्भ में उसकी स्वतंत्रता और जागृति का इतिहास है।

12.5.5 नियति निरूपम

प्रसाद भाग्यवादी तो थे, किन्तु भाग्य के सहारे रहकर निष्क्रियता और निश्चेष्टता से सर्वथा दूर थे। उनकी इसी भावना को उन्हीं के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। ''अहम तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं नियत कर्म-रूप में कूद सकता हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही, फिर कायर भी क्यों बनूं-कर्म से क्यों विरक्त हूं'', कहने का तात्पर्य यह है कि प्रसाद की नियतिवादी धारणा केवल निठल्ले बने रहकर भाग्य के सहारे जीने का दूसरा नाम नहीं है। यह ठीक है कि जीवन में उत्थान, पतन, दुख और सुख, ह्रास और अश्रु विद्यमान हैं और इनके सहारे ही विश्व-जीवन प्रकृतिशील रह पाता है। 'आंसू' की परिणति इसी सत्य को सम्मुख रखती है।

प्रसाद जी का नियति सम्बन्धी दृष्टिकोण हिन्दूधर्म, बौध धर्म, ईसाई धर्म, चीनी धर्म और ग्रीक धर्म इन सबसे विशिष्ट व अलग है। हिन्दू धर्म में कर्म स्वतंत्रता को स्थान है। किन्तु प्रसाद की नियति को व्यक्ति का कोई कर्म परिवर्तित नहीं कर सकता। उसके समक्ष क्या देवता, क्या असुर, सबकी शक्तियाँ पराजित हो जाती है। इसका स्वरूप विश्वात्मक है। इसमें वैयक्तिक प्राकृतिक व सामाजिक सभी कर्म आ जाते है।

12.5.6 मैत्री और करूणा का स्वर

प्रसाद ने 'बुद्ध' के मैत्री और करूणा के संदेश को भी ग्रहण किया है। क्षणिकवाद और दुखवाद प्रसाद के इस करूणावाद की पृष्ठभूमि हैं। यहां सभी कुछ नश्वर है, क्षणिक है। 'करूणा' ही व्यक्ति का सहारा है। मैत्री का साधन इसी आधार पर प्रसाद ने 'करूणा' को मानव जीवन की एकमात्र इकाई बनाने का प्रयास कया। 'अशोक की चिन्ता, में प्रसाद ने हिंसा और पीड़ा से दुखी मानव के लिए करूणा का ही संदेश दिया है:

संसृति के विक्षत पग रे।

यह चलती है डगमग रे।

अनुलेप अद्दश तू लग रे।

मृदु दल बिखेर इस मग रे।

कर चुके मधुप मधुपान भंग।

भुनती वसुधा, तपते मग,

दुखिया है सारा अग-जग।।

कंटक मिलते हैं प्रति मग

जलती सिकता का यह मग,

.... वह जा बन करूणा की तरंग!

12.5.7 आनन्दवाद और समरसता की अभिव्यक्ति

प्रसाद के जीवन के अन्तिम और महत्वपूर्ण उपलब्धि आनंदवाद है। 'कामायनी' तो 'आनंदवाद' की छांह में बैठकर लिखी गई है। इस आनंदवाद का दार्शनिक आधार शैवाद्वैत है। उन्होंने कामायनी में शिव-शक्ति के रूपक के माध्यम से अद्वैतवाद को विशद् पृष्ठभूमि प्रदान की है। श्रद्धा और मनु कैलाश पर तप करते हैं और उनकी तपस्या और श्रद्धा ही जीवन के सत्य की उपलब्धि है।

उदाहरणार्थः-

कोई भी नहीं पराया।।

हम अन्य न और कुटुम्बी

हम केवल एक ही हमीं हैं

तुम सब मेरे अवयव हो,

जिसमें कुछ नहीं कमी हैं।।

जीवन प्रसाद की दृष्टि में एक चेतन सागर है जो अखण्ड, अविचिछन्न और समरसता का प्रतीक हैं आनंद ही सृष्टि का मूल है और वही जीवन का मूल है। अर्द्वतवादी के लिये सुख दुखात्मक संसार उस चेतन पुरूष का ही शरीर है:

'अपने दुख सुख से पुलकित, वह मूर्त विश्व सचराचर,

चित का विराट वपु मंगल, वह सत्य सतत चिर सुन्दर'

यही भाव कामायनी में जन-सेवा की भित्ति बन जाता है:

सब की सेवा न पराई

वह अपनी सुख संसृति हैं,

अपना ही अणु-अणु कण-कण

द्वयता ही तो विस्मृत है।

× × ×

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था;

चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।

यह अद्वैत भावांकित जन-सेवा का आनंद मार्ग 'प्रसाद' की हिन्दी को सबसे बड़ी देन है। इसमें उपनिषदों के अद्वैत, शैवागमों के आनंदवाद और आधुनिक युग के कर्मवाद (जनसेवा) का पूर्ण समन्वय हो जाता है'', 'कामायनी' में इसी का पोषण हैं। मानव जीवन का चरम लक्ष्य परम प्रेम आनन्द धाम तक पहुंचना है। परम प्रेम आनन्द धाम तक पहुंचने का एक मात्र साधन, शुद्ध सात्त्विक प्रेम है। प्रेम के इस परम लक्ष्य को प्रसादजी ने अपनी प्रारम्भिक रचना 'प्रेम पथिक' में स्पष्ट कर दिया था।

''इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।

किन्तु चले जाना उस हद तक जिसके आगे राह नहीं।

12.5.8 वसुधैव कुटुम्बुकम

प्रसाद का समष्टिगत भाव उत्तरोत्तर विकास-शील पथ पर चलता है। वह सीमा से अनन्त की ओर, सम से असीम की ओर, व्यष्टि से समष्टि की ओर, निरन्तर विकसित होता रहता है। इस पवित्र प्रेम की उच्च भूमि में व्यष्टि प्रेम भी इतना विशाल तथा विशद क्षेत्र रखता है कि इसमें कहीं भी मानसिक संकोच, हृदय-दौर्बल्य या आत्मिक संकीर्णता का स्थान नहीं। श्रद्धा मनु से अनन्य प्रेम रखते हुए भी विश्व के अन्य प्राणियों से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करती। उसका व्यष्टि प्रेम उसे समिष्ट प्रेम से अलग नहीं करता प्रत्युत उसी ओर अग्रसर करता है।

प्रसाद जी व्यष्टि प्रेम तथा कौटुम्बिक प्रेम को विश्व प्रेम की सीढ़ी मानते हैं। व्यक्ति, व्यष्टि प्रेम से ही अपने स्व से बाहर निकलना प्रारम्भ करता है; उसका त्याग, पर के लिए बढ़ने लगता है, उसका आत्म-विस्तार शनैः शनै विकसित होने लगता है। और विश्व को कुटुम्बवत् देखने लगता है। श्रद्धा में विश्व-प्रेम इसी प्रकार विकसित हुआ है। श्रद्धा के अनन्य प्रेम में मोह या ममता कभी उसे कर्त्तव्य पथ से च्युत नहीं करती। वह श्रद्धा राष्ट्र-कल्याण के लिए अपने इकलौते पुत्र मानव को सारस्वत प्रदेश में इड़ा के पास छोड़ने में तनिक भी मोह या दुःख नहीं करती। श्रद्धा की इस विश्व मूर्ति को देखकर मनु स्वयं कह उठते हैं

''कुछ उत्पन्न थे वे शैल-शिखर,

फिर भी ऊंचा श्रद्धा का सिर।

वह लोक अग्नि में तप गल कर,

थी ढली स्वर्ण प्रतिमा बनकर।

मनु ने देखा कितना विचित्र,

वह मातृमूर्ति थी विश्वमित्र।।''

इस प्रकार प्रसाद जी श्रद्धा के चरित्र के माध्यम से विश्वप्रेम को व्यक्त करते हैं।

12.6 प्रसाद काव्य का शिल्पगत पक्ष

12.6.1 काव्य-भाषा

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम ही नहीं अपितु प्राणभूत चेतना है। भाषा भाव और इच्छा भी है। भाषा का निर्माण शब्दों के माध्यम से ही होता है। शब्द भाषा में संश्लिष्टता, अर्थकत्ता, स्फुरण एवं रागात्मकता पैदा करता है। प्रसाद जी की काव्य-भाषा का सर्वाधिक महत्व उसकी शब्द समाहार शक्ति और चित्रमय प्रस्तुति में है।

प्रसाद की भाषा साहित्यिक खड़ी बोली हैं। यद्यपि उन्होंने पहले-पहल ब्रजाभाषा में 'चित्राधार' की रचना की थी और 'प्रेम पथिक' को भी ब्रजभाषा में ही प्रस्तुत किया था, किन्तु बाद में वे खड़ी बोली के सफल कवि प्रमाणित हुए। उनके काव्य में प्रयुक्त भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त हैं। कामायनी, आंसू, लहर और झरना जैसी श्रेष्ठ कृतियों में प्रसाद ने तत्सम भाषा का ही प्रयोग किया है। जहां तक प्रसाद की ब्रजभाषा का प्रश्न है, वह संस्कृत के तत्सम रूपों के सहयोग से ही निर्मित हुई है। 'चित्राधार' की अधिकांश कविताओं में ब्रजभाषा का संस्पर्श दिखाई देता हैं। हां, प्रसाद ने ब्रज प्रदेश में प्रचलित तद्भव और देशज शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया हैं उनकी ब्रज की रचनाओं में 'लसत', 'भीति', 'निवारि', 'ठांवा', 'पसीजत', 'ठिठकी', चकचूर, टेरो, उछाह, गोइये, तातो, ठौर और चेतो आदि ब्रज के प्रचलित तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग मिल जाते हैं। ब्रजभाषा में ही आये दिन प्रयुक्त होने वाले उर्दू, फारसी के शब्द भी प्रसाद के शब्द-भण्डार में देखे जा सकते है।

यह ठीक है कि उनके काव्य में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है, किन्तु ध्यान रहे ये तत्सम शब्द भी दो प्रकार के हैं। दार्शनिक और साहित्यिक। दार्शनिक तत्समों का प्रयोग कामायनी में मिलता है। चिति, समरस, लीला, कला, उन्मीलन, काम, श्रेय, विषमता, भूमा, नियति और त्रिपुट ऐसे ही दार्शनिक तत्सम शब्द हैं। साहित्यिक शब्द तो सर्वत्र हैं ही। एक तीसरे प्रकार के तत्सम शब्द भी प्रसाद के काव्य में उपलब्ध होते हैं। ये वे शब्द हें जो हिन्दी में न केवल अप्रचलित हैं, अपितु दुष्प्राप्य भी हैं यथा-श्वापद, आवर्जना, नाराच, अलम्बुषा, ब्रज्या, ज्योतिरिंगणों और तिमिंगलों आदि। इस प्रकार की तत्सम शब्दावली विविधवर्णी है।

ध्वन्यात्मकता प्रसाद की भाषा की अन्यतम विशेषता है। अरराया, रिमझिम, झिलमिल, छपछप, थर-थर, सन-सन और धू-धू आदि शब्दों का प्रयोग ऐसा ही है। ''बिजली माला पहने फिर मुस्कराता सा आँगन में, हाँ कौन बरस जाता था रस बूंद हमारे मन में' पंक्तियों में वाच्यार्थ से लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक ही की यात्रा तय कर ली गयी है।

कामायनी और आंसू ही क्यों, झरना और लहर में भी लाक्षणिक भाषा का प्रचुर प्रयोग हुआ हैं 'रक्त की नदी में सिर ऊंचा छाती कर तैरते थे' में साध्यवसना लक्षण का वैभव है, तो 'मेरे जीवन के सुख निशीथ जाते-जाते रूक जाना' में प्रयोजनवती लक्षणा का सौंदर्य समाहित है। 'शीतल ज्वाला जलती थी ईंधन होता दृग जल का' में 'ज्वाला' का लक्ष्यार्थ वेदना है, तो 'झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी 'नीरद-माला' में 'झंझा' भावों की तीव्रता की, बिजली पीड़ा की और 'नीरदमाला' निराशजनित भावों की संकेतिका बनकर आई हैं।

नूतन अर्थ के द्योतक स्वच्छंद प्रतीकों का प्रयोग भी प्रसाद के काव्य में बहुतायत से हुआ है - पतझड़ (नीरस), सूखी फुलवारी (शुष्क जीवन), किसलय (सरसता), क्यारी ; (हृदय), किरण (आशा-उत्साह), बसन्त (यौवन), तपन (व्यथा), आकाश (अदृष्ट और हृदय), उषा (सुख), शशिलेखा (कीर्ति), कुसुम सुमन (मन, भावनाएं), कुसुम (तारागण), स्तूप अचेत (लड़ता), बयार (जीवनदायिनी) आदि ऐसे ही प्रतीक है। प्रसाद जी की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है कि श्रुति सुखदता। इसी विशेषता के कारण कामायनी की भाषा माधुर्य-गुण प्रधान हो गई है।

12.6.2 अप्रस्तुत विधान

प्रस्तुत तो वह कहलाता है जो वर्ण्य-विषय है या साक्षात् हमारे सामने उपस्थित होता हैं, अप्रस्तुत पक्ष प्रस्तुत कथन को प्रभावशाली अथवा अधिकाधिक मार्मिक या आकर्षक बनाता है। यही कारण है कि रचनाकार अपने भावों को श्रोता एवं पाठकों तक तद्वत् पहुंचाने के लिए जिन उपकरणों का सहारा लेता है, उन्हें ही काव्य के अप्रस्तुत कहते है। अलंकारों में उपमान या अप्रस्तुत सबसे प्रमुख एवं प्रभावोत्पादक है।

प्रसाद के काव्य में भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है। उनके प्रिय अलंकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण और विशेषण विपर्यय हैं, जिन्हें उनके सभी काव्य-ग्रंथों में देखा जा सकता है। उनकी उपमाएं ललित, मार्दवयुक्त, प्रभावी और अर्थ-गरिमा से दीप्त हैं तो उत्प्रेक्षाएं उनकी कल्पनाशक्ति की परिचायिका हैं और रूपक भाव की सघनता और संश्लिष्टि के द्योतक हैं। उदाहरणार्थ: 'करूणा की नव अंगड़ाई सी', मलयानिल की परछाई-सी, उषा-सी ज्योति रेखा, अवशिष्ट रह गयी अनुभव में अपनी अतीव असफलता-सी, अवसादमयी श्रम दलिता-सी, छायापथ में तारक द्युति-सी, घनश्यामखण्ड-सी आंखों में और 'पीयूष स्त्रोत-सी बहा करो' आदि प्रयोगों में उपमा का वैभव है। कामायनी में प्रयुक्त उपमाओं को हम चार भागों में बांट सकते हैं।

मूर्त से मूर्त की उपमा:-

उधर गरजतीं सिन्धु-लहरियां कुटिल काल के जालों सी।

चली आ रहीं फेन उगलतीं न फैलाये व्यालों सी।।

अमूर्त से अमूर्त का उपमा :-

निकल रही थी मर्मवेदना करूणा विकल कहानी सी

मूर्त उपमान से अमूर्त उपमेय की तुलना :-

अरी नीच कृतध्नते! पिच्छल शिला संलग्न।

मलिन काई सी करेगी हृदय कितने भग्न।।

अमूर्त उपमान से मूर्त उपमेय की उपमा :-

आ गया फिर पास क्रीड़ाशील अतिथि उदार।

चपल शैशव सा मनोहर भूल का ले भार।।

उपमाओं में लाक्षणिकता प्रायः सर्वत्र मिलेगी। रूपक अलंकार का प्रयोग अधिकतर प्राकृतिक दृश्य चित्रण या नारी रूप वर्णन में हुआ है। प्रसाद में तुलसी के समान बहुत लम्बे रूपक नहीं मिलते। उत्प्रेक्षा अलंकार अधिकतर व्यंग्य रूप में है। संदेह तथा उदाहरण लंकारों की छटा भी देखने को मिलती है।

12.6.3 बिम्ब विधान

बिम्ब विधान मूलतः काव्य का चित्र धर्म है। कल्पना बिम्ब के रूप में ही मूर्तित होती है। भाव अभिव्यंजना की दृष्टि से बिम्ब का महत्वपूर्ण स्थान हैं कामायनी, आंसू, लहर, और झरना आदि सभी में सफल बिम्बों की योजना हुई है। प्रसाद जी के काव्य में बिम्ब योजना के अन्तर्गत तीन प्रकार के चित्र मिलते है:- शब्दचित्र, वस्तुचित्र और भावचित्र।

शब्दचित्र इस काव्य में स्थान-स्थान पर मिलते है। 'अरी आंधियों! ओ बिजली की दिवारात्रि तेरा नर्तन'। 'बिजली की दिवारात्रि' में चित्रोपमता की पराकाष्ठा है। वस्तुचित्रों के उदाहरण प्रायः रूप-वर्णन या प्रकृति-वर्णन में मिलते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि प्रसादजी ने वस्तु-चित्रों के अंकन में व्यंजनात्मक शैली से अधिक काम लिया है। ये किसी वस्तु के मार्मिक अंश का चित्र इस प्रकार खड़ा करते हैं कि व्यंजना द्वारा उसका अवशिष्ट अंश पूरा हो जाता है।

धवल मनोहर चन्द्रबिम्ब से, अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ।

जिसमें शीतल पवन गा रहा, पुलकित पावन हो उद्गीथ।

कामायनी के भावचित्रों की रमणीयता और प्रभुविष्णुता देखने को मिलती है। भावों को मूर्तरूप देने में कवि ने लक्षणा-शक्ति का अधिक आश्रय लिया है, जिससे भाव सुग्राह्य होकर हृदय से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। चिन्ता नामक भाव का एक चित्र देखिए

हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा!

हरी भरी-सी दौड़ धूप ओ, जलमाला की चल रेखा।

इसी प्रकार झरना, आंसू और कामायनी के अन्तर्गत जो बिम्ब उपलब्ध हैं वे न केवल अलंकृत बिम्ब हैं, अपितु संवेद्य, भावोपम और संश्लिष्ट बिम्ब भी। कामायनी का तो प्रत्येक सर्ग बिम्ब- विधान की दृष्टि से अद्वितीय बन पड़ा है। आशा सर्ग में आई हुई ये पंक्तियां देखिए जो एक उत्कृष्ट बिम्ब की वाहिका बनी हुई है -

सिन्धु सज पर धरा वधू अब, तनिक संकुचित बैठी-सी

प्रलय-निशा की हलचल स्मृति, मान किए सी ऐंठी-सी।

इस प्रकार चिन्ता सर्ग, आशा सर्ग, श्रद्धा सर्ग, लज्जा सर्ग और इड़ा सर्ग बिम्ब विधान की दृष्टि से विशेषोल्लेख्य है। 'आंसू' जैसा मानवीय विरह का काव्य भी बिम्ब-विधान की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावित करता है।

उदाहरणार्थः-

बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से

मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?

12.6.4 छन्द विधान

काव्य का प्रमुख गुण गेयता व छन्द आधारित होना भी है। काव्य में प्रयुक्त चयनित स्वर-व्यंजन विशेष रूप में बद्ध होने के कारण उसे संगीतात्मक रूप देते हैं। छन्द भावाभि व्यंजन में सहायक हैं। श्रद्धा में श्रृंगार छन्द, काम और लज्जा सर्ग में 'पदपादाकुलन' वासना सर्ग में 'रूपमाला', कर्म सर्ग मे 'सार', संघर्ष में 'रोला' ईर्ष्या तथा दर्शन सर्ग में पद-पादाकुलन व पद्धरि, छंद का प्रयोग करने का प्रयास कया है। आंसू में प्रयुक्त 'आंसू' छन्द आनन्द सर्ग में भी प्रयुक्त हुआ है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नांकित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

(क) उषा सुनहले तीर .... जल में अन्तर्निहित हुई।

(ख) दुःख की पिछली .... सुख मणिगात।

(ग) समरस थे जड़ .... अखंड आनंद घना था।

2. प्रसाद जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का उल्लेख कीजिए।

3. ''प्रसाद जी छायावाद के प्रमुख प्रतिनिधि कवि है'' उनके काव्य-सृजन के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए।

12. प्रसाद काव्य में भावानुभूति की तीव्रता का विश्लेषण कीजिए।

5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए।

(क) प्रसाद काव्य में अप्रस्तुत विधान

(ख) प्रसाद काव्य में प्रेमानुभूति

12.7 सारांश

प्रसाद छायावाद के मार्गदर्शक और विशिष्ट कवि थे। द्विवेदी युगीन प्रतिक्रिया में जिस छायावादी भाव व शैली का जन्म हुआ, उसके पारम्भ करने वालों में प्रसाद जी का सर्वप्रमुख स्थान है। प्रसाद जी मानवीय जीवन की सम्पूर्णता - अन्नमय कोष से आनन्दमय कोष तक के सफल व्याख्याता है। मानव के मनोमय कोष के विश्लेषण मे उनकी रूचि अधिक रही है। उनका व्यक्तित्व व कृतित्व इस बात का प्रभाण है।

प्रसाद का काव्य प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण के साथ ही भारतीय सांस्कृतिक चेतना और मानवतावादी मूल्यों का परिचायक रहा है। उनके काव्य का एक पक्ष जीवन की वेदन और करूणा को उभारता प्रतीत होता है तो दूसरा पक्ष जीवन की विषमताओं और कोलहलभरी दुनिया से अलग एक कल्पनालोक की छवि अंकित करता प्रतीत होता है जिसमें समरसता और शांति का साम्राज्य है।

छायावाद शिरोमणि प्रसाद के काव्य में भाव अनुभूति तीव्रता तथा मार्मिकता की अभिव्यक्त हुई है जिसमें छायावादी काव्याभिव्यक्ति के सभी निर्माण-कारी तत्व अपने चरम वैभव के साथ विद्यमान है। जैसे, भावावेशभरी प्रगीत शैली, वैयक्तिक आवेगों की आयासहीन सहजाभिव्यक्ति, वस्तु के वस्तु के असाधारण भावात्मक रूप की व्यंजन, प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छया के रूप में अप्रस्तुत का कथन; कल्पना का लालित्य, अमूर्त उपमेयों के लिए मूर्त तथा मूर्त उपमेयों के लिए अमूर्त उपमानों की सुन्दर संयोजना, भाव तथा सान्द्र बिम्बो के रमणीय विधान, प्रकृति का मानवीकरण, सादृश्य मूलक अलंकारों का सहज प्रयोग, भाषा में सर्वत्र रागात्मकता चित्रात्मकता तथा संवेदना के पुट, जगह-जगह नये शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति, पुराने शब्दों में नये अर्थों को संयोजित करने की वृत्ति, साभिप्राय विशेषणों तथा क्रियाविशेषणों के प्रयोग, भावानुकूल वर्णविन्यास तथा शब्द-विधान, शब्द-गुम्फन की सूक्ष्मता, परिष्कृत, सरस, मधुर, सुकुमार, ललित पदावली के सुष्ठु प्रयोग विद्यमान है।

छायावादी काव्य प्रवृत्ति के अनुसार प्रसाद के काव्य में भारतीय संस्कृति के सूक्ष्म तत्वों- समरसता, उदारता, मानवतावाद, करूणा, त्याग, आनन्द, विश्वबन्धुत्व, प्रेम और सौन्दर्य, नारी महत्ता और प्रकृति चित्रण के अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर हुई है।

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्त, गणपति चन्द्र, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास(2004), लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

2. मेघ, डॉ. रमेश कुन्तल, कामायनी और मनस्सौन्दर्य एवं सामाजिक भूमिका(2008), यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

3. वाजपेयी, डॉ. नन्ददुलारे, जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद।

12. तिवारी, भोलानाथ, कवि प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

5. बाहरी, डॉ. हरदेव, प्रसाद साहित्य कोश, भारती भण्डार, इलाहाबाद।

5. गुप्त, डॉ. हरिहर प्रसाद, प्रसाद काव्य प्रतिभा और संरचना(1982), भाषा साहित्य संस्थान, इलाहाबादा।

12. शर्मा, डॉ. पद्माकर, प्रसाद साहित्य में नियतिवाद(1978), रचना प्रकाशन इलाहाबाद।

13. मुक्तिबोध, गजानन माधव, कामायनीः एक पुनर्विचार(2002), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

14. शर्मा, राजकुमार, जयशंकर प्रसाद और कामायनी(2006), विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

11. पाण्डेय, गंगाप्रसाद, छायावाद के आधार स्तम्भ(1971), लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली

12.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शंकर, प्रेम, जयशंकर प्रसाद का काव्य।

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कामायनी आधुनिक युग का श्रेष्ठ काव्य है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

2. ''प्रसाद काव्य व्यष्टि प्रेम से समष्टि प्रेम (विश्वप्रेम) की ओर अग्रसर हुआ है'' प्रसाद की काव्य कृतियों के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए।

3. 'सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीयता का मिला जुला स्वर प्रसाद काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है।' इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

4-. प्रसाद रचित महाकाव्य कामायनी का उदाहरण सहित भावगत और शिल्पगत विवेचन कीजिए।

इकाई 13- सुमित्रानन्दन पन्त : पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 व्यक्तित्व

13.4 कृतित्व

13.4 .1 काव्य रचनाएँ

13.4 .2 काव्य का क्रमिक विकास

13.5 काव्य-पाठ और संसदर्भ व्याख्या

13.6 काव्य में संवेदना

13.6.1 कोमल व समधुर कल्पना और सहज भावानुभूति

13.6.2 प्रकृति चित्रण

13.6.3 प्रेम व नारी सौन्दर्य

13.6.4 वेदना और निराशा

13.6.5 लोकहित चिन्तन और अरविन्द दर्शन

13.6.6 प्रगति चेतना

13.6.7 गाँधी चेतना

13.7 काव्य में शिल्प विधान

13.7.1 भाषा विधान

13.7.2 अलंकार विधान

13.7.3 छन्द विधान

13.7.4 बिम्ब विधान

13.7.5 प्रतीक विधान

13.7.6 काव्य-रूपक

13.8 सारांश

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की तुलना में छायावादी युग अपनी नवीनता के कारण काव्य-संवेदना और शिल्प दोनों की दृष्टि से अधिक प्रगतिशील है और इसमें पंत की रचनाओं व विचारधाराओं का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि छायावाद का प्रारम्भ एवं प्रवर्तन करने का श्रेय कवि जयशंकर प्रसाद को है परन्तु छायावादी रचना शैली और छायावादी अनुभूति का प्रचार-प्रसार का सर्वाधिक श्रेय सुमित्रानंदन पंत को प्राप्त है। पंत ने अपनी रचनाओं की भूमिकाओं में इस सम्बन्ध में व्यापकता से लिखा है। काव्य-क्षेत्र में पर्दापण के दौरान पंत ने द्विवेदी युगीन प्रभाव के दर्शन किए थे। जिस प्रकार प्रसाद, हरिऔध आदि पहले ब्रजभाषा की कविताएँ लिखा करते थे और फिर खड़ी बोली की ओर अग्रसर हुए, वैसे पंत ने नहीं किया। उनकी प्रगतिशील दृष्टि ने ब्रज की अपेक्षा खड़ी बोली हिन्दी को चित्र-भाषा और चित्र-राग से पूर्ण करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। उसे सस्वर शब्दों के साथ अभिनव पदावली से अलंकृत किया और बंग्ला व अंग्रेजी के नूतन प्रयोगों को हिन्दी में लाकर भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में वृद्धि की।

आप लम्बे समय (लगभग सत्तर वर्षों) तक निरन्तर सृजनरत रहे। पंत की रचनाओं, उनके पाठ और विद्यमान कथ्य, संवेदना और शिल्प को एक सीधी-सपाट रेखा द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अपनी इस लम्बी रचना-यात्रा में उनके व्यक्तित्व व जीवन-सत्य की कई विचार धाराओं और भाव धाराओं के संदर्भ में अभिव्यक्ति होती रही है। विषय वस्तु की भिन्नता के बावजूद छायावादी प्रकृतिगत समस्त विशेषताओं का प्रतिनिधित्व पंत का काव्य करता है। पंत ने समस्त काव्य में कल्पना की स्वच्छ उड़ान, प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य चित्रण, जिज्ञासावृत्ति, सहज भावानुभूति, लोकहित चिन्तन, प्रगतिशील चेतना और गाँधी चिन्तन सभी तत्व उनके संवेदना पक्ष को समृद्ध करते हैं। छायावादी संस्कारों के अनुरूप अपने काव्य में कल्पना के महत्व को रेखांकित करते हुए कवि लिखते हैं ''मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ। मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है।'' कवि ने वीणा से लेकर ग्राम्या तक की सभी रचनाओं में कल्पना को ही वाणी दी है और इनमें भाव-विचार व शैली भी कल्पना की पुष्टि के लिए साधन रूप में कार्य करते रहे हैं। बाद की रचनाओं जैसे परिवर्तन, लोकायतन, युगवाणी और ग्राम्या आदि में पंत की यह विचारधारा परिवर्तित होकर प्रगतिशीलता की ओर उन्मुख हुई। काव्य-चेतना का यह प्रयास उल्लेखनीय है। पंत काव्य ने भाषा, अलंकार, छन्द, बिम्ब और काव्य-रूप की दृष्टि भी छायावादी काव्य-शिल्प को समृद्ध किया है। प्रस्तुत इकाई में कवि पंत के व्यक्तित्व और कृतित्व, रचनाओं के पाठ के साथ-साथ उनके काव्य में विद्यमान संवेदना और शिल्प के अलग-अलग बिन्दुओं को आप आसानी से समझ सकते हैं।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप:

1. सुमित्रानन्दन पंत के व्यक्तित्व और कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2. पंत की काव्य-रचनाओं के क्रमिक विकास को समझ सकेंगे।

3. कवि पंत की महत्वपूर्ण रचनाओं से संकलित काव्य-पाठ को पढ़ कर उनकी व्याख्या-विश्लेषण करने की क्षमता का अभिवर्धन कर सकेंगे।

13. पंत के काव्य में विद्यमान विविध भाव-संवेदनात्मक अनुभूतियों का अध्ययन कर सकेंगे।

5. पंत काव्य के शिल्प-सौन्दर्य का अध्ययन-विश्लेषण कर सकेंगे।

5. छायावादी काव्यधारा में पंत के योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

13.3 व्यक्तित्व

कविवर सुमित्रानन्दन पंत का जन्म हिमालय की गोद में अल्मोड़ा नगर के पास कौसानी नामक एक छोटे से ग्राम में एक जमींदार परिवार में दिनांक 20 मई, सन् 1900 के दिन हुआ। इनके पिता का नाम श्री गंगादत्त पंत और माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। इनका पालन-पोषण हिन्दू परम्परा के वातावरण में हुआ। इनके जन्म के समय ही इनकी माता का देहान्त हो गया था। दादी ने मातृत्व सु,ख देने में कोई कमी नहीं रखी। सुमित्रानन्दन पंत ने 'साठ वर्ष: एक रेखांकन' पुस्तक में लिखा है: ''आँखें मूँदकर जब अपने किशोर जीवन की छायावीथी में प्रवेश करता हूँ, तो पहाड़ी का घर ....छोटा-सा आँगन पलकों में नाचने लगता है ....चबूतरे पर बैठा मैं पढ़ता हूँ और ....गौरी बूढ़ी दादी की गोद में सिर रखकर, साँझ के समय, दन्तकताएँ और देवी-देवताओं की आरती के गीत सुनता हूँ। बड़ी परिहासप्रिय है मेरी दादी। उनकी क्षीण, दंतहीन कंठ-ध्वनि ....पहाड़ी झुटपुटे में अब भी......गूँज रही है।'' पुश्किन की दाई या गोर्की की दादी के समान सबसे पहले पंतजी की दादी ने ही इस संवेदनशील बालक के सम्मुख लोक कथाओं, दन्तकथाओं एवं पौराणिक कथाओं का वह ऐन्द्रियजालिक संसार उद्घाटित कर दिया, जिसकी सृष्टि अतिसमृद्ध लोक-कल्पना ने की थी। राम-लक्ष्मण, कृष्णार्जुन तथा अन्य अनेक देवी-देवताओं एवं बीर-नायकों के आदर्शों, उनके पराक्रमों तथा जन-कल्याण के हेतु उनके द्वारा किए गए महान् संग्रामों और अद्भुत रमणीय काव्यपूर्ण आख्यानोपाख्यानों ने बालक पंत की कल्पना-शक्ति पर प्रभाव डाला, उसकी चेतना में भारतीय जनता की अतिसमृद्ध

सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति जीवंत रूचि को जाग्रत कर दिया। भावी कवि के लिए यह ग्रन्थ बचपन से ही चिरसहचर और संगी-साथी बन गए।

प्रकृति ने बालक पंत को सौन्दर्य की अनुराग मयी गोदी में खिलाकर बड़ा किया। पंत लिखते है ''कोसानी की गोद मुझे माँ की गोद से ज्यादा प्यारी रही है।'' कवि 'अंतिमा' संकलन में लिखते है

''माँ से बढ़कर रही धत्रि तू, बचपन में मेरे हित,

धत्रि कथा रूपक भर; तू ने किया जनक बन पोषण।

मातृहीन बालक के सिर पर वरद हरस्त धर गोपन।''

पहाड़ी झरनो-स्रोतों की तेज दौड़, जल-प्रपातों की ध्वनि, पर्वतीय चरागाहों की रंगबिरंगी मनोहारिणी क्रीड़ा और आँखों को चौंधियाने वाले दूरस्थ रजत हिम-शिखरों के श्रवण-दर्शन से प्रभावित भावी कवि बचपन से ही प्रकृति-सौन्दर्य के रहस्यों को समझने-बूझने और उनका उद्घाटन करने में प्रयत्नशील रहा!

पिता के घर का वातावरण भी साहित्य एवं कला के प्रति पंत जी की प्रारम्भिक रूचि को जाग्रत कराने में सहायक रहा। भावी कवि अपने बड़े भाई के ग्रंथ-संग्रह में उपलब्ध ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ते न अघाता। पंतजी के यह भाई बड़े ही प्रतिभाशाली थे।

पिता के घर में बराबर लोगों का ताँता बँधा रहता। अनेकानेक सगे-संबंधी और इष्ट-मित्र, साहित्यक और संगीतज्ञ, विद्वान और धर्म-सेवक महीनों-महीने गंगादत्त पंत के यहाँ डेरा डाले रहते। घर में समय-समय पर विविध तीज-त्यौहार मनाए जाते। इन अवसरों पर पारिवारिक साहित्य-संगीत सभाओं, लोकनृत्यों, गीतपाठों आदि का आयोजन किया जाता। पंत जी के बड़े भाई कालिदास रचित 'मेघदूत' एवं 'शाकुन्तलम' का पाठ करते और स्वरचित कविताएँ भी सुनाते। पंत जी के पिता बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे। उनके घर में 'भगवद्गीता' तथा 'रामायण' का पाठ नित्यप्रति हुआ करता था। घरेलू उत्सव-त्यौंहारों के दिन कौसानी-निवासी और आसपास के पहाड़ी युवक-युवनियाँ आकर समूहगीत, नाच-गान, खेलकूद आदि प्रस्तुत करते। पंतजी ने लिखा है:'' कौसानी में पिताजी के घर के वातावरण में भी मुझे एक संगीत तथा लय मिलती रही है जिसने, समभवतः, मेरे भीतर उन संस्कारों का पोषण किया जो आगे चलकर मेरे कवि-जीवन में सहायक हुए।''

सन् 1950 में पंत जी कोसानी गाँव की पाठशाला में दाखिल हुए और अंग्रेजी का अध्ययन घर पर ही शुरू किया। वहाँ से चौथी कक्षा पास करके 1910 में अल्मोड़ा आ गए। हाई

स्कूल पास कर वे प्रयाग गए और प्रयाग ही उनकी काव्य-साधना का मुख्य केन्द्र बना। ''साठ वर्ष ' एक रेखांकन'' पुस्तक में कवि स्वयं लिखते हैं - ''प्रयाग आने के पश्चात् मेरे संस्कृत साहित्य के ज्ञान में अधिक अभिवृद्धि हुई। कालिदास की कविताओं का मुझ पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। कालिदास की उपमाओं में तो एक विशिष्टता तथा पूर्णता मिली ही, उसकी सौन्दर्य-दृष्टि ने मुझे विशेष रूप से आकृष्ट किया। कालिदास के सौंदर्यबोध की चिर-नवीनता को मैं अपनी कल्पना का अंग बनाने में लिए लालायित हो उठा। उन्नीसवीं शती के कवियों में कीट्स, शैली, वर्ड्सवर्थ तथा टैनिसन में मुझे गंभीर रूप से आकृष्ट किया। कीट्स के शिल्प-वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्डसवर्थ के प्रांजल प्रकृति-प्रेम, कालरिज की असाधरणता तथा टैनिसन के ध्वनिबोध ने मेरे कविता संबंधी रूप-विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया। इन कवियों की विशेषताओं को हिन्दी काव्य में उतारने के लिए मेरा कलाकार भीतर-ही-भीतर प्रयत्न करता रहा।''

पंत जी ने साठ वर्षों तक निरन्तर लेखन कार्य किया और 29 दिसम्बर, 1977 को इस संसार से विदा हो गए।

13.4 कृतित्व

पंत का कवि-कर्म उनके रचनाकार व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। पंत के व्यक्तित्व निर्माण में बीसवीं सदी के सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण, अरविन्द दर्शन, रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी का दर्शन, हिन्दी का मध्ययुगीन काव्य, अंग्रेजी का स्वच्छन्दतावादी साहित्य, भारतीय रचनाकारों में वाल्मिकी, कालीदास, सूरदास, घनान्द, रवीन्द्र नाथ टैगोर तो पश्चिमी कवियों में गेटे और वर्डसवर्थ, कॉलरिज व टैनीसन के सृजन की गहरी छाप पड़ी है। रीतिवादी रूढ़ियों व सली गढ़ी परम्पराओं के वे जन्मजात विद्रोही रहे और परिवर्तन के आकांक्षी। इसी कारण अपने सृजन व चिन्तन में पंत का समस्त रचनाकर्म इन्हीं विशेषताओं को व्यंजित करता है।

13.4.1 काव्य रचनाएँ

कविवर पंत का रचनाकाल सन् 1916 से लेकर 1977 ई. तक लगभग साठ वर्षों तक फैला हुआ है। 'वीणा' (1918 में प्रकाशित) उनका आरम्भिक काव्य-संग्रह तथा 'ग्रंथि' (1920 में) प्रकाशित हुआ। पंत की काव्य रचनाएँ प्रकाशन क्रम में इस प्रकार उल्लेखित हैं -

'वीणा' (1918), ग्रन्थि (1920), पल्लव (1922-1926 तक की रचनाएँ), 'गुंजन' (1926 से 1932 तक की रचनाएँ), ज्योत्सना (1934), युगान्त (1935), युगवाणी (1937), ग्राम्या (1939-40), स्वर्ण-किरण (1947), स्वर्ण धूलि (1947), मधुज्वाल, उमर खैय्याम का

भावानुवाद और युग पथ (1948 ई.), खादी के फूल (1948), रजत शिखर (1951), शिल्पी, अतिमा, सौवर्ण, वाणी, 'कला और बूढ़ा चांद' है। 'लोकायतन' प्रथम महाकाव्य (1964)। इसके बाद किरण वीणा, पुरूषोत्तम राम, पौ फटने से पहले, गीता हंस, पतझर, शंख ध्वनि, रश्मिबन्ध (1971), शशि की तरी, समाधिता, आस्था, सत्यकाम, चिदम्बरा, गीत-अगीत, गीता हंस (1977) जैसे कई काव्य-संग्रह छपते रहे।

प्रबन्ध-काव्य - 'लोकायतन'

प्रतीक नाटक - ज्योत्सना

आत्म कथा - साठ वर्ष: एक रेखांकन

उपन्यास - हार (अप्रकाशित)

आलोचना: महादेवी संस्मरण ग्रन्थ, छायावाद का पुनर्मुल्याकंन

13.4.2 काव्य का क्रमिक विकास

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने अपने ग्रन्थ हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि में सुमित्रानन्दन पंत के काव्य का क्रमिक विकास विस्तार से विश्लेषित किया है। कवि की रचनाओं की सम्यक जानकारी के लिए उन्हें निम्नलिखित चार युगों में विभिक्त किया गया:

1. प्राकृतिक सौन्दर्यवादी युग: (1918 से 1934 तक की कविताएं) जिनका पूर्व में उल्लेख कर दिया गया है, इसमें संकलित हैं। सभी कविताएं तत्कालीन छायावीद प्रकृतियों के अन्तर्गत आती है। इस युग में कवि ने खड़ी बोली को बंगला और अंग्रेजी के नूतन स्वच्छन्दतावादी प्रयोगों से समृद्ध किया, उसमें कलात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, प्रकृति का सचेतन सौन्दर्य, कोमल कल्पना के रंग भरे हैं।

2. यथार्थवादी युग: इस युग में 1935 से 1945 ई. तक की कविताओं का समावेश है। कवि नवीन आदर्शों, नवीन विचारों एवं नवीन भावना के सौन्दर्य-बोध की ओर अग्रसर होकर यर्थावाद की विचारधारा से प्रभावित होने लगता है। इसका आभास 'परिवर्तन' कविता में ही मिलने लगता है।

इस समय कवि जहाँ मार्क्सवाद तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित हुआ था, वहाँ वह गांधीवाद से भी प्रभावित था।

कविवर पन्त की 'युगान्त' से 'ग्राम्या' तक की सम्पूर्ण यथार्थवादी युग की कविताओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने स्पष्ट रूप से प्राचीन विचारों एवं पुरातन

मान्यताओं के प्रति तीव्र विद्रोह प्रकट किया है और नूतन विचारों एवं नवजागरण के लिए, नवीन क्रान्ति का समर्थन किया है। यहाँ आते-आते कवि की कोमल एवं सुकुमार प्रकृति कुछ-कुछ पौरूषपूर्ण हो गई है और वह शोषण एवं अन्याय को समूल नष्ट करने के लिए साहित्य में नूतन प्रवृतियों को जन्म देने लगा है। इन कविताओं में कवि ने प्राचीन रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, आचार-विचारों के प्रति, प्राचीन संस्कृतियों के जड़ बन्धनों के प्रति तथा पुरातन रूढ़िवादिता के प्रति गहरा असन्तोष व्यक्त किया है।

3. अन्तरश्चेतनावादी युग: इस युग में आकर कवि का बहिर्मुखी दृष्टिकोण सहसा अन्तर्मुखी हो जाता है। अभी तक वह मार्क्सवाद से अधिक प्रभावित रहने के कारण समाज की आर्थिक समता को ही सर्वाधिक महत्व देता था और इस आर्थिक समता को लाने के लिए वह हिंसात्मक क्रांन्ति के लिए ही प्रेरणा, दे रहा था, किन्तु अरविन्द-दर्शन का प्रभाव पड़ते ही कवि के दृष्टिकोण में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। अब वह यह विश्वास करने लगा कि आर्थिक अथवा बाह्य समता ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इसके लिए मानसिक अथवा आन्तरिक समता की अधिक आवश्यकता है और इस मानसिक समता के लिए प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में तप, संयम, श्रद्धा, आस्तिकता या एक ईश्वर में विश्वास आदि परमावश्यक है। इस तरह कवि बाह्य साम्य के साथ-साथ आन्तरिक साम्य पर अधिक बल देने लगा।

13. नवमानवतावादी युग: ‘उत्तरा में कवि का ‘गीत-विहंग‘ स्पष्ट ही ‘‘मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता‘‘ कहकर इस युग की घोषणा कर रहा है। इसी कारण उत्तरा के उपरान्त कवि का नूतन काव्य संग्रह ‘कला‘ और ‘बूढ़ा चाँद‘ प्रकाशित हुआ था, जिसमें कवि की 1969 ई. तक की कविताएँ संकलित हैं। ये सभी कविताएँ प्रयोगवादी शैली पर लिखी गई हैं और इनमें बौद्धिकता का प्राधान्य है। इसके साथ ही 1955 ई. में ‘अतिमा‘ नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ और 1961 में कविवर पन्त का सुप्रसिद्ध वृहत् काव्य ‘लोकायतन‘ प्रकाशित हुआ, जो 650 पृष्ठों का लोकजीवन का एक महान् काव्य है, इसमें कवि ने लोक चेतना का प्रतिनिधित्व किया है। इस नवमानवतावादी युग की रचनाओं में कवि ने मानवतावाद को समुन्त बनाने एवं मानव-चेतना के अन्तर्गत सृजन-शक्ति को कूट-कूट भरने के लिए प्रेरणा प्रदान की है। वर्तमान युग के जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर अपने मन की प्रक्रियायें व्यक्त की हैं!

13.5 काव्य पाठ और ससंदर्भ व्याख्या

प्रथम रश्मि का आना रंगिणी .... बतलाया उसका आना

प्रथम रश्मि का आना, रंगिनी।

तूने कैसे पहचाना?

कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनी।
पाया तू ने यह गाना?
सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
पंखों के सुख में छिप कर
झूम रहे थे घूम द्वारा पर
प्रहरी से जुगनू नाना
शशि किरणों से उतर उतर कर
भू पर काम-रूप नभचर
धूम नवल कलियों का यह मुख
सिखा रहे थे मुस्काना
स्नेहहीन तारों के दीपक,
श्वास शून्य थे तरू के पात
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में
तम ने था मंडप ताना
कूक उठी सहसा तरू-वासिनी
गा तू स्वागत का गाना
किसने तुझको अर्न्यामिनी
बतलाया उसका आना

शब्दार्थ : रश्मि - किरण (सूर्य-किरण), रंगिनी - विविध रंगों वाली, विहंगिनी - चिड़िया, स्वप्न-नीड़ - सपनों का घोंसला, प्रहरी - पहरेदार, भू - पृथ्वी, नभचर - राक्षस, मृदु - मधुर, तरू - पेड़, अवधि - पृथ्वी, तरू - वासिनी - कोयल या चिड़िया, अंतर्यामिनी-भीतर की बात जानने वाली।

प्रसंग : सुमित्रानन्दन पंत के 'वीणा' काव्य संग्रह में संकलित कविता 'प्रथम रश्मि' का यह कवितांश है। यह पंत की प्रारम्भिक कविताओं में से एक है। जब वे प्रकृति सौन्दर्य के प्रति पूर्ण रूप से आसक्त थे। छायावाद की मूल प्रवृत्ति कल्पनाशीलता-जिज्ञासा-वृत्ति और भावनात्मक नवजागरण की चेतना का प्रतिनिधित्व यह कविता करती है। पंत के लिए प्रकृति सदा रहस्यमयी रही है। कवि यह जानने के लिए उत्सुक है कि जब सम्पूर्ण संसार निन्द्रा और अंधकार में खोया-खोया हुआ था तो मासूम चिड़िया को जागरण के प्रकाश का ज्ञान कैसे हुआ। कवि चिड़िया की इस चेतना पर विमुग्ध है और उसी से प्रश्न करते हैं।

व्याख्या : मुग्ध और मस्त कवि चिड़िया से पूछते हैं कि हे रंगिणी! तू ने सूर्य की प्रथम किरण अर्थात 'भोर' के आंगमन को कैसे पहचान लिया? और चींचीं करके वातावरण को गुंजायमान करने लगी, हे बाल विहंगिनी! तू ने यह गाना कहाँ से प्राप्त किया? रात्रिकालीन साम्राज्य के पाश में समस्त चर-अचर जगत बँधा था। तू स्वयं स्वप्न रूपी घोंसले में, अपने पंखों को समेटकर उनकी गर्माहट की सुखानुभूति में खोकर-सो गई थी। तेरी रक्षा के लिए अंधकार में चमकने वाले जुगनूँ पहरेदार की तरह झूम-झूम कर विचरण कर रहे थे। जूगनू कोमल कलियों पर जाते तो ऐसा लगता या मानों उन्हें चूम कर मुस्काना सिखा रहे हों। जुगनू चन्द्रमा की किरणों से उतर कर कामरूप धरण करते हुए धरती पर उतर कर कोमल-कलियों का मुख चूमकर उन्हें मुसकाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। प्रकृति प्रशांत थी आकाश में तारे-रूपी दीपक, जिन्हें प्रकाश का ज्ञान प्राप्त हुआ था, वे स्नेह-हीन से घूम रहे थे। वृक्षों के पŸो मौने थे और चेतन जगत अपने स्वप्नों की मधुर मादकता में निमग्न था। रात्रि ने अंधकार का मण्डप तान रखा था, ऐसे प्रशान्त, नीरव वातवरण में हे तरूवासिनी! तू किसके स्वागत में प्रसन्न होकर चहक उठी? हे अन्तर्यामिनी! तेरी चेतना कैसे विस्तरित हुई कि अंधकार को बेंधकर सूर्य की किरणे धरती की ओर आ रही है अर्थात् पराधीनता के अंधकार के बाद मुक्ति का प्रकाश हो रहा है।

विशेष:

1. छायावाद में कल्पना, जिज्ञासा और रम्यता का समावेश रहता है। कोमल कान्त पदावली में यह विशेषता यहाँ विद्यमान है।

2. संज्ञा से विशेषण बनाने की प्रवृत्ति पंत की काव्य-भाषा में यत्र तत्र दिखाई देती है। इस पद में भी रंगिणी, बाल विहागिनी, तरूवासिनी आदि शब्दों के कवि ने प्रयोग किये हैं।

3. सोई थी तू स्वप्न नीड़ में, पंखों के सुख में छिपकर, रेखांकित पंक्ति स्वप्न नीड़ में लक्षणा मूला व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग है। स्वप्न नीड़ का वाच्यार्थ भावनाओं का पुंज और व्यंग्यार्थ है 'विचारों' की ऊहापोह' या भविष्य के सुखद सपने।

13. प्रथम रश्मि आ आना 'रंगिणि' कविता में कवि बाल विहंगिनि के रूप् में स्वयं ही नयी सुबह की इस नयी किरण के आने की पहचान कर रहा है। यह कविता मात्र प्रकृति चित्र नहीं है वह अपने भीतर विगत यानी रात यानी सामन्तवादी व्यवस्था की सारी जड़ता, एकरूपता, अन्धविश्वास तथा आगत यानी सुबह यानी पूँजीवादी चेतना की जीवंतता, गतिशीलता और विविध छविमयता का भी चित्र है।

5. प्रकृति चेतना व परिवर्तन को पक्षी स्वाभाविक रूप से पहचानता है। दर्शन में पक्षी को ज्ञान चेतना का प्रतीक कहा गया। छायावादी चेतना का प्रेम भाव 'धूम नवल कलियों' से व्यक्त हुआ है।

निकल सृष्टि के अंध-गर्भ .... ताना बाना।

निकल सृष्टि के अंध-गर्भ से

छाया-तन बहु छायाहीन,

चक्र रच रहे थे खल निशिचर

चला कुहुक, टोना-माना।

छिपा रही थी मुख शशि बाल

निशि के श्रम से हो श्री-हीन

कमल क्रोड़ में बंदी था अलि

कोक शोक से दीवाना;

मूर्छित थी इन्द्रियाँ, स्तब्ध-जग,

जड़-चेतन सब एकाकार

शून्य विश्व के उर में केवल

साँसों का आना-जाना!

तूने ही पहिले बहु-दर्शिनी

गाया जागृति का गाना,

श्री-सुख-सौरभ का नभचारिणी

गूंथ दिया ताना बाना!

प्रसंग: पूर्ववत्।

शब्दार्थ: अंध-गर्भ: अंधेरा गर्भ (गुह्य), छाया-हीन: मायावी, खल: दुष्ट, निशि: रात्रि, श्री-हीन: शोभा हीन, क्रोड़: गोद, अलि: भँवरा, उर: हृदय।

व्याख्या: कवि रात्रि के अंधकार में प्रभावशाली निशिचर के क्रिया कलापों और अचर जगत् की कोमल भावनाओं की ओर संकेत करता है कि सृष्टि के अँधेरे गर्भ से निकल छायातन और छायाहीन दृष्टब् नभचर षड़यन्त्र रच रहे थे, जादू-टोना कर रहे थे। रात्रि समाप्त होने की स्थिति में चन्द्रमा थक कर डूबने जा रहा था। कलम के कोश में भौंरा अभी बन्द था और कोक पक्षी शोक में डूबा हुआ था, इन्द्रियाँ मुर्छित अवस्था में थी, जड़-चेतन एकाकार हो गया था। सुप्त-शून्य विश्व के हृदय में सिर्फ साँसों का आवागमन महसूस होता था अर्थात् रात्रि में नीरव और निस्तब्ध वातावरण व्याप्त था। ऐसी अवस्था में हे बहुदर्शिनी सबसे पहले तूने ही जागृति की आहट सुनी, जागरण के गीत गाकर तूने सम्पूर्ण विश्व में कल्याण-और सुख का ताना-बाना गूँथ दिया। तेरी दूर दृष्टि ने जगत के कल्याण व सूख की कामना को पहचानकर वातावरण में स्वर-लहरियाँ छोड़ दी।

विशेष:

1. इस पद में रात का चित्र प्रकारान्तर से सामन्तवादी जीवन का ही चित्र हे। स्वाधीनता आन्दोलन में आती हुई शक्ति व मुक्ति चेतना की किरण दिख रही है जिसकी पहचान रंगिणी (चिड़िया) ने की, अंधकार के भीतर से आशा की किरण-प्रथम रश्मि इसी भाव चेतना का संशिलष्ट है।

2. कविता छायावादी प्रगीत शैली का उदाहरण है, भाषा में परिष्कृति के साथ चित्रात्मक व लाक्षणिक सौन्दर्य विद्यमान है।

निराकार तुम मानो .... यह स्वर्गिक गाना?

निराकार तुम मानो सहसा,

ज्योति-पुंज में हो साकार,

बदल गया द्रुत जगत-जाल में,

धर कर नाम-रूप नाना!

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास् कुसुम अधरों पर
हिल मोती का-सा दाना!
खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि,
जयी सुरभि, डोले मधु-बाल,
स्पन्दन, कम्पन और नव जीवन,
सीखा जग ने अपनाना।
प्रथम रश्मि का आना, रंगिणी।
तू ने कैसे पहचाना?
कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनी।
पाया यह स्वर्गिक गाना?

शब्दार्थ: द्रुम-दल: वृक्षों का समह, द्रुत: तीव्र, समीरण: वायु, हास: हँसी, कुसुम-अधरों: पुष्प रूपी होठ, स्वर्गिक: स्वर्ग के समान

प्रसंग: पूर्ववत

व्याख्या: कवि का कथन है, सम्पूर्ण चरराचर जगत जो अब तक मौन और निराकार था प्रथम रश्मि के आगमन के उल्लास से ब्रह्म रूपी प्रकाश में बदल गया। दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति के परिवर्तन शील कार्य व्यापार को उद्धटित करते हुए कवि का कथन है कि रात के प्रशांत अंधकार में नाना-रूपात्मक जगत अपने अस्तित्व को लीन किए मौन था - वही जगत सहसा प्रथम रश्मि के स्पर्श से निराकार ब्रह्म से मानो साकार ब्रह्म रूपी प्रकाश में बदल गया। इस नाना नाम रूपतामक जगत की सही पहचान प्रकाश ही देता है। यदि प्रकाश न होता तो सृष्टि अंधकार की अक्षय सत्ता होती - जिसका ज्ञान सम्यक नहीं था। प्रकाश के स्वागत में वृक्ष प्रसन्नता से झूमने लगे, सोई हुई वायु जगकर उमंग से उछल पड़ी। कलियाँ किरन का स्पर्श पाकर चटकने लगीं या खिलने लगीं। फूलों के ओठों पर हँसी फूट पड़ी और ओसकण जैसे मोती चमकने लगे। फूलों के साथ ही सोया हुआ पूरा संसार जग गया, चारों ओर प्रभात की स्वर्णिम आभा फैल गइर्ग।

मधुपान करते हुए भ्रमर झूमते-मंडराते हुए दृष्टिगत होने लगे। प्रकृति के इस अपूर्व उल्लास से सम्पूर्ण जगत में नवजीवन का स्पन्दन हो उठा।

विशेष:

1. छायावादी चेतना के अनुभूतिगत और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य की सभी विशेषताएँ इस पद में विद्यमान हैं। स्पन्दन, कम्पन, मधुबाल, सुप्त समीरण, कुसुम-अधरों जैसी कोमल और भाव-अर्थबोधक शब्दावली ने काव्यात्मकता में वृद्धि की है।

2. प्रकृति के सौन्दर्यबोध को कवि ने फूल, भ्रमर, समीर से मूर्त व विम्बित किया है। अमूर्त को मूर्त उपमानों से अभिव्यक्त कर प्रत्यक्ष किया है।

3. छायावाद की अनेक कविताओं में सीधे या प्रकारान्तर से यही स्वर ध्वनित होता है कि आरम्भ में सृष्टि अंधकार में डूबी थी, उसने बाद में अव्यक्त से व्यक्त किया, इस व्यक्त करने की प्रक्रिया में सगुण साकार विश्व प्रत्यक्ष हुआ। दर्शन के इस सत्य की इस पद्यांश में कवि ने अभिव्यक्ति की है। कवि जय शंकर ने भी 'कामायनी' के प्रथम सर्ग 'चिन्ता' में सृष्टि को जल में डूबा हुआ बताया है।

13. पूर्व पदों की भाँति प्रथम रश्मि का व्यंजना पूर्ण प्रयोग है। इस कविता का एक संदर्भ प्रातः काल के सूर्योदय से जुड़ा है और दूसरा देश के जागरण से, स्वतंत्रता के भाव सें।

बिना दुख के सब .... गति-क्रम का हास् ।

बिना दुख के सब सुख निस्सार

बिना आँसू के जीवन भार;

दीन दुर्बल है रे संसार

इसी से दया, क्षमा औ-प्यार,

आज का दुख कल का आह्लाद

और कल का सुख, आज विषाद,

समस्या स्वप्न गूढ़ संसार,

पूर्ति जिसकी उस पार।

जगत जीवन का अर्थ विकास

मृत्यु गति-क्रम का ह्रास ।

शब्दार्थ: निस्सार: व्यर्थ, आह्लाद: हर्ष, विषाद: दुख, ह्रास : पतन।

प्रसंग: यह काव्य पंक्तियाँ सुमित्रानन्दन पंत की लम्बी कविता 'परिवर्तन' से ली गई है। दुखवाद और मध्ययुगीन निराशा बोध से यह कविता संचालित है। कवि इस कविता के माध्यम से संदेश देते है कि परिवर्तन अवश्यम्भावी है ओर जीवन की एकरसता को ताड़ने के लिए आवश्यक है। प्रकृति और जीवन के अनेक उदाहरणों से कवि जीवन और जगत में परिवर्तन को रेखांकित करते हैं।

सर्वप्रथम कविता में क्षोभ और वेदना का भाव है। सुख का दुख में आह्लाद का विषाद में, आर्द्रता का शुष्कता में परिवर्तन होने से यह वेदना पैदा होती है। अतः कवि पुनः दुख से सुख की ओर बढ़ता है और अंत में इस निर्णय पर पहुँचता है कि परिवर्तन ही जीवन का सत्य है। इसी भाव की विवेचना व्याख्या खण्ड में की गई है।

व्याख्या: कवि का संकेत है कि संसार में सुख-दुख का क्रम चलायमान रहता है। सुख और दुख परस्पर सम्बद्ध है। बिना दुख के सुख का महत्व आँका नहीं जा सकता। दुखों की आधारभूमि में ही सुखों की सारता नजर आती है। आँसू के बिना जीवन भी भार युक्त हो जाता है अर्थात् जड़ हो जाता है। सुख जीवन को जड़ बना देता है और जड़ता जीवन की गतिहीन अवस्था है। दुख एक प्रकार से सृजनात्मक होता है। सुख की अपेक्षा दुख के भाव की व्यापकता है। इसीलिए संसार दीन दुर्बल है। संसार में क्षमा, दया और प्यार जैसे उदाŸा मानवीय भाव का जन्म दुख से ही होता हे। इन्हीं मानवीय भावों की महिमा संसार में हैं

कवि लिखता है कि काल की विविधता में सुख और दुख का द्वन्द्व सदैव विद्यमान रहता है। आज जो दुख के क्षण है, वही कल आनन्द में बदल जाएगा और अतीत का जो हर्ष था, वही वर्तमान में विषाद में बदल जाएगा। सुख-दुख की अनुभूति से संसार पीड़ित है। इस संसार की समस्या का समाधान स्वप्न के समान गूढ़ रहस्यमयी है। इसका निदान इस लोक जीवन से परे आध्यात्मिक लोक में सम्भव है। वहाँ राग और विषाद की अनुभूति नहीं होती। वास्तविक जीवन का अर्थ विकास है। विकास की प्रक्रिया में सुख-दुख से ही जीवन क्रम गतिमान रहता है सुख-दुख के क्रम का ह्रास होने पर मृत्यु गति निश्चित है। संसारी जीवन का अर्थ है निरन्तर गतिशीलता और परिवर्तन। मृत्यु जीवन के इस गतिक्रम के रूकने या ठहरने का नाम है।

विशेष:

1. सुख-दुख की द्वन्द्वात्मक अनुभूतियों का वर्णन है। दुख सृजनात्मक भावों का मूल आधार है।

2. इस पद्यांश में आधुनिक चिन्तपरक भाव विद्यमान है। सुख-दुख की द्वन्द्वात्मक चेतना आधुनिकता की पहचान है। 'जगत जीवन' का अर्थ विकास कहकर कवि ने आधुनिक चेतना को व्यक्त किया है।

3. छन्द में आंतरिक लय और संयोजन है, प्रसादगुण युक्त शब्दावली है।

13. जय शंकर ने भी कामायनी में सुख-दुख यही विकास का क्रम, यही 'भूमा का मधुमय दान कहकर सुख-दुखात्मक द्वन्द्व को व्यक्त किया है।

सुख भोग खोजने .... प्रणत शान्त

''सुख भोग खोजने आते समब, आये तुम करने सत्य खोज,

जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के मन के मनोज।

जड़ता हिंसा स्पर्धा में भर, चेतना अहिंसा नम्र ओज;''

''साम्राज्यवाद था कंस, बंन्दिनी मानवता पशु बलाक्रान्त

श्रृंखला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन पद शक्ति-भ्रान्त

काराग्रह में दे दिव्य जन्म, मानव आत्मा को मुक्त, कान्त

जन शोषण की बढ़ती यमुना, तुमने की नत पद प्रणत शान्त।"

शब्दार्थ: मनोज: मन (आत्मा) का प्रकाश, दूसरा अर्थ: कामदेव, स्पर्धा: होड़, पंकज: कीचड़ में उत्पन्न होने वाला (कमल), सरोज: कमल, बलाक्रन्त: बल से पीड़ित।

प्रसंग: प्रस्तुत कवितांश पंत ग्रन्थावली खण्ड 2 में 'युगपथ' काव्य संग्रह में संकलित 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता से अदृधृत है। इस कविता में कवि ने गाँधी जी के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं।

व्याख्या: 'बापू के प्रति' कविता में पंत जी ने गाँधी जी के वाह्य रूप और अन्तरचेतना का सजीव चित्रण किया है। बापू, माँसहीन, रक्तहीन और अस्थिशेष होने पर भी शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं। वे चिरपुराण और चिरनवीन भी हैं। वे जीवन की पूर्ण इकाई हैं और वह अमर आधार भी हैं, जिस पर भावी संस्कृति समासीन होगी। उनका त्याग ही विश्व-भेग का वरसाधन है। उनकी भस्म काम तन की रज से जग और जग-जीवन पूर्ण काम हो जाएगा। उनके सत्य अहिंसा के ताने बाने से ही मानव-मन निर्मित होगा। बापू ने पशु बल की कारा से जग को मुक्ति दिलाई और विद्वेष घृणा से लड़ना सिखाया। उन्होंने भेद-विग्रहों से जर्जर जाति का उद्धार किया। बापू ने चरखें में युग-युग का

विषय जनित विषाद स्पृहा और आल्हाद का सूत्रपात का निनाद भर दिया। 'भेद-भाव भीनि-भार का हरण करके एकता और अखण्डता की स्थाना के लिए उन्होंने ''एकोऽहं बहुस्याम' का सेदश दिया। मोहन की भाँति साम्राज्यवाद रूपी कंस से बंदिनी मानवता का उद्धार कराकर ''जयति सतयं मा भैः का संदेश दिया।

विशेष:

1. इस पद में कवि ने गाँधी को एक युग पुरूष के रूप में स्वीकार करते हुए उन्हें सत्य का अन्वेषक, आत्म तत्व रूप, अहिंसा प्रतिष्ठात्मक और पशुत्व के स्थान पर भानवता का प्रचारक कहा है।

2. तत्सम शब्दों का जैसे: हृदय, श्रृंखला, प्रहरी, मुक्त, प्रणत आदि के प्रयोग से तथा समासिक शब्द जैसे - बलाक्रान्त, शक्ति-भ्रान्त, जन-शोषण, नज पदप्रणत के प्रयोग से ओज गुण प्रधान भाषागत सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।

सघन मेघों का .... मुझे भेजता मौन।

''सघन मेघों का भीमाकाश

गरजता है जब तम साकार

दीर्घ भरता समीर निःश्वास

प्रखर भरती जब पाावस धार;

न जाने, तपक तड़ित में कौन

मुझे इंगित, करता तब मौन।

देख वसुधा का यौवन-भार

गूंज उठता है जब मधुमास

विधुर उर के-से मृदु उद्गार

कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छवास;

न जाने सौरभ के मिस कौन

संदेश मुझे भेजता, मौन।

शब्दार्थ: वसुधा: पृथ्वी, मधुमास: बसंत, उद्गार: कथन, सौरभ: सुगन्ध, भीमाकाश: विशालकाय नभ, नक्षत्रों: तारे, इंगित: संकेत।

प्रसंग: प्रस्तुत कवितांश पंत की 'पल्लव' काव्य संकलन में ''मौन निमन्त्रण'' शीर्षक कविता से लिया गया। पंत की भावानुभूतियों को यह कविता पूरी तरह व्यक्त करती है। 'वीणा' का शिशु सुलभ चकित हृदय 'ग्रंथि' की प्रेम-वेदना के टीस में तप कर 'पल्लव' तक आते-आते अब प्रकृति का मुक्त रूप से साक्षात्कार करने लगता है। उसे प्रतीत होता है कि एक विराट सत्ता , रहस्यमयी शक्ति उसे प्रकृति के संकेतों से मौन निमन्त्रण दे रही है। कवि प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि :-

व्याख्या: उमड़-घुमड़ कर जब बादल मूसलाधार पानी बरसाते हैं तो धरती हरी भरी हो जाती हैं धरती का उल्लास देखकर ऐसा लगात है जैसे कोई युवती अपने यौवन सौन्दर्य से खिलकर आकर्षक हो गई हो। वसुधा के इस यौवन को देखकर बसन्त रूपीनायक संगीतमय हो उठता है अर्थात् बसन्त का प्रभाव प्रकृति में दिखने लगा है। धरती पर फूल हर्षित होकर इस तरह खिलते हैं मानों वियोगी हृदय के मधुर भाव व्यक्त हुए हों।

जिस समय प्रकृति का सौन्दर्य पूरे संसार पर छा जाता है तो मन शिशु के समान चकित हो जाता है। रात में खिलती चाँदनी की आभा, नीरवता और प्रेमाकुलता को देख-देखकर मन चकित हो जाता है। ऐसा लगता है कि विश्व एक शिशु के सामन चकित हो प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहा हे। इस विश्व शिशु की पलकों में भोले रंगभरे चित्र स्वप्न में घूम रहे हों। उस रात्रिकालीन प्रशांत वातावरण में तारों के बहाने न जाने कौन सी शक्ति अपने पास आने का आमन्त्रण देती है। जब घनघोर अंधकार में काले विशालकाय बादल गर्जन करते हुए गरजते हैं। तब उस भयानक वातावरण में वायु भी सिहर कर एक लम्बी साँस छोड़ती हुई प्रतीत होती है और जब बरसात की झड़ी लगती है तब बादलों के ठकराने से उत्पन्न हुई बिजली में मूझे कौन इशारा कर रहा है। जब बिजली कौंधती है तो ऐसा लगता है कि उस प्रकाश-किरण में मुझे कोई निमन्त्रण दे रहा है।

विशेष:

छायावाद अपनी समस्त प्रवृत्तियों के साथ इस पद्यावतरण में उपस्थित है। रहस्यमयता, जिज्ञासा का भाव, प्रकृति सौन्दर्य, प्रेमानुभूति, सूक्ष्म व कोमल कल्पना, मानवीकरण, सरस व मधुर शब्दावली, चित्रात्मकता व प्रतीकात्मकता सभी प्रकार से संवेदना व शिल्प गत सौन्दर्य की सृष्टि देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए ''देख वसुधा का यौवन-भार, गूंज उठता है जब मधुमास में'' में सुन्दर मानवीकरण है।

13.6 काव्य में संवेदना

13.6.1 कोमल व सुमधुर कल्पना और सहज भावानुभूति

साहित्य-शास्त्र में काव्य के चार तत्व स्वीकार किये गए हैं -राग-तत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि तत्व, और शैली तत्व। इनमें से 'कल्पना' का सर्वाधिक महत्व स्वीकार किया गया है, क्योकि कल्पना ही कवि की वह अद्भुत शक्ति है, जिसके सहारे वह अपनी कृति में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष जीवन तथा जगत के मानसिक चित्र अंकित किया करता है। पन्तजी की 'वीणा' से लेकर 'लोकायतन' एवं 'चिदम्बरा' तक की समस्त रचनाओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि पन्त में अनुभूति की अपेक्षा कल्पना का ही प्राधान्य है, उसमें रागतत्व की प्रबलता नहीं है, अपितु बौद्धिकता का प्राधान्य है, और इस बौद्धिकता का संचालन कल्पना-शक्ति कर रही है। कविवर बच्चन ने भी 'पल्लविनी' की भूमिका में ठीक ही लिखा है कि 'पन्तजी कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं - इच्छा के गायक हैं-वासना, तीव्रतम इच्छा के नहीं।" कविवर पन्त ने अपनी कोमल कल्पना के सहारे भारतीय नारी के सहज एवं स्वाभाविक सौन्दर्य की अत्यन्त मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की है।

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा-स्नान,

तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी की लहरों का गान।

उषा का था उर में आवास, मुकुल का मुख में मृदुल विकास,

चाँदनी का स्वभाव में वास, विचारों में बच्चों की साँस।

किन्तु वास्तविकता यह है कि यह कवि की कोई अनुभूत घटना नहीं है, अपितु उसकी कल्पना द्वारा प्रस्तुत एक करूण चित्र है, जिसमें काल्पनिक अनुभूति भी अपनी भावुकता, कोमलता एवं सुकुमारता के कारण अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ भी प्रतीत होती है।

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,

उमड़ कर आंखों में चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।''

13.6.2 प्रकृति चित्रण

अपने आरम्भिक कवि-जीवन से ही कवि पंत ने प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त की है और प्रकृति ने कवि को अनन्त कल्पनाएँ, असीम भावनाएँ एवं असंख्य सौन्दयनुभूतियाँ प्रदान की है। कवि ने प्रकृति के कोमल एवं सुकुमार रूप के ही दर्शन अधिक किए हैं और वे उनके झंझा-झकोर, गर्जन-तर्जन वाले कठोर एवं भयंकर रूप की ओर उन्मुख नहीं हुए हैं। यही कारण है कि कविवर

पन्त को सुकुमार प्रकृति का कवि कहा जाता है और उन्हें ‘सुन्दरम्‘ का गायक माना जाता है, क्योंकि प्रकृति का कुत्सित, कुरूप एवं कुटिल रूप उन्हें आकर्षित नहीं कर सका है और वे प्रायः‘ प्रकृति के सुन्दर पक्ष पर ही अधिक असक्त एवं अनुरक्त रहे हैं।

पंत के काव्य में प्रकृति विविध रूपों में चित्रित हुई है। कहीं आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, संवेदनात्मक रूप में, रहस्यात्मक रूप में, प्रतीकात्मक रूप में और कहीं वातावरण निर्माण के रूप में, अलंकार योजना के रूप में, मानवीकरण के रूप में तो कहीं लोक शिक्षा के रूप में। इन विविध रूपों में प्रकृति के स्वरूप का चित्रण कवि ने किया है। आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन की छटा दृष्टव्य हे।

बादलों के छायामय-मेल, घूमतें हैं आँखों में फैल।

‘‘अवनि और अंबर के वे खेल, शैल में जलद में शैल!

शिखिर पर विचर मरूत-रखवाल, वेणु में भरता था जब स्वर,

मेमनों-से मेघों के बाल, कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर,

पंत काव्य में प्रकृति मानव के हास, उल्लास, आनन्द, मनोरंजन को प्रकट करती हुई अंकित होती है तो कहीं मानव के शोक विषाद, रूदन और अवसाद के क्षणों में स्वयं को अश्रृपात करती हुई और शोक मनाती हुई भी चित्रित होती है। कविवर पंत ने प्रकृति के दोनों संवेदनात्मक रूप की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं।

उदाहरणार्थ

‘संध्या के बाद‘ कविता में अत्यन्त गम्भीर वातावरण की सृष्टि हुई है -

जाड़ों की सूनी द्वाभा में झूल रही निशि छाया गहरी,

डूब रहे निष्प्रभ विषाद में खेत बाग, गृह तरू तट लहरी।

बिरहा गाते गाड़ी वाले, भूँक भूँक कर लड़ते कूकर

हुआ हुआ करते सियार देते विषण्ण निशि बेला को स्वर।

इस प्रकार प्रकृति का मानवीकरण पंत ने बखूबी किया है। कवि पन्त ने भी प्रकृति के विविध उपकरणों पर मानवीय चेष्टाओं एवं भावनाओं का सुन्दर एवं सजीव आवरण चढ़ाकर उनका इतना प्रभावशाली वर्णन किया है कि प्रकृति सचेतन एवं सप्राण हो उठी है। उदाहरण के

लिए, कवि की ‘छाया‘, ‘बादल‘, ‘मधुकरी‘, ‘निर्झरी‘, ‘संध्या‘, ‘सन्ध्यातारा‘, ‘नौका-विहार‘, ‘चाँदनी‘, ‘जुगनू‘ आदि कविताएँ ली जा सकती है, जिनमें कवि ने प्रकृति को मानवीय भावों, भावनाओं, चेष्टाओं, व्यापारों आदि से ओतप्रोत करके पूर्णतया सचेतन प्राणियों के रूप में अंकित किया है; जैसे - संध्या जैसी निर्जिव एवं निष्प्राण बेला को कवि ने मधुर, मंथर एंव मृदु गति से आती हुई एक रूपसि के रूप में कितनी सजीवता एवं सचेतनता के साथ अंकित किया है -

कौन तुम रूपसि, कौन? व्योम से उतर नहीं चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप, सुनहला फैला केश कलाप,

मधुर, मंथर, मृदु, मौन!

मूँद अधरों में, मधुरालाप, पलक में निमिष, पदों के चाप,

भाव संकुल, बंकिम, भ्रूचाप, मौन, केवल तुम मौन।

इस प्रकार स्वयं रमणीय पल्लव-दल-शोभा ने पन्त को बहुत आकर्षित किया। वे प्रकृति की ओर बरबस खिंच गये। सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध नारी के मोह-पाश में भी न बँधते हुए उनका कवि-हृदय प्रकृति छाया की दिशा में अग्रसर हुआ। साधारण जगत् की तुलना में प्रकृति की विशिष्टता एवं मनोहरता का परिचय देते हुए पन्त जी कहते हैं:-

‘‘छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,

बाले! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?

13.6.3 प्रेम व नारी सौन्दर्य

सौन्दर्य की साकार मूर्ति स्त्री ने पन्त के काव्यों में उन्नत स्थान प्राप्त कर लिया। यहाँ भी स्त्री के अन्तर-सौन्दर्य ने ही पन्त का अधिकाधिक मात्रा में आकर्षित किया।

पन्त की दृष्टि में लावण्य का अच्छा स्थान है। लावण्य, इनके अनुसार, सौन्दर्य का सूक्ष्मतम रूप है। संसार-भर की कलाओं में, और खासकर काव्य में में, इस लावण्य का विस्तार-पूर्वक वर्णन मिलता है। लावण्य की विशिष्टता के ही कारण सौन्दर्य की साकार मूर्ति (भारतीय) नारी को ‘लावण्यवती‘ कहा जाता है। ऐसी लावण्यवती नारी को सौन्दर्य-चेतना-परम्परा में प्रमुख स्थान देना ही पन्त का लक्ष्य है।

लावण्य का वर्णन नारी को छोड़कर नहीं होता। इसलिए, लावण्य का अभिन्न सम्बन्ध प्रेम-भावना से भी है। नारी सौन्दर्य का वर्णन कामुकता की दृष्टि से ही नहीं होना चाहिए। इस तरह करने से सौन्दर्य-चेतना सजीन न रहकर यान्त्रिक, निर्जीव होती है। लावण्य की सहगामी प्रेम को प्रकाशित करते हुए पन्त का कहना है:-

''प्रेम के पलकों में सौन्दर्य का स्वप्न है''

प्रेम के लिए पलकें प्रदान करते हुए पन्त उसे सजीव बनाते हैं। ऐसा सजीव-प्रेम निच्छल स्नेह-सिक्त होता है न कि कामुक। पन्त का प्रतिपादित यह प्रेम विश्व-मानव-साधना का सहयोगी हे।

पंत ने प्रेम व स्त्री सौन्दर्य को सदा अपनी काव्य सरिता में प्रवाहित किया। कभी वह मलयानिल बन सुखद स्पर्श से रोमांच प्रदान कर गयी तो और कभी सुगंधित साँसों के द्वारा अंतर को पुलकावलियों से हरा-भरा बना गयी; कभी वह ज्योत्सना की सुकुमार तुलिका से छू मधुर स्वप्न-धारा में नहला-बहला गयी तो और कभी वह अपनी अन्तर सुषमा की शीलत, सुखद लपटों की छाया में अंचल का अमर सुख दिला गयी।

''तुम कितनी निश्छल हो, शैल-प्रकृति-सी निर्मल

सहज हृदय-गुण ही नारी शोभा का संबल!''

13.6 .4 वेदना और निराशा

छायावाद में वेदना की काव्यात्मक व कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। सभी छायावादी कवि स्वभावतः भावुक, जिज्ञासु होने के कारण और परिस्थितियोंवश भी विषाद और विरह-वेदना को व्यक्त करते रहे। शायद युगीन परिस्थितियों में कवियों की इच्छाओं का पूर्ण न होना, सामाजिक असमानता और राष्ट्रीय आन्दोलन की असफलता भी इनको निराशा की ओर मोड़ देती थी। पंत भी समाज में विद्यमान विकृतियों, विसंगतियों और अन्ध रूढ़ियों से क्षुब्ध थे। पंत ने वेदना को काव्य का उद्गम स्थल मानते हुए लिखा है -

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान

उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।''

पंत की कविताओं में वेदना और निराशा के कई चित्र मिलते हैं। आँसू, उच्छवास और ग्रन्थि जैसी रचनाओं में उन्होंने इसी वेदना को व्यक्त किया है। वेदना सिर्फ कसक व टीस ही नहीं देती वरन् मधुर संगीत भी सुनाती है। कवि लिखते हैं -

‘‘कल्पना में है कसकती वेदना,

अश्रु में जीता सिसकता गान है

शून्य आहों में सुरीले छन्द है,

मधुर लय का क्या कही अवसान है।’’

13.6.5 लोक-हित-चिंतन

काव्य विकास के प्रारंभिक सीढ़ी पर खड़े होकर पंत ने अधिकतर प्रकृति सौन्दर्य के दर्शन कर लिये थे। परन्तु वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन, जयोत्स्ना आदि काव्य सुमनों में प्राकृतिक छाया चित्रों के चित्रित होने पर भी लोक हित चिंतन एवं लोक मंगल भावना भी दिखाई देती है। लक्षणा तथा व्यंजना प्रधान उनकी कई कविताओं में लोक हित साधना की अभिव्यक्ति हुई है। वीणा से गुंजन-ज्योत्स्ना तक आते-आते कवि की काव्य-चेतना में चिंतन तथा मानवीयता का रंग अधिक मिलने लगा। द्वितीय सोपान पर पंत को मानव-मन का करूणामय आक्रदंन सुनायी पड़ा जिसने उनके दिल को गला दिया। इस स्तर की रचनाओं में भाव तीव्रता अधिक होती गयी तो भाषा में सरलता आ गयी। यहाँ मानव जीवन की निरीहता के प्रति कवि की सहानुभूति अच्छी तरह प्रकट हुई। मानवीय ममता से प्रभावित इन काव्यों में मार्क्सवाद का रंग अधिक मिला हुआ है। युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या नामक काव्य-त्रय में पंत की प्रगतिवादी युग-चेतना काव्य-चेतना बन गयी। मार्क्स की ओर झुके रहने पर भी कवि गाँधीवाद को नहीं छोड़ सके। इसलिए, द्वितीय सोपान की कुछ कविताओं में समन्वयवाद की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है।

यथा:-

‘‘हम गाँधी की प्रतिभा के इतने पास खड़े,

हम देख नहीं पाते सत्ता उनकी महान,

उनकी आभा से आँखें होतीं चकाचौंध,

गुण-वर्णन में साबित होती गूँगी जबान।’’

गांधी जी में इतनी शक्ति थी कि उन्होंने कई युगों, धर्मों और देवताओं की प्राण-चेतना अपनी करूणा में मिला ली। सत्य-चरण धर इस धरती पर विचरण करनेवाले देव पुत्र (मोहनदास करमचंद गांधी) का अतुलित महत्व मानते हुए मानवतावादी (गांधीवादी!) कवि पंत का लिखना है:-

''देव पुत्र या निश्चय वह जन मोहन मोहन,

सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धरा कण!

विचरण करते थे उसके संग विविध युग वरद,

राम, कृष्ण, चैतन्य, मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद!''

मानव हित चिन्तन के सन्दर्भ में कवि पंत गाँधी की तरह रवीन्द्र नाथ ठाकुर से भी प्रभावित थे। सेवा-भाव की परिणति को ही जीवन का सर्वस्व मानते हुए मानवतावादी कवि पन्त 'युगवाणी' में कहते है:-

''मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें, -मानव ईश्वर!

और कौन सा स्वर्ग चाहिए मुझे धरा पर?

यह भी सेवा भाव का सुन्दर उदाहरण है!

पंत की सभी रचनाओं में किसी न किसी रूप में और किसी न किसी मात्रा में मानवतावाद का पुट मिला हुआ है। मानवीय ममता पर आधारित मानवतावाद की अन्तर्धारा ही इनके विविध काव्य-कुसुमों को एकता में सूत्र में पिरो देने वाली युग-चेतना हे। इसी महत्वपूर्ण युग-चेतना का विराट रूप आगे चलकर चतुर्थ सोपान पर अवस्थित 'लोकायतन' में मिल जाता है।

''नित्य कर्म पथ पर तत्पर धर, निर्मल कर अंतर,

पर-सेवा का मृदु पराग भर मेरे मधु संचय में।''

विश्व-चेतना की साधना में पन्त ने समदर्शी अरविंद को अपना आधार बनाया है।

उनके काव्य में अरविंद-दर्शन के प्रभाव से धरा-स्वर्ग का अंतर मिटाकर अपने अन्तर-वैभव को विस्तृत एवं वितरित करने का सुअवसर उन्हें मिला। उनके सृजन का उद्देश्य विश्व में प्रेम का प्रसार करना हो गया था।

''मनुज प्रेम के आँसू! ताराओं से अधिक जिएँगें,

यश वैभव से अधिक रहेंगे, विश्व प्रेम के आँसू।'' कहकर उन्होंने कहा कि विश्व प्रेम के आँसू लहराते रहे तो मानव-सेवा करने की आग रूचिर राग बनकर पल्लवित होने लगेगी। तभी पंत कहते हैं -

''विश्व प्रेम का रूचिर राग, पर सेवा करने की आग,

इस को संध्या की लाली सी माँ! न मंद पड़ जाने दे।''

13.6.6 प्रगति चेतना

माना जाता है कि सन् 1935 के पश्चात एक निश्चित अर्थ में प्रगतिवादी चेतना फूटती लक्षित होती है और इसका श्रेय सुमित्रानन्दन पंत को दिया जाता है। क्योंकि सन् 1936 में प्रकाशित 'युगान्त' में पंत जी की मार्क्सवादी दर्शन और सामाजिक जीवन-यथार्थ की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

वर्तमान जीवन के दुःखु, निराशा, अभाव और कुण्ठा आदि का जिस सामाजिक व्यवस्था में जन्म हुआ वह अनेकानेक वर्गों में विभक्त समाज की रूग्ण-व्यवस्था है। जब तक वर्गहीन समाज की स्थापना नहीं होती तब तक जीवन के दैन्य, अभाव, असन्तोष, कुंठा और अवसाद समाज से नहीं निकल सकते। मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होकर पंतजी ने भी शोषक के रूप में साम्राज्यवादी, पूँजीवादी और सामन्तवादियों के अत्याचारों और शोषण का विरोध किया है।

'युगवाणी' की 'श्रम जीवी' शीर्षक कविता में कवि ने समाज के सर्वहारा वर्ग का स्पष्ट चित्र अंकित करके उनकी सामाजिक दुर्व्यवस्था और दीन-हीन दशा को उजागर किया है -

वह पवित्र है, वह जग के कर्दम से पोषित,

वह निर्माता, श्रेणि, वर्ग, धन, बल से शोषित!

मूढ़, अशिक्षित, सभ्य शिक्षितों से वह शिक्षित,

विश्व उपेक्षित,-शिष्ट संस्कृतों से मनुजोचित

दैन्य कष्ट कुंठित,-सुन्दर है उसका आनन,

गन्ते गात वसन हों, पावन श्रम का जीवन!

काव्य में पंत जी ने ग्रामीण दीन-दुखियों के विषादी स्वरों को भी मुखरित किया है -

''घर-घर के बिखरे पन्नों में नग्न, क्षुधार्त कहानी

जन-मन के दयनीय भाव, कर सकती प्रकट न वाणी।''

इस प्रकार पंत जी ने ग्रामीण-जीवन के विभिन्न अंगों का सजीव चित्रण करके ग्रामों की सामाजिक दशा को भी उजागर किया है। मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव पंत जी की नारी-भावना पर भी पड़ा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पंत की रचनाएँ अपने-अपने ढंग से अपनी शक्ति और सीमाओं के साथ छायावादी कविता को प्रगतिवादी चेतना के मंडित करती हैं।

13.6.7 गाँधी चेतना

गाँधी जी ने कथनी और करनी का समन्वय किया। वे सत्य और अहिंसा को एक दूसरे का पूरक मानते हैं। उनका विचार है कि अहिंसा के बिना सत्य की खोज असम्भव है। अहिंसा को वे सत्य का मेरूदण्ड मानते थे। उन्होंने अपने विचारों को व्यावहारिक रूप में परिणत कर जीवन में ढ़ाला था। महात्मा गाँधी व्यावहारिक, आदर्शवादी, कर्मयोगी और प्रयोगवादी थे।

किसी भी कवि पर अपनी युगीन परिस्थितियों का प्रभाव किसी न किसी रूप में पड़ना स्वाभाविक है। युग-पुरूष गाँधी जी की विचारधारा का प्रभाव भी पंत पर पड़ा। उन्होंने गाँधी जी के सिद्धान्तों और आदर्शों को अपने काव्य में व्यक्त किया है।

पंत का दृढ़ विश्वास है कि मानव के सर्वांगीण विकास और लोक मंगल के लिए गाँधीवाद का आश्रय नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः गाँधीवाद मानवता का भाव सिखाता है -

''गाँधीवाद जगत् में आया ले मानवता का नव मान,

सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण।

गाँधीवाद हमें जीवन भर देता अन्तर्गत विश्वास,

मानव की निस्सीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।''

महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर पंत जी ने राजनीति और आध्यात्म का जो समन्वय किया है। इससे स्पष्ट होता है कि वे भावी-मानव को संस्कृति का संदेश दे रहे हैं।

पंत जी बापू की तरह मानते हैं कि सत्य अहिंसामय है और अहिंसा सत्यमय है। प्रेम के द्वारा ही पाशविकता का अन्त होकर नव मानवता प्रतिष्ठित होगी और ये धरा स्वर्ग बन जायेगी। ''सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन'' गांधी जी ने सर्वोदय तथा ग्राम-सुधार के लिये कुटीर उद्योगों और परिश्रम के महत्व पर विशेष बल दिया था। पंत जी ने उन्ही भावनाओं की निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यक्ति दी है -

'तकली, चरखे से अब आधुनिक यन्त्र

स्थापित करने को अब मानवता का विकास।"

13.7 काव्य में शिल्प विधान

13.7.1 भाषा विधान

पंत की काव्य-भाषा छायावादी काव्य में अपना एक विशेष महत्व रखती है। इनकी भाषा संस्कृत निष्ठ होते हुए भी भावाभिव्यंजक और चित्रमय है। अपनी चित्रात्मक भाषा के कारण ही पंत एक कुशल शब्द-शिल्पी कहे जाते हैं। पंत जी ने अपनी भाषा में राग और संगीत को बनाए रखने के लिए तितली के पंखों जैसी सुकुमोल, आकर्षक और रंगीन शब्दावलियों का प्रयोग किया है। पंत जी के भाषा प्रयोग में एक और विशेषता यह है कि उन्होंने गम्भीर एवं परूष भावों को कोमल कान्त पदावली में अभिव्यक्ति प्रदान कर भाषा-क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया। पंत जी ने भाषा को भाव की अनुगामिनी कहा है। जैसा भावों का स्तर होगा वैसी ही भाषा हो जायेगी। आजकल की कविता में आंचलिक शब्दों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, पंत जी इसके विरोधी हैं। वह ग्रामीण शब्दों के प्रयोग को काव्य भाषा में स्थान देने के लिए सहमत नहीं है। उनके कथनानुसार ग्रामीण शब्दों से भाव सौन्दर्य में अपकर्ष आता है। 'गुंजन' के संगीत में एकता है, 'पल्लव' के स्वरों में बहुलता है। 'पल्लव' की भाषा दृश्य जगत के रूप-रंग की कल्पना से मांसल और पल्लवित है। 'गुजन' की भाषा भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौन्दर्य से युक्त हैं। 'ज्योत्सना' का वातावरण भी सूक्ष्म की कल्पना से ओत-प्रोत है। 'उतरा' की भाषा 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्णधूलि' और 'अमिता' से अधिक सरल है। उतरा की भाषा में प्रवाह पूर्ण और गत्यात्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'युगान्त, युगपथ, ग्राम्या और युगवाणी की भाषा अधिक स्वाभविक एवं सरल है। ऐसा प्रतीत होता है कि पंत जी ने इन काव्यकृतियों की रचना जन साधारण की अभिरूचि को ध्यान में रखकर की है। युगवाणी में सर्वप्रथम पन्त ने युगभाषा को स्वीकारा, उसका सफल और सार्थक प्रयोग किया। युगवाणी में पंत ने छन्द के बंधनों को तोड़ा।

पंत जी की भाषा का तीसरा रूप उनकी कुछ अरविन्द दर्शन से प्रभावित काव्यकृतियों - 'स्वर्ण किरण', 'अतिमा', 'स्वर्णधुलि' में उपलब्ध होता है। इन रचनाओं में पंत की भाषा गम्भीर और दार्शनिक पक्षों को स्पष्ट करने वाली है। भाषा में संस्कृत और तत्सम शब्दों का प्रयोग आवश्यकता से अधिक हुआ है। इन रचनाओं की भाषा जन साधारण के निकट नहीं है। इनमें कही कहीं तो पंत जी ने पूर्णतः संस्कृति पदों का प्रयोग कर दिया है।

पंत की भाषा के कई रूप हैं किन्तु उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। पंत की दार्शनिक भाषा में संस्कृत शब्दों का आधिक्य है। संस्कृत की अनेक पदावलियां पन्त ने ज्यों की त्यों स्वीकार कर ली है।

संस्कृत के तत्सम शब्द तो किसी प्रकार परिहार्य हैं किन्तु कही-कहीं पन्त ने पूरा संस्कृत पद ही उद्धृत कर दिया है, 'गीत हंस' से उदाहरण -

खोल हृदय में, नव आशा का अंतरिक्ष

श्रद्धा नत गाए .... असतोमा सदमगय

तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।।

पन्त की भाषा में अनायास ही उर्दू और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। मार्क्सवाद और साम्यवाद से प्रभावित उनकी रचनाओं से इन शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। उनकी भाषा में प्रयुक्त उर्दू, शब्द हिन्दी ध्वनियों के साथ आने पर हिन्दी के ही प्रतीत होते हैं। पागल, पैगम्बर, हजरत, बंदे, शक, आजाद, ईसा, दुनियां, पाबन्द, हुक्म, मुरीद, नामुमकिन। तारा, कारकुन और कुर्क इत्यादि शब्द उर्दू और फारसी के हैं। जन साधारण की भाषा में आज भी इन शब्दों का प्रयोग बराबर हो रहा है।

पन्त जी अंग्रेजी के वर्डसवर्थ, कीट्स, शैली और टेनीसन आदि कवियों से प्रभावित हुए हैं और उन्होंने अंग्रेजी साहित्य की गहन अध्ययन भी किया है। अत' उनकी भाषा में कुछ अंग्रेजी शब्दों का आ जाना स्वाभाविक ही था। बहुत से वाक्यों की रचना भी पन्त जी ने अंग्रेजी शैली के अनुकरण पर की है। कहीं अंग्रेजी मुहावरों और वाक्य-विन्यास तथा पद-विन्यास का पन्त जी ने प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पन्त जी ने अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी अनुवाद कर दिया है। अतः यह स्पष्ट है कि पंत की भाषा पर भी अंग्रेजी भाषा शैली का प्रभाव है। शब्द शिल्पी के रूप में अंग्रेजी वाक्यों का अनुवाद कर पंत जी ने हिन्दी में एक नवीन शैली का प्रचलन किया। पन्त ने अनेक शब्दों का निर्माण अंग्रेजी शब्दों के आधार पर किया है।

अपनी भाषा का शब्द कोष समृद्ध करने हेतु हमें दूसरी भारतीय और अभारतीय भाषाओं के सामान्य शब्दों का ग्रहण करने में संकोच नहीं करना चाहिए। पन्त जी ने भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने में संकोच न कर अपनी उदारता का परिचय दिया है -

1. भद्दे पीतल गिलट के कड़े।

2. जलती पुलिस चौकियाँ, डाकघर।

3. तार फोन के गये कट।

13. मीलों पैदल चल घर।

5. उलटी झट पटरियाँ रेल की।

5. भर दो 'वोटो' से झोली।

13. रेडियो से विद्युत ध्वनि उर्मि।

13. दीर्घ आइफिल टावर का दृश्य।

14. सिनेमा से पश्चिम को नव्य।

11. प्रथम इसने ही स्पूटनिक छोड़े।

हिन्दी अभी इतनी समर्थ और समृद्ध नहीं हुई कि इन रेखांकित शब्द अन्य भारतीय भाषाओं के हैं। शब्द प्रयोग में पंत जी उन्मुक्त व स्वच्छन्द रूप से कार्य करते हैं।

कवि पंत ने नए शब्दों में तत्सम व दत्भव दोनों प्रकार के शब्दों में प्रत्यय लगाकर नवीनता पैदा की है जैसे ''फैनिल', 'रंगिणी', तरंगिनी', 'स्वप्निल,, 'तन्द्रिल'। भावों के अनुकूल बेझिझक होकर अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण कवि ने किया है जैसे स्वर्णिम (गोल्डन) सुनहला-स्पर्श (गोल्डन टच), भग्न-हृदय (ब्रोकन हार्ट), अजान (इनोसेंट) आदि। ग्रामीण शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक, 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' में हुआ है। इन दोनों काव्य कृतियों की भाषा जनसाधारण के निकट की भाषा है। पन्त जी इन कृतियों में साम्यवाद से प्रभावित दीख पड़ते हैं। अतः साम्यवाद के प्रचार और प्रसार के लिए पन्त जी ने ग्रामीण भाषा का सहयोग लिया है। 'ग्राम्या' की वह 'बुड्ढा', 'ग्राम वधू', 'ग्राम युवती', 'चमारों का नृत्य', 'कहारों का नृत्य' इत्यादि कविताओं में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। खेड़े, पुरवे, दूह, हुल्लड़, सुथरा, मरघट, हथकन्डे, चूल्हा, चौका, कनकौवे, हौवे, धक्कामुक्की, रेलपेन, हत्थापाई इत्यादि ग्रामीण शब्दों का प्रयोग पंत ने 'लोकायतन' में किया है। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में चिमटी, पंजर, टेढ़ी, धरती, पिचका, तुबिया, अम्बर आदि ग्रामीण शब्दों तथा ऐं चीला, छाजन, अबोध आदि देशज शब्दों का प्रयोग भी कही-कहीं हुआ है।

अपनी भाषा को गतिशील और प्रवाहमय बनाने के लिए प्रत्येक कवि इन लोकव्यापी मुहावरों और कहावतों का प्रयोग करता है। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग में भाषा में चमत्कार और आकर्षण बढ़ता है। कोमल वृत्त्यों के कवि होने के कारण पंत जी मुहावरे और लोकोक्तियों के हिमायती नहीं है। पंत जी ने अनजान में कुछ मुहावरों का प्रयोग कर दिया है।

1. आठ आँसू रोते निरूपाय।

2. बार बार भर ठन्डी सांस।

3. दुखिया का सिन्दूर लूट गया।

13. मैं पावों में बेड़ी डालूं।

5. और नहीं तो क्या चूल्लू भर पानी तुझे नहीं है।

पंत जी ने इने गिने कुछ लोकोक्तियों के प्रयोग भी किए हैं -

1. साँप छछुन्दर की न दशा हो।

2. चुहिया खोदगी पहाड़ क्या।

   या टिटिहा पाटेगा सागर।

3. दीप चले छाया अंधियाला।

13. जगत में आता मुट्ठी बाँध।

   जगत से जाता हाथ पसारं

5. शिष्य शक्कर बनते गुरू रहते गुड़।

अतः हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंत की भाषा शब्द-शक्तियाँ से युक्त होकर भावानुकूल और प्रवहमयी बन गई है। पंत की भाषा में, स्वाभाविकता और संगीतात्मकता तथा प्रवाह आदि सभी तत्व आदि से अन्त तक मिलते हैं। पंत की भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। उसमें कही-कहीं उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, ब्रज भाषा, बंगला और देशज ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग उन्होंने कम किया। लिंग परिवर्तन और शब्द निर्माण में पंत जी स्वतंत्र रहे हैं। पंत की भाषा की विशेषता है भावानुकुलता। वे भाषा को भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मानते हैं चूंकि पंत ने कई काव्य-पीढ़ियों में रचनाएं की हैं, इसलिए उनकी काव्य भाषा निरंतर परिवर्तनशील भी रही। पंत ने भाषा और संचेतना में गहन सम्बन्ध स्वीकारा है। शब्द शक्तियों के प्रयोग से उनकी भाषा में नया निखार और प्रकाशन क्षमता आई है।

13.7.2 अलंकार विधान

अलंकारों का प्रयोग पंत जी ने साधन के रूप में किया हे। अलंकार को पंत जी ने सौन्दर्य और चमत्कार का पर्याय माना हे। उनका कथन है कि जब कविता स्वयं ही सुन्दर है तब उसे अलंकार की आवश्यकता माना गया ....

ग्रम्या में लिखते हैं

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।

वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।।

''पल्लव प्रवेश' की भूमिका में उन्होंने अलंकार के विषय में कहा है - अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं वरन् भाषा की अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं। अलंकार भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आधार व्यवहार एवं रीति नीति है, पृथक स्थितियों के स्वरूप भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चिह्न हैं .... वे वाणी के हास, अणु, स्वप्न, पुलुक, हाव-भाव हैं।

पंत के काव्य में शब्दगत और अर्थगत सभी अलंकारों की सहज छटा दर्शनीय है। अलंकार कविता में सहज ही जा आ जाते हैं। वर्णो की आवृत्ति होने पर अनुप्रास अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ - 'पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश', पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' (पल्लव),

'मुकुलों मधुपों का मृदु मधु मास' (गुजंन) यमक अलंकार में एक ही पद की एक से अधिक बार भिन्न अर्थो में आवृत्ति होती है। पंत काव्य में एक उदाहरण है:-

''तरणी के साथ ही तरल तरंग में तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

(पल्लविनी)

''यहाँ तरणि (नाव और सूर्य) द्वयर्थक होने के कारण चमत्कार है। गुंजन का यह पद तर रे मधुर-मधुर मन, तप रे विधुर-विधुर मन में पुनरूक्ति अलंकार है। कवीवर पंत ने अपने काव्य-शिल्प को अधिक आर्कषक, प्रभावशाली और प्रभविष्णु बनाने के लिए नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:-

''पंखुड़ियों-से नयन, प्रवालों से अरूणाधर।

मृदु मरन्द से मांसल तन, बाहे लतिका सी सुन्दर।। गीता हंस

''खड़ा-ठूंठ सा भुंगुर जीवन' में अमूर्त के लिए मूर्त उपमान तो 'एक जलकण, जल शिशु-सा पलक पर' पर मूर्त के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग कवि ने किया है।

रूपक अलंकार में उपमेय पर उपमान का आरोप रहता है। पंत के काव्य में ढ़ेरो उदाहरण देखने को मिलते हैं।

जहां चमत्कार अर्थ के लक्षण के सहारे प्रतिभासित हो ओर आरोप का अतिशय वर्णित हो, वहां रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

कमल पर जो चारू खंजन थे प्रथम, पंख फड़फड़ाना नहीं जानते

चपल चोखी चोट पर अब पंख की, ये विकल करने लगे हैं भ्रमर को।।

यहां पर कमल, खंजन, भ्रमर और चोट क्रमशः मुख-नेत्र, कटाक्ष एवं प्रेमी के उपमान हैं। यहां आरोप का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन है। कमल (मुख) का अर्थ लक्षणा के सहारे स्पष्ट होता है।

जब उपमेय की उत्कृष्टता का निरूपण करने के लिए उसकी उपमान के रूप में परिकल्पना (संभावना-व्यक्त) होती है तब उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इसमें मानों, किधौं, इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता है।

निराकार तुम मानो सहसा, ज्योति पुंज में हो साकार

बदल गया द्रुत जगत जाल में, धर कर नाम रूप नाना।

दृष्टान्त देकर जब किसी तथ्य को स्पष्ट किया जाता है तब दृष्टान्त अलंकार होता है

सुख दुख के मधुर मिलन से, यह जीवन हो परिपूर्ण?

फिर घन में ओझल हो शशि, घिर शशि से ओझल हो घन।

यहां सुख और दुःख के मिश्रण से जीवन की परिपूर्णता का चित्रण करते हुए शशि और घन की लुकाछिपी के साथ मूल विषय के बिम्ब का स्पष्ट रूप से वर्णन हुआ है।

एक वस्तु को देखकर जब दूसरी सदृश वस्तु की स्मृति होने का वर्णन किया जाता है, वहां स्मरण अलंकार होता है -

देखता हूं, जब पतला, इन्द्रधनुषी-सा हल्का

रेशमी घूँघट बादल का खोलती है जब कुमुदकला

तुम्हारे मुख का भी ध्यान, मुझे तब करता अंतर्धान।।

कुमुदकला के बादल का घूँघट खोलने पर कवि को मुख का स्मरण हो आता है।

विरोधी शब्दों द्वारा सुन्दर रीति से अनुकूल भाव व्यंजना करने में विरोधाभास अलंकार होता है। यह भी पंत का प्रिय अलंकार है।

अचल हो उठते है। चंचल, चपल बन जाते हैं अविचल,

पिघल पड़ते हैं पाहन दल, कुलिश भी हो जाता कोमल।।

अचल के चंचल होने, चपल के अविचल होने, कुलिश के कोमल होने में विरोधाभास अंलकार है।

उपमेय के उत्कर्ष की व्यंजना के लिए जब उसके व्यापारों का वर्णन किया जाता है, वहां उल्लेख अलंकार होता है।

हम सागर के धवल हास हैं, जल के धूम गगन की धूल

अनिल फेन उषा के पल्लव, वारि वसन बसुधा के फूल

व्योम बेलि ताराओं की गति, चलते अचल गगन में गान।

हम अपलक तारों की तन्द्रा, ज्योत्सना , हिम शशि के यान।।

यहां भी कवि ने बादल (उपमेय) की व्यंजना कराने के लिए सागर के धवल हास, ऊषा के पल्लव, अचल गगन, और शशि के यान, इत्यादि उपमानों का प्रयोग किया है। इसलिए उल्लेख अलंकार का प्रयोग यहां भी हुआ है।

'मानवीकरण' की दृष्टि से पन्त की 'संध्या' और 'चांदनी' कविताएँ विशेष महत्व की हैं।

कहो, तुम रूपसि कौन,

व्योम से उतर रही चुप चाप

छिपी निज छाया छाव में आप

सुनहला फैला केश कलाप

मधुर मन्थर, मृदु मौन।।

यहां पर कवि ने संध्या का मानवीकरण किया है। इसके अतिरिक्त डालता पावों परचुपचाप .... मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है।

13.7.3 पन्त काव्य में छन्द विधान

कविवर पंत ने अपने काव्य सौन्दर्य के संवर्धन के लिए विभन्न छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के प्रयोग में पंत जी मात्रिक छन्दों के पक्ष धर रहे हैं। पंत के काव्य में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों को हम सममात्रिक, अर्द्धसम मात्रिक नवीन अर्द्धसम मात्रिक, त्रिसम मात्रिक, मित्र मात्रिक नव विकर्षाधार के मात्रिक छन्द अतुकान्त छन्द, मुक्त छन्द, चतुर्दशपदी, सम्बोधनगीति, शोक गीति इत्यादि वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। पंत जी ने अपनी काव्य-साधना के प्रारम्भिक काल में छन्द के बंधन और तुक के महत्व को स्वीकार किया है। पंत के कथनानुसार हिन्दी का संगीत मात्रिक छन्दों में ही प्रस्फुटित हो सकता है। मात्रिक छन्द स्वर और राग प्रधान होते हैं जब कि कवित्त छन्द में व्यंजन वर्णों का बाहुल्य रहता है। अतः व्यंजन वर्ण प्रधान छन्दों में हिन्दी काव्य का सौन्दर्य निखर नहीं सकता। पंत की तुक योजना बड़ी सरल और स्वाभाविक है। उनके छन्द की प्रथम पंक्ति तो सहज रूप में निकल पड़ती है और दूसरी पंक्ति में वह उसका तुक मिल देते हैं। लय भी छन्द का मुख्य तत्व होता है। पंत ने गम्भीर सोच विचार के बाद ही लय परिवर्तन को स्वीकार किया है। लय संगीत का प्राण है और संगीत तथा राग छन्द का प्राण है। भावों के अनुसार कविता में लय घटती बढ़ती रहती है। पंत के काव्य में यति-परिवर्तन के कारण लय में विविधता और समरसता आई है। पंत को सममात्रिक छन्द अधिक प्रिय है। पंत ने अपने काव्य में परम्परागत सम-मात्रिक छन्दों में रोला, पीयूषराशी, राधिका, सुखदा, पद्धरि, अरिल्ल, चौपाई, सिन्धुजा, कोक्लिक, तरलनयन, महेन्द्रवज्रा, डिल्ल, श्रृंगार इत्यादि का प्रयोग किया है।

नन्दन छन्द

तुम आलिंगन करते हिमकर, नाचती हिलोरें सिहर-सिहर। 16 मात्राएं

सौ-सौ बाहों में बाहें भर, सर में आकुल उठ-उठ गिरकर।। 16 मात्राएं

नन्दन छन्द के आविष्कारक और प्रयोगकर्ता स्वयं पंत ही हैं। नंदन छन्द श्रृंगार छन्द की लय पर 16 और 12 मात्राओं के योग से बनता हैं इस छन्द में हर्ष और उल्लास की अभिव्यक्ति सुन्दर बन पड़ती है। दूसरे इस छन्द का महत्व इसलिए भी है क्योंकि यह संयोग श्रृंगार प्रकृति वर्णन के अनुकूल छन्द है। नंदनछन्द का प्रत्येक चरण विषक मात्रिक होता है ओर अंत में गुरू लघु (1) रहता है।

कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम	16
अये अभिनव अभिराम	12
मृदुलता ही है बस आकार	16
मधुरिमा छवि श्रृंगार	12

छन्द वैविध्य की दृष्टि से पंत का काव्य अत्यन्त धनी है। पंत के छन्द भावों के अनुकूल ही चलते हैं। छन्द को अपने इंगितों पर बनाने में पंत पूर्णतः दक्ष हैं। पंत छन्द प्रयोग में कहीं भी बंधकर नहीं चलते हैं। वह छन्द को जैसा चाहते हैं तोड़ मरोड़ लेते हैं।

उदाहरण के लिए तीस मात्राओं के तांटक छन्द का प्रयोग पंत ने 'स्वर्ण किरण' संग्रह की 'भू प्रेमी' कविता में किया है। प्राचीन नियमों के अनुसार इसमें 'मगण' (ऽ ऽ ऽ) तीन गुरू मात्राओं का आना आवश्यक है। परन्तु उक्त उदाहरण में मगण सम्बन्धी नियम का पालन पंत ने नहीं किया है। उदाहरण स्वरूप -

''चांद हंस रहा निविड़ गगन में उमड़ रहा नीचे सागर

इंद्र नील जल लहरों पर मोती की ज्योत्सना रही विचार

महानील से कहीं सघन मरकत का यह जल तत्व गहन

जिसमें जीवन ने जीवों का किया प्रथम आश्चर्य सृजन।''

कवि में ग्राम्या, उत्तरा, पल्लव, स्वर्ण-धुलि, स्वर्ण किरण में मुक्त छंद का प्रयोग किया है। मुक्त छन्द कल्पना व भावातिरेक के अनुसार ध्वनि, लय और संगीत की मैत्री पर चलता हे। पंत के काव्य में इस छंद का सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलता है। संक्षिप्त परम्परागत और नवीन दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग उनके काव्य में हुआ है।

13.7.4 पंत काव्य में बिम्ब विधान

बिम्ब के द्वारा मन में चित्र आँकने पर ही कविता का आस्वाद सम्भव है। भावाभिव्यक्ति के लिए कवि बिम्ब प्रस्तुत करता है। कविवर पंत के विभिन्न प्रेरणा-सूत्रों में प्रकृति का विशेष हाथ रहा है। सहज व कोमल स्वभाव के कारण पंत सौन्दर्य की तरफ आकर्षित रहे हैं, भले ही वह सौन्दर्य मानवी हो या प्राकृतिक। प्रेम का एक सरस स्पर्श कवि की कोमल कल्पना के तार को छू भर देता है और कवि भाव-प्रधान कल्पना-प्रधान गीतों को सृजता है। पंत काव्य के बिम्ब-विधान में कवि की भावुकता जहाँ जोर मारती है वहाँ कवि आवेश में गाँवों में बसने वाले नर-नारी व दुःखी जनों के सजीव चित्र खींच देता है। अनेक सुन्दर बिम्बों की श्रृंखला उनकी कविता में मिलती है। बिम्ब निर्माण के लिए भावानुभूति व कल्पना-प्रवणता के साथ चित्र भाषा की भी आवश्यकता होता है। पंत ने 'पल्लव' के भमिका प्रवेश में में लिखा है ''कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों; सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े; जो अपने भाव को अपनी ही आँखों के सामने चित्रित कर सके, जिनका सौरभ सूँघते ही साँसों द्वारा अन्दर

पैठकर हृदयकाश में समा जाए; जिनका रस मदिरा की फेनराशि की तरह अपने प्याले से बाहर झलक उसके चारों ओर मोतियों की झालर की तरह झूलने लगे, छन्दों में न समाकर मधु की भाँति टपकने लगे।"

मूर्त और अमूर्त उपादानों की सहायता से कवि बिम्ब रचता है। पंत ने भी प्रेम, वेदना, करूणा आदि भावों का जो मूर्तीकरण किया उसमें नारी, प्रकृति तथा पुरूष आदि की श्रेणी के उपादानों से सहायता ली गई है तथा नारी प्रकृति, आदि मूर्त विषयों को वेदना, करूणा आदि भावनाओं तथा कवि की रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि एन्द्रिय सम्वेदनाओं से समन्वित कर चित्रित किया गया है। पंत काव्य में बिम्ब-योजना के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

''कभी चौकड़ी भरते मृग से, भू-पर चरण नहीं धरते।

मस्त मतंगज कभी झूमते, सजग शशक नभ को चरते।"

(चाक्षुस बिम्ब)

× × ×

''उड़ रहा ढ़ोल धाधिन, धातिन

औ हुड़क घुडुकता, ढिम ढिम ढिन,

मंजीर खनकते खिन खिन खिन

मदमस्त रजक, होली का दिन'' (ध्वन्यात्मक बिम्ब)

× × ×

''नव बसंत के परस स्पर्श से पुलकित वसुधा बारम्बार।"

(स्पर्श बिम्ब)

× × ×

''तप्त कनक श्रुति देह सहज चन्दन सी वासित (ध्राण विषयी बिम्ब)

× × ×

''एक पल, मेरे पिया के डग पलक

ये उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे।” (स्मृति बिम्ब)

× × ×

‘‘खड़ा द्वार पर, लाठी टेके, वह जीवन का बूढ़ा पंजर,

चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी, हिलते हड्डी के ढ़ाँचे पर।‘‘

उभरी ढ़ीली नसें जाल सी, सूखी ठठरी से हैं लिपटीं,

पतझर में ढूँठे तरू से ज्यों सूनी अमरबेल हो चिपटी।‘‘ (प्रत्यक्ष बिम्ब)

× × ×

इस प्रकार स्पष्ट है कि अपनी मूर्त विधायिनी कल्पना शक्ति द्वारा अपने काव्य में विविध प्रकार के बिम्बो की सृष्टि पंत जी ने की है। सुन्दर, सजीव व मामर्मिक बिम्बों की नवीनता व्यापकता और समृद्धि के कारण ही पंत जी अपने काव्य शिल्प को समृद्ध कर सके हैं।

13.7.5 प्रतीक विधान

भाव अभिव्यक्ति के लिए पंत ने अपने काव्य में प्रतीकों का प्रयोग किया है। पंत ने पौराणिक, इतर पौराणिक प्रतीकों के साथ ऐतिहासिक, साहित्यिक व अध्यात्मिक चेतना के प्रतीकों का भी सुन्दर संयोजन किया है। कवि ने संस्कृति के प्रतीकों के द्वारा आधुनिक सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है और मानवीय मूल्यों और सामाजिक आदर्शों का स्पष्टीकरण भी किया है। पंत ने शील और शक्ति के प्रतीक ‘राम’, करूणा और सहृदयता की प्रतीक ‘सीता’, अनन्त पौरूष के प्रतीक ‘लक्ष्मण’, अहं के प्रतीक ‘रावण’, प्रेरणा के प्रतीक ‘हनुमान’ और कटुता की प्रतीक ‘कैकयी’ का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। उदाहरणार्थ -

‘‘अहम वृत्ति रावण लंका दुर्गति गढ़

विषय विप्र बंदी, चिति-इन्द्रिय वन में

मुक्त हुई तुम, मिटा अविद्या मय तम

हनुमत् प्रेरित जागी चेतना जन में।।”

इस उदाहरण में कवि ने रावण को अहम् वृत्ति, लंका को कुबुद्धि और हनुमान को प्रेरणा और चेतना का प्रतीक बताया है।

इसी तरह -

देव दग्ध ऐसे ही क्षण में, पश्चिम के नभ में बल दर्पित

धूमकेतु उदंड उगा नव, राष्ट्रकूटों को करने आतंकित।।

'धूमकेतु' पौराणिक प्रतीक है। धूमकेतु अशुभ, अपशकुन का पौराणिक प्रतीक है। कवि ने यहां धूमकेतु को फासिस्ट प्रवृत्तियों के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया है।

उधर वामन डग स्वेच्छाचार, नापता जगती का विस्तार

टिड्डयों सा छा अत्याचार, चट जाता संसार।।

'धूमकेतु' पौराणिक कथा पर आधृत एक इतर पौराणिक प्रतीक है। इसी तरह 'वामन-डग' भी पौराणिक कथा पर आधारित एक इतर पौराणिक प्रतीक है। वामन-डग-साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का प्रतीक है अर्थात् वामनडग की भांति ही साम्राज्य-वाद का जाल समस्त विश्व को अपने में फंसा लेना चाहता है।

प्रतीकों में लक्षणा शक्ति किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। पंत के काव्य में लाक्षणिक वर्ग के प्रतीकों का प्रभाव अधिक रहता है। पंत ने सुन्दर अभिव्यक्ति दी है:-

बिन्दु 'सिन्धु! बून्दों का वारिधि, 'बूदों' पर अवलम्बित

व्यक्ति समाज! व्यक्ति में रहता, अखिल उदधि अन्तर्हित।।

लक्षणा के द्वारा ही बूंद और सिन्धु का अर्थ कवि ने स्पष्ट किया है। बूंद व्यक्ति और सिन्धु समाज का प्रतीक है।

सुनता हूं इस निस्तल जल में, रहती है मछली मोती वाली

पर मुझे डूबने का भय है, मोती है तट का जल माली।।

यह रहस्यात्मक प्रती क है क्योंकि यहाँ पर कवि ने रहस्य को विभिन्न प्रकार के प्रतीकों द्वारा मूर्तिमान किया है।

मोती की मछली-ब्रह्म का प्रतीक है।

निस्तल जल-परमार्थ का प्रतीक है।

'स्वर्ण युगान्त' और 'स्वर्णयुगान्तर' क्रमशः अध्यात्मक चेतना प्रधान नये युग के आरम्भ तथा नव युग की क्रांति के प्रतीक हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पंत-काव्य में प्रतीकों का समुचित उपयोग किया गया है।

13.7.6 काव्य रूप

(क) प्रगीत काव्य

अन्य छायावादी कवियों की भाँति पंत जी का अधिकांश काव्य प्रगीतात्मक है। इन्होंने 'छाया', 'प्रथम रश्मि', 'वीचि-विलास', 'मधुकरी', 'अनंग', 'नारी रूप', 'नक्षत्र', 'सांध्य वंदना', 'तारागीत', 'किरणों का गीत' आदि अनेक संबोधन गीत भी लिखे हैं। शैली एवं विषय दोनों की दृष्टियों से इनके प्रगीतों में विविधता दिखायी देती है। 'पल्लव' में पंत जी के 1940 तक के अधिकांश महत्वपूर्ण प्रगीत संकलित हैं। बाद के 'उत्तरा', 'अतिमा', 'वाणी' और 'किरण वीणा' में लघु प्रगीत संकलित है। प्रगीत काव्य में कवि जीवन के तीव्र क्षणों की अभिव्यक्ति के साथ ही अनुभव की तीव्रता, भावों की एकान्विति, संक्षिप्तता एवं संगीतात्मकता प्रमुख होती है। अपने आरंभिक रचना काल से ही पंत संगीतात्मकता के प्रति अत्यंत जागरूक दिखायी देते हैं। वीणा से गुंजन तक कवि ने स्वरैक्य या स्वर मैत्री को गेयता का मुख्य आधार बनाया है। जिसमें तुकांतता का भी विशिष्ट योगदान है। 'अभिलाषा', 'आकांक्षा', 'निर्झरी', 'अनंग', 'मौन निमंत्रण', 'प्रथम रश्मि' आदि आरंभिक कविताओं में पंत ने गेयता का विशेष ध्यान रखा है। 'प्रथम रश्मि' की प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं -

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तू ने कैसे पहचाना?

कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि! पाया तू ने यह गाना?

(ख) काव्य रूपक

पन्त के शिल्प की सबसे महान उपलब्धि है उनके काव्य रूपक। काव्य रूपक सर्वथा एक नई विधा हे। हिन्दी साहित्य में काव्यरूपक प्रायः कम ही लिखे गए हैं। काव्यरूपक के विषय में विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने 'पंत जी का नूतन काव्य-दर्शन' पुस्तक में लिखा है।

रेडियों से सम्बद्ध होने के बाद पंत ने 'विद्युत वसन', 'शुभ्र पुरूष', 'उत्तरशती', 'फूलों का देश', 'रजत शिखर', 'शरद्चेतना', 'शिल्पी', 'ध्वंस शेष', 'अप्सरा', 'स्वप्न और सत्य' तथा 'सौवर्ण' जैसे काव्य रूपक लिखे, जो अधिकांशतः विचार-प्रधान हैं। ये रूपक कवि के आत्म-संघर्ष से लेकर व्यक्ति और विश्व की सभी संभव समस्याओं पर विचार करते हुए अंत में जीवन-निर्माण के एक नवीन स्वप्नलोक से जुड़ जाते हैं। इनमें भी पंत के अरविन्दवादी

अंतश्चेतना की समन्वयवादी भूमिका ही अधिक उजागर हुई है। नाटय तत्वों की क्षीणता और काव्यत्व की प्रधानता के कारण स्वयं पंत भी इन्हें नाटक की अपेक्षा कथोपकथन प्रधान श्रव्य-काव्य ही कहना अधिक पसंद करते हैं। 'स्वर्ण धूलि' में संगृहीत 'मानसी' शीर्षक रचना गीतिनाटय का उदाहरण मानी जा सकती है। सात दृश्यों में विभक्त इस गीति नाटय की रचना एकांकी की पद्धति पर की गयी है। इसमें गीत, वाद्य, वेशभूषा आदि का भी समूचित विधान किया गया है।

'पन्त जी के काव्य रूपकों की प्रथम विशेषता है आन्तरिक संघर्षों को काव्यमय रूप देना। कल्पना के द्वारा लाए गये चित्रों के विरोध में वर्तमान काल का यथार्थ चित्रण भी कवि ने विस्तार से यत्र-तत्र किया है।

इस प्रकार चित्रमयता, कथोपकथन और अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से पन्त के काव्यरूपक सफल हैं।

(ग) प्रबंधात्मक कथा -

प्रबंधात्मकता की दृष्टि से 1965 में प्रकाशित पंत का 'लोकायतन' शीर्षक महाकाव्य विशेष उल्लेखनीय है। इसे कवि ने दो खंडों में प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम खंड 'बाह्य परिवेश' शीर्षक से रेखांकित है, जिसे चार उप शीर्षकों - पूर्व स्मृति, आस्था, जीवन द्वार, संस्कृति द्वार और मध्य बिंदु: ज्ञान के अंतर्गत विभक्त किया गया है। इन उप शीर्षकों के अंतर्गत भी अनेक गौण शीर्षक आयोजित किए गए हैं।

इस महाकाव्य का द्वितीय खंड 'अंतश्चैतन्य' शीर्षक से रेखांकित है, जिसे तीन प्रमुख उपशीर्षकों कला द्वार, ज्योति द्वार और उत्तर स्वप्न: प्रीति - में विभक्त किया गया है। इस महाकाव्य में पंत जी ने भारतीय संस्कृति में प्रमुख प्रतीकों, विशेष रूप से रामकथा के पात्रों के माध्यम से प्राचीन के साथ नवीन को सम्बद्ध करने का कलात्मक प्रयास किया है।

अभ्यास प्रश्न

1. ''सुमित्रानन्दन पंत 'प्रकृति के सुकुमार' एवं 'कोमल कल्पनाओं' के कवि हैं।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

2. पंत काव्य में महात्मा गाँधी, टैगोर और अरविन्द के दर्शन का प्रभाव रेखांकित कीजिए।

3. पंत काव्य में संवेदना और शिल्प विधान का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

13. पंत के रचनाकार व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुए काव्य चेतना के विकास की जानकारी दीजिए।

5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:

(1) पंत काव्य में प्रगतिशील तत्व

(2) पंत काव्य में सौन्दर्य-विधान

(3) पंत काव्य में भाषा

(4) पंत काव्य में लोकहित चिन्तन

13.8 सारांश

सुमित्रानंदन पंत छायावादी काव्यधारा के प्रमुख प्रतिनिधि कवि हैं। अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने के लिए पंत जी के कथ्य और उसके प्रस्तुतिकरण में किसी प्रकार की दूरी नहीं है। अनुभूति और अभिव्यक्ति के अभेद ने उनकी काव्य'-कला को अखण्ड सौन्दर्य प्रदान किया। वस्तुतः पन्त जी कल्पना और सौन्दर्य के कवि है और प्रकृति व नारी की आधारभूमि में उनका कल्पनाशील सौन्दर्यमयी व्यक्तित्व को विस्तार मिला है। परिणामस्वरूप सुन्दर काव्य सृष्टि का निर्माण हुआ। पंत जी का सौन्दर्य बोध देश और काल के अनुसार लगातार परिवर्तनशील व गतिशील रहा है। प्रगीत-कला का उन्मुक्त व स्वच्छन्द प्रयोग कवि ने किया है। खड़ी बोली की नीरसता को तोड़कर वे काव्यभाषा की चित्रमयता में नयापन उपस्थित करते हैं। उनकी कविता का स्वच्छन्दतावाद कथ्य संवेदना व शिल्प तीनो क्षेत्रों में नया परिवर्तन या क्रांन्ति उपस्थित करती है। पंत की संवेदना में विविधता थी। प्राकृतिक सौन्दर्य पर लट्टू होकर कल्पना की ऊँची उड़ान भरने वाले कवि ने यथार्थ के ठोस धरातल पर दीन-हीन श्रमिकों एवं कृषकों की दयनीय दशा के भी गीत गाए हैं।

वीणा, ग्रन्थि, पल्ल्व, गुंजन, ज्योत्स्ना आदि की तरंगे बहुरंगी प्राकृतिक शोभा में रंगी हुई हैं तो युगांत, युगवाणी, ग्राम्या की लहरों में मानवीय ममता की मार्मिक सजीवता विद्यमान है; स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजत शिखर, वीणा - जैसी तरंगे बहिरंतर संयोजन से सम्पन्न हैं तो लोकायतन की विराट वीचि में समस्त विश्व की नवीन चेतना साकार है; अतिमा, सौवर्ण, पौ फटने से पहले, कला और बूढ़ा चाँद की तरंगे अधिकतर नूतन प्रतीकात्मक सौंदर्य प्रतिफलित करती है।

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाजपेयी, डॉ. कैलाश, आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

2. किशोर, डॉ. श्याम नन्दन, आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, प्रथम संस्करण में शिल्प।

3. डॉ. नगेन्द्र, काव्य बिम्ब, प्रथम संस्करण, नेशलन पब्लिशिंक हाउसेज, दिल्ली।

13. बाजपेयी, नन्द दुलारे, नया साहित्य नये प्रश्न, प्रथम संस्करण, विद्यामंदिर, ब्रह्मानल, वाराणसी-1।

5. पंत, सुमित्रा नन्दन, आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा और नवीनता, ई. चैलिशेव, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

5. नीरज, गोपाल दास, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

13. भटनागर, डॉ. राम रतन, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, युनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद।

13. यादव, विश्वम्भर, सुमित्रा नन्दन पंत - प्रथम संस्करण, किताब महल।

14. जोशी, शान्ति, सुमित्रा नन्दन पंत - जीवन और साहित्य, प्रथम संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

11. पंत, सुमित्रा नन्दन, छायावाद का पुर्मूल्यांकन, प्रथम संस्करण, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद।

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वाजपेयी, नंददुलारे, कवि सुमित्रानंदन पंत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1997

2. सिंह, नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. तिवारी, संतोष कुमार, छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, भारतीय ग्रंथ निकेतन, 133, लाजपत राय मार्केट, नई दिल्ली, 11006, संस्करण-1974।

13. शर्मा, डॉ. हरिचरण, छायावाद के आधार स्तंभ, राजस्थान प्रकाशन जयपुर।

5. मिश्र, डॉ. रामदरश, छायावाद का रचनालोक, ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली, 1980।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'सुमित्रानन्दन पन्त की कविता अनुभुति एवं अभिव्यक्ति के संतुलन का सुन्दर उदाहरण है।' सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

इकाई 14 सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' परिचय, पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 महाप्राण निराला : व्यक्तित्व और कृतित्त्व
14.4 कवि-कर्म
14.5 काव्य-पाठ और ससंदर्भ व्याख्या
14.6 काव्य की अन्तर्वस्तु
14.6.1 प्रेम और सौन्दर्य
14.6.2 नारी के प्रति आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति: एक नवीन दृष्टिकोण
14.6.3 प्रकृति चित्रण
14.6.4 राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना
14.6.5 आध्यात्मिक चेतना
14.6.6 विद्रोह धर्मिता
14.6.7 विषाद और करूणा
14.6.8 भक्ति-भावना
14.6.9 व्यंग्य और विनोद
14.7 काव्य का रचना-विधान
14.8 सारांश
14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थी! आप सभी जानते हैं कि छायावादी काव्यान्दोलन का उदय नवजागरण काल की बेला में हुआ। उस समय देश में सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय धरातल पर एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात हो चुका था। छायावाद मुक्ति-'चेतना' का काव्य था। निराला के कवि मन में स्वाधीनता आन्दोलन व उसके बाद का परिदृश्य अपने पूरे सामाजिक व आर्थिक संदर्भों के साथ गहराई से पेठ गया था जिसकी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई है।

इस इकाई में छायावाद के प्रतिनिधि कवि के काव्य को छायावादी तत्वों व युगीन परिस्थितियों के आलोक में देखने की चेष्टा की गई है। उनके काव्य में आध्यात्मिकता बौद्धिकता के साथ भावुकता और अनुभूतियों को उद्दीप्त करने का विशिष्ट रचनात्मक कौशल भी है। निराला के प्रेम गीत हों, उद्बोधन गीत हों या अर्चना गीत हों, सभी में भाव, विचार और कल्पना का अद्भुत सौन्दर्य देखने को मिलता है। उन्होंने अपने युग में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों, पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण, समाज के दीन हीन वर्ग - चाहे भिक्षुक हों या मजदूरिन, वर्ण व्यवस्था के नाम पर किए जाने वाले सामाजिक अभिशापों पर निराला ने स्वच्छन्द अभिव्यक्ति दी है। निराला काव्य में संवदेनागत विविधता के साथ उनका शिल्पगत सौष्ठव भी निराला ही रहा। भाषिक कसाव और मुक्त छन्द के परिणामस्वरूप उनके काव्य ने अपने समय से आगे की अभिधा प्राप्त की।

इस इकाई में निराला काव्य का पाठ और उनके काव्य का अनुशीलन उक्त सभी विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप:

1. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के जीवन-परिचय, व्यक्तित्व और कवि कर्म से परिचत हो सकेंगे।

2. निराला काव्य-पाठ से परिचित हो सकेंगे।

3. निराला के काव्य के पद्यांश की सप्रसंग व्याख्या करने की पद्धति को भली-भाँति समझ सकेंगे।

14. निराला काव्य की अन्तर्वस्तु व शिल्प सौन्दर्य को उद्घाटित कर सकेंगे।

5. छायावादी कवियों में निराला की स्थिति और उनके साहित्यिक अवदान को समझ सकेंगे।

14.3 महाप्राण निराला : व्यक्तित्व और कृतित्त्व

जीवन परिचय - महाकवि निराला का कवित्व जितना वैविध्यपूर्ण, रोचक एवं विशिष्ट है उतना ही उनका व्यक्तित्व भी उदार , दृढ़ व आकर्षक है। निराला का जन्म सन् 1896 में बसंत पंचमी के दिन ‘कान्यकुब्ज‘ ब्राह्मण परिवार के पं. रामसहाय त्रिपाठी के घर उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के एक गाँव ‘गंढ़ाकोला‘ में हुआ था। पं. राम सहाय त्रिपाठी बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल राज्य में नौकरी करते थे। इनका स्वभाव उत्यन्त उग्र था और एकमात्र संतान निराला जी को पिता के क्रोध को झेलना पड़ता था। कहा जाता है कि निराला की माँ सूर्य की अराधना करती थी और इनका जन्म भी रविवार को हुआ था अतः निराला जी का जन्म नाम सूर्यकुमार रखा गया। बाद में स्वयं निराला जी ने इसे ‘सूर्यकान्त‘ में परिवर्तित कर दिया। निराला जी की

प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बंगला में ही हुई। हाईस्कूल के जीवन में ही इन्होंने संगीत, घुड़दौड़ और कुश्ती में दक्षता प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त संगीत में भी उनकी गहन रूचि थी व उनका कण्ठ स्वर बहुत सधा हुआ था। सन् 1911 में जब ये हाईस्कूल में अध्ययनरत थे तब इनका विवाह मनोहरा देवी से हुआ। सन् 1916 में देश में जब महामारी का प्रकोप फैला तब त्रिपाठी परिवार भी उसके आगोश में समा गया। पिताजी चल बसे, उसके एक साल बाद इनके चाचा, भाई, भाभी, भतीजी और पत्नी की भी मृत्यु हो गई। अकेले तेईस वर्षीय निराला पर अन्य अपने एक पुत्री एवं पुत्र के अतिरिक्त चार बालकों के भरण-पोषण का भार आ गया। इन विषम परिस्थितियों में भी निराला अविचिलित रहे। निराला जी ने महिषादल राज्य में नौकरी की, परन्तु अपने स्वाभिमानी व विद्रोही स्वभाव के कारण निराला को नौकरी छोड़नी पड़ी। जीविका का और कोई साधन नहीं था इसलिए निराला जी साहित्य के क्षेत्र में ही अनुवाद, लेख, टीका-टिप्पणी जो भी लिख सकते थे, लिखते रहे और पत्र-पत्रिकाओं में छपवाने के लिए संघर्षरत् रहे। पर धीरे-धीरे उनकी प्रतिभा का सम्मान हुआ और वे साहित्य-जगत में स्थिर होते गए।

वस्तुतः निराला जी का पूरा जीवन ही तूफानों में घिरने, टकराने और अन्ततः दृढ़ता से उन पर विजय पाने की अमर गाथा है। 'राम जी की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' की रचना उनकी इसी मन स्थित का प्रमाण है। 27 जनवरी, सन् 1947 को बसंत पंचमी के दिन निराला जयन्ती का समारोह बड़े धूमधाम से काशी में मनाया गया था। निराला के जीवन के अन्तिम दिन शारीरिक और मानसिक कष्ट में बीते और लम्बी बीमारी के उपरान्त 15 अक्टूबर, 1961 को दारागंज (प्रयाग) में उनकी इहलीला समाप्त हो गया। उनकी 'नये पत्ते ', 'बेला', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' दारागंज के लिखी गए रचनाएं मानी जाती है।

व्यक्तित्व - विषम परिस्थितियों में जहाँ निराला टूटे हैं वहीं अपने अन्तर से शक्ति-ग्रहण की जीवन-संघर्ष से जूझे भी हैं। यही कारण है कि निराला के व्यक्तित्व में हम संघर्ष प्रियता, रूढ़ियों का विरोध, विद्रोह व क्रान्ति का स्वर विशेष रूप से देखते है। तो दूसरी ओर करूणा तथा जगत की नश्वरता का भाव भी। निराला ने छन्द को ही निर्बन्ध नहीं किया वरन् स्वयं भी बन्धन रहित रहे। फकीरी और स्वाभिमानी उनके स्वभाव में रही। उनके बाह्य व्यक्तित्व की झलक इस प्रकार से थी - ''कद लगभग छः फुट, चौड़ा सीना, विशाल मस्तक, दिव्य तेज से परिपूर्ण आँखें, बैल की तरह चौड़े कन्धे, विशाल बाहू, तीखी सुडौल नासिका और लम्बे बाल। साहित्यिक सभा, गोष्ठियों और अन्य सामाजिक आयोजना में उनका सुदर्शन व्यक्तित्व छाया रहता था। उनकी आकृति और शारीरिक संरचना ग्रीक योद्धाओं के समान थीं, इसीलिए कोई उन्हें 'अपोलो' कहता था, तो कोई 'विवेवकानन्द'।

निराला जी जीवन भर परोपकारी रहे। निराला जी के आत्मसम्मान की प्रकृति को लोग अहंकार, समझते रहे परन्तु निराला जी का अहंकार व्यक्तिगत स्तर पर कभी नहीं रहा। वे बोलते

तब समस्त हिन्दी साहित्य व साहित्यकारों की ओर से बोलते, दलित व पीड़ित मानव की ओर से बोलते। फैजाबाद के साहित्य सम्मेलन में आचार्य शुक्ल को नीचे और राजैनितक नेताओं को उच्च मंच पर आसीन देखकर वे टण्डन से उलझ गऐ थे। सन् 1935-36 में गाँधी जी जब हिन्दी साहित्य सम्मलेन के सभापति चुने गऐ थे तब हिन्दी साहित्यकारों के सन्दर्भ में दोनों की वार्ता में विरोधाभास नजर आया था। वास्तव में निराला का स्वाभिमान देश, जाति, संस्कृति और साहित्य का स्वाभिमान था। मानवता की रक्षा और सत्य पालन के लिए समाज की नजर में पतित, अछूत, नगण्य एवं पापी व्यक्तियों को भी बिना हिचक गले लगाया। इनकी पत्नी मनोहरा देवी के प्रति निराला का प्रेम भी अटूट था। जिस प्रकार रत्नावली के कथन ने तुलसी को राम भक्ति की ओर विमुख किया उसी प्रकार निराला को भी उनकी पत्नी के हिन्दी-कविता और देश-प्रेम की ओर मोड़ा। इस सम्बन्ध में एक घटना सर्वप्रसिद्ध है - मनोहरा देवी सुन्दर थी, पंडिता थी, साहित्यिक ज्ञान में निराला से बीस ही थी। एक दिन झल्लाकर निराला जी ने पूछा ''तुम हिन्दी-हिन्दी करती हो, हिन्दी में क्या है? जवाब मिला, ''तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं'' निराला जी ने कहा, ''हिन्दी हमें नहीं आती?'' मनोहरा देवी ने कहा ''यह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाड़ी बोल लेते हो, तुलसीकृत 'रामायण' पढ़ी है, बस। तुम खड़ी बोली को क्या जानते हो? और फिर मनोहरा देवी ने हिन्दी के कई धुरंधर पडितों के नाम दोहरा दिए। निराला भौचक्के। यह बात उनके मन में गहरी चोट कर गई। उन्होंने हिन्दी सीखने की ठानी और रात-रात भर जाग कर सरस्वती और मर्यादा पत्रिकाओं के आधार पर हिन्दी सीखी और ऐसी सीखी कि साहित्यिक क्षेत्र में उनका अवदान अविस्मरणीय रहा। पत्नी का यह ऋण निराला भूले नहीं। सन् 1936 में प्रकाशित अपने 'गीतिका' काव्य संग्रह की अर्पण पत्रिका में अपनी पत्नी के प्रति आदर भाव प्रकट करते हुए निराला ने लिखा था - ''जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रूक्षता को देखकर मुसकरा देती थी। जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण-परिणिता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा स्वर्गीया प्रिया का महत्व समझकर ही निराला ने 'तुलसीदस' काव्य की रचना की, जो उनकी एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक देन हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निराला को 'सजग' कलाकार कहा है। पं. नंद दुलारे वाजपेयी ने उनके लिए 'सचेत कलाकार' अभिधा का प्रयोग किया है और घोषित किया कि ''कविताओं के भीतर जितना प्रसन्न अथवा अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है, न प्रसाद जी का, न पंत जी का। हिन्दी के साहित्यकार जिसमें शिवपूजन सहाय, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' या 'सुमित्रानन्दन पंत' या 'दिनकर' और बाद के रचनाकार जिनमें शमशेर, नागार्जुन, गिरिजाकुमार, माथुर, प्रभाकर माचवे और नरेश मेहता ने कभी कविताओं, कभी लेखों और कभी समीक्षाओं के माध्यम से हिन्दी क्षेत्र में निराला की कविताओं की पद प्रतिष्ठा की है।

14.4 कवि-कर्म

साहित्यकार अपनी वैचारिक संवेदना व रचनाओं की अन्तर्वस्तु समसामयिक परिवेश से अवश्य प्रभाव ग्रहण करती है। कवि कर्म का उद्देश्य समसामयिक यथार्थ बोध कराना होता है। इस दृष्टि से निराला जी के साहित्य पर विचार करते समय हम देखते हैं कि उनका रचना-कर्म 1916 से 1960 तक के सुदीर्घ कालखण्ड में फैला हुआ है। द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने अतीत को पुनः स्मरण कर राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का गान किया और छायावादी युग तक आते-आते इस भावना ने नवजागरण का रूप ले लिया और मोहभंग की स्थित उत्पन्न हुई। निराला जी की कविताओं में पराधीन भारत में व्याप्त विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश व क्रान्ति का भाव तथा स्वतंत्र भारत में आदर्श व स्वप्न-भंग के कारण असंतोष व विद्रोह का भाव पूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है। निराला ने समसामयिक चेतना को काव्य में सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

छायावादी काव्य का प्रारम्भ सन् 1918 के आसपास माना जाता है। उन्हीं दिनों निराला भी साहित्य- साधना में पूरी तन्मयता से लीन थे। सन् 1923 में 'अनामिका' नामक प्रथम काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात 'परिमल' (1930), 'गीतिका' (1936), 'अनामिका' (1938), 'तुलसीदास' (1938), 'कुकुरमुत्ता ' (1942), 'अणिमा' (1943), 'बेला' (1943), 'अपरा' (1946), 'नए पत्ते ' (1946), 'अर्चना' (1950), 'आराधन' (1953) और 'गीत गुंज' (1953) आदि निराला के प्रकाशित काव्य संकलन हैं। 'अर्चना', 'अराधना' और 'गीत गुंज' में सुन्दर मंगलाचरण गीत भी है। गीतगुंज के गीत शब्दावली में सरल और संगीतोपयोगी हैं।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला-काव्य का अध्ययन पाँच चरणों में बाँटकर किया। प्रथम चरण में उन्होंने परिमल तक की कविताओं को रखा, दूसरे चरण में 'गीतिका' के गीतों को, तीसरे चरण में 'तुलसीदास', 'सरोजस्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' जैसे दीर्घ प्रगीतों को, चौथे चरण में 'कुकुरमुत्ता ', 'अणिमा', 'बेला' और 'नए पत्ते' तक की प्रयोगात्मक रचनाओं को और पांचवे चरण में 'अर्चना'-'अराधना' व 'गीतगुंज' संकलित गीतों को स्थान दिया है। इनकी प्रथम, द्वितीय और तृतीय चरण की रचनाओं में समासयुक्त तत्सम बहुल शब्दावली का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। चतुर्थ चरण की रचनाओं में बोलचाल की भाषा में कहीं व्यंग्य का तीख रूप है तो कहीं हास्य-व्यंग्य की मिश्रित छाया है। और अन्तिम चरण की रचनाओ में विशुद्ध एवं सरल, भक्ति-भाव सम्पन्न रूप मिलता है।

निराला के कवि-कर्म का संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है - पूर्ववर्ती काल (1920-38) तक की निराला की मुख्य दार्शनिक कविताएँ मानी जाती हैं - 'अधिवास', 'पंचवटी प्रसंग', 'तुम और मैं', 'प्रकाश', 'जग का एक देखा तार' और 'पास ही रे', 'हीरे की खान'। 1939-40 ई. से

विवेकानद का दर्शन उन्हें अपर्याप्त लगने लगता है और उनकी कविताओं में अन्य विचार पद्धतियों को अपनाने का भी संकेत मिलने लगता है। उनकी काव्य रचनाओं नया समाजशास्त्रीय चिंतन उभर कर सामने आता है। निराला की अनेक कविताओं में दीनों और दलितों का चित्रण किया गया है। अब तक निराला समाज और राष्ट्र की कठोर वास्तविकताओं के सामने नहीं आए थे। सारा राष्ट्र जिस प्रकार पुनर्जागरण और स्वाधीनता-संग्राम-काल के कुछ बड़े-बड़े आदर्शवादी स्वप्नों में खोया था, वे भी खोए थे। सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा है, भारत विश्व को नया आध्यात्मिक संदेश देगा, यह देश एक नए प्रकार की शक्ति के रूप में उभरेगा आदि स्वप्न ही थे, जो कि वर्तमान शताब्दी के चौथे दशक के अंत और पांचवें दशक के आरंभ-काल में भारतीय प्रदेशों में कांग्रेस के शासन से त्यागपत्र देकर अलग हो जाने, द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ, भारत छोड़ों आन्दोलन, बंगाल के अकाल आदि राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं से ध्वस्त हो गए। स्वतंत्रता-आंदोलन में इस देश की निम्न तथा निम्न-मध्यवर्गीय जनता अब तक उपेक्षित थी।

14.5 काव्य-पाठ और ससंदर्भ व्याख्या

1. कोई न छायादार,

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;

श्याम तन, भर बंधा यौवन

नत नयन, प्रिय-कर्म-रत-मन

गुरू हथौड़ा हाथ,

करती बार-बार प्रहार -

सामने तरू-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

प्रसंग: सन् 1937 में रचित 'तोड़ती पत्थर' निराला की एक प्रतिनिधि कविता मानी जाती है। अन्तर्वस्तु व कलात्मक गठन दोनों दृष्टियों से यह प्रभावित करती हैं। 1930 के बाद जब स्वाधीनता आन्दोलन में वर्गीय चेतना का समावेश होता है तब यह प्रश्न सामने आता है कि आजाद भारत में नव निर्माण का स्वरूप क्या होगा? तब निराला ने भी अपनी दृष्टि भारतीय जनता पर केन्द्रित की।

यह कविता इन पंक्तियों के साथ शुरू होती है: वह तोड़ती पत्थर/देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर - । वह तोड़ती पत्थर।'' इसमें कवि द्वारा 'इलाहाबाद' नगर विशेष का उल्लेख करने प्रासंगिकता को लेकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है। पं. नंद दुलारे वाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'कवि-

निराला' में उल्लेख किया है कि इलाहाबाद में पथ पर पत्थर तोड़ती हुई स्त्री को निराला ने 'आनंद भवन' के सामने की सड़क पर देखा था। कवि ने मजदूर वर्ग के दुखः व पीड़ा व उसके हृदय के घात प्रतिघात को पत्थर तोड़ती स्त्री के बिम्ब के रूप में अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या:- कवि लिखते हैं कि इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली औरत जहाँ स्वयं के अस्तित्व को स्वीकारते हुए अपनी मेहनत-मजदूरी कर रही है वहाँ कोई भी छायादार वृक्ष नहीं है। ग्रीष्म ऋतु की तेज-तपती धूप है और खुले आसमान व वीरानी में पत्थर तोड़ती मजदूरिन है। जैसे तपती-दुपहरी व उस मजदूरिन का साथ चिरस्थायी हो। कवि जब उस स्त्री को देखता है तो उसे लग रहा है जैसे उसका पत्थर तोड़ना काम प्रिय कार्य हो। उसका सांवला शरीर, भरा हुआ, संयत और सुघड़ यौवन, वह दलित स्त्री है, इसलिए उसका शरीर श्याम वर्ण का है, भरा-पूरा शरीर है पर बंधा है अर्थात संयत है। कवि के इस वर्णन से हमारे समक्ष काले पत्थरों से पत्थर तोड़ने वाली नारी की मूर्ति सजीव हो उठती है। मजदूरिन का एक सुन्दर चित्र उपस्थित होता है। उसकी आँखे झुकी हुई है और पत्थर तोड़ने के कार्य में रत है, जैसे यह उसका प्रिय कर्म हो।

कवि आगे लिखता है कि गुरू अर्थात् भारी हथौड़े से वह औरत बार-बार पत्थर पर प्रहार करती है उन्हें तोड़ने के प्रयास में व्यस्त है और उसके सामने घनी छाया वाले पेड़ों की पंक्तियाँ वाली अट्टालिका (विशाल भवन) है। कैसी विड़म्बना है। कवि दुखी है कि उस मजदूरिन को छाया मयस्सर नहीं है और सामने जो महल है वह छायास्नात् हो रहा है। किसानों और मजदूरों को आजादी दिलाने व अंग्रेजों के जुल्मों के खिलाफ लड़ने वाला यह भवन भी तरू-मालिका से परिपूर्ण है और यह स्त्री कितनी छाहं (सुरक्षा व विश्वास) में है। मजदूरिन के माध्यम से कवि की यह चिन्ता सम्पूर्ण मनुष्य की है और यही इस कविता की सार्वजनीनता है।

विशेष:-

1. श्याम-तन, भर बंधा यौवन/नत नियन, प्रिय-कर्म-रत मन' इन दो पंक्तियों छायावादी कवित्व के दर्शन होते है यद्यपि यह कविता विषम मात्रिक छंद की है परन्तु ये दो पंक्तियाँ सममात्रिक चरण है, चौदह-चौदह मात्राओं के हैं। यहाँ चित्र जितना विशिष्ट है उतना ही व्यंजनापूर्ण है।

2. 'गुरू हथौड़ा हाथ/करती बार बार प्रहार' के यह पंक्ति ओजपूर्ण है। इसी तरह' सामने तरू-मालिका अट्टालिका, प्राकार यह पंक्ति भी है/इनमें सघोष वर्ण-विन्यास के साथ-साथ दीर्घ स्वर 'आ' की पुनरावृत्ति से 'ओज' गुण का समावेश हो गया है।

3. 'छायादार', 'स्वीकार', 'प्रहार', और 'प्राकार' ये तुकांत शब्द इनमें आते हैं, जो इस पद्यांश में गजब का कसाव प्रदान करते हैं। अट्टालिका के साथ समानार्थी 'प्राकार' शब्द का प्रयोजन भी इसी अर्थ में है।

2. चढ़ रही थी धूप

गर्मियों के दिन,

दिवा का तमतमाता रूप;

उठी झुलसाती हुई लू

रूई ज्यों जलती हुई भू;

गर्द चिनगी छा गई,

प्रायः हुई दुपहर

वह तोड़ती पत्थर

प्रसंग:- पूर्ववत्

व्याख्या:- कवि लिख्ता है कि अपने कार्य में रत उस स्त्री को चढ़ते सूरज की तपन से भी कोई परेशानी नहीं है। गर्मियों के दिन में सूरज तेजी से ऊपर चढ़ने लगता है और धूप तीखी होती चली जाती है। तपन बढ़ने के साथ दिन का तमतमाता रूप चमकने लगा। भयंकर झुलसा देने वाली लु चलने लगी और पृथ्वी रूई के तरह जलने लगी जैसे ताप से रूई जल उठती है। गर्म हवा के थपेड़ों से मिट्टी के कण आग की चिनगारी की तरह वातावरण में छा गए, मजदूरिन को श्रम करते-करते दोपहर हो गई है और पत्थर तोड़ती जा रही है।

विशेष:-

(क) पूर्व में ‘आ‘ स्वर की आवृति थी तो इस पद में ‘धूप‘, ‘रूप‘, ‘लु‘, ‘भू‘ जैसे ‘उ‘ स्वर की आवृति ने तुकबन्दी का सौन्दर्य बढ़ा दिया है। ‘दिवा का तमतमाता रूप‘ में चार बार ‘आ‘ स्वर की आवृति है, जिससे दिन के फैलाव और विस्तार का बोध होता है।

(ख) ‘प्रायः हुई दुपहर-/वह तोड़ती पत्थर‘ यहाँ तक आते-आते कविता के प्रवाह में एक ठहराव आ गया है यह ठहराव और संतुष्टि जैसे उस स्त्री के श्रम करने से उत्पन्न श्रांति को प्रकट कर रहा है।

3 दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या सुन्दरी परी सी,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर-मधुर है दोनों उसके अधर
किन्तु गम्भीर,-नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह
छाह-सी अम्बर पथ से चली।

शब्दार्थ:- दिवसावसान: दिवस का अवसान, दिन का ढ़लना (संध्याकाल), मेघमय: बादलों से युक्त, तिमिरांचलः- अंधकार का आँचल, नीरवता:- खामोशी, अम्बर-पथः- आकाश रूपी मार्ग।

प्रसंग:- 'संध्या सुन्दरी' निराला द्वारा सन् 1921 में सृजित कविता है जो प्रकृति के मानवीकरण का सुन्दर प्रामाणिक दस्तावेज है। इस कविता में कवि ने संध्या को एक सुघड़ यौवन से परिपूर्ण युवती के रूप प्रस्तुत कर प्रकृति का मानवीकरण किया है। जिस संध्याकाल में, जब चराचर जगत विश्राम की स्थिति में आने लगता है, वातावरण में शान्ति उत्पन्न पक्षियों का कलरव बन्द हो जाता है, उस समय निराला की संध्या रूपी सुन्दरी की नायिका क्लान्त जीवों को विश्राम देने के लिए बिना किसी उत्तेजना के धरती पर उतर रही है।

व्याख्या:- कवि निराला संध्या को एक सुन्दर परी की उपमा देते हुए लिखते हैं कि दिवस के अस्त होने के समय, संध्याकाल में बादलों से आच्छादित आकाश से संध्या रूपी सुन्दरी परी के समान उतर रही है। सूर्यास्त होने के पश्चात वातावरण में अंधकार, फैल रहा है। संध्या-सुन्दरी का आँचल जो अंधकार की तरह काला, उसे फैलाए हुए है और उसमें अन्य स्त्रियों की तरह चंचलता का कहीं आभास नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार फैलता जा रहा है।

वातावरण मौन शांत है और चंचलता अर्थात् दिन के क्रिया कलाप शान्त हो गए हैं। कवि ने इस वातावरण को एक नायिका के बिम्ब के माध्यम से व्यक्त किया है।

इस संध्या-सुन्दरी नायिका के ओठ मधुर हैं, उनमें हास्य विलास नहीं अपितु गाम्भीर्य झलकता है। संध्या कालीन नीरव वातावरण में एक तारा टिमटिमाता हँसता हुआ दीखता है, वह संध्या सुन्दरी के घुँघराले बालों में गूँथा हुआ प्रतीत होता है, ऐसा लगता है कि वह उदित एकमात्र तारा उस हृदय-राज्य की रानी का अभिषेक (अभिनन्दन) कर रहा है। संध्या रूपी नायिका मानों सभी चराचर जगत के हृदय पर राज करने वाली है सभी की प्रिय है। वह धीर, गंभीर और शांत है। संध्या रूपी सुन्दरी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कवि लिखते हैं कि संध्या-परी अलसाई सी, कोमल कली के समान है और अपनी सखी नीरवता के कन्धे पर हाथ रख कर छाया के सामन आकाश मार्ग से जा रही है। वातावरण में व्याप्त शांत व मौन के कारण नीरवता को संध्या का सखी गहा गया है।

विशेष:-

इस पद्यांश में उपमा अलंकार हेतु जैसे परी सी, अलसता की सी लता और छाँह-सी जैसे शब्द, काले-काले मधुर-मधुर में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार प्रयोग है।

सम्पूर्ण पद्यांश में संध्याकालीन परिदृश्य का गतिशील-बिम्ब चित्रित हुआ है।

प्रकृति का मानवीकरण अद्भुत सार्थक है व कवि के भवुक मन और कल्पना-सौन्दर्य का जीवन्त निदर्शन हुआ है। नीरवता को संध्या की सखी कहने से वातावरण सजीव व अर्थयुक्त गरिमा से भर गया हैं

14. आज ठंडक अधिक है।

बाहर ओले पड़ चुके हैं

एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था -

अरहर कुल-की-कुल मर चुकी थी,

हवा हाड़ तक बेध जाती है

गेंहू के पेड़ ऐंठे खड़े हुए हैं

खेतिहरों में जान नहीं

मन-मारे दरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक-दूसरे से गिरे गल बातें करते हुए
कुहरा छाया हुआ है
ऊपर से हवाबाज उड़ गया।
जमींदार का सिपाही लट्ठ कंधे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
'डेरे पर थानेदार आए हैं;
डिप्टी साहब ने चंदा लगाया है
एक हफ्ते के अन्दर देना है।
चलो, बात दे आओ
कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करूणा से बंधु खेतिहर को देख-देखकर।

प्रसंग:- महाकवि निराला की दृष्टि प्रगतिवादी थी। उन्होंने हमेशा कृषक-मजदूर वर्ग के प्रति सहानुभूति पीड़ा व दुखः को महसूस किया। गाँव में जमींदार-कृषक वर्ग के संघर्ष उन्होंने हमेशा किसानों का पक्ष लिया था और अपनी कविताओं उसे अभिव्यक्ति दी। इस दृष्टि से 'नए पत्ते ' में संकलित उनकी पाँच कविताएँ 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डटकर बोला', 'छलांग मारता चला गया', 'डिप्टी साहब आए' और 'महगू महगा रहा' उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कविता 'कुत्ता भौंकने लगा' उन किसानों से सम्बन्धित है जिनकी फसल पहले से ही बर्बाद हो चुकी है लेकिन जोर जबरदस्ती से चंदा वसूलने की पीड़ा को भी झेल रहे हैं।

व्याख्या:- कवि किसानों की दीन दशा को व्यक्त करते हुए लिखता है कि शीत ऋतु में पाला पड़ने से किसानों की फसल नष्ट हो रही है। किसान सोच रहा है कि आज तो ठण्ड बहुत ज्यादा है बरसात में ओले गिरने से वातावरण में ठिठुरन बढ़ गई है। अभी तो हफ्ते पहले ही पाला पड़ चुका था, उस पर फिर ओलो की मार। अरहर (उत्तर प्रदेश की मुख्य फसल) पूरी तरह से नष्ट हो गई; ठण्डी हवा शरीर की हड्डियों को बेध जाती है, हवा की चुभन ऐसी है जैसे तीर मार रही हो। इस भयंकर ठण्ड में गेहूँ के पेड़ भी ठिठुर रहे हैं, एक-दूसरे से उत्साहहीन (गिरे-गले) बाते करते हुए खेतीहर मजदूर निष्प्राण हो कर, मन मसोस कर अपने दरवाजे पर अलाव ताप रहे हैं। धूप का कहीं नामोनिशान नहीं और भयंकर कोहरा छाया हुआ हे। इस पर एक परेशानी किसानों ने देखी कि आसमान में युद्ध विमान मंडराकर उड़ गया। विशेष महाकवि निराला ने कृषकों की दयनीय (स्थिति मौसम की मार के साथ-साथ युद्धविमान का जिक्र कर वातावरण में भयानक रस का संचार कर दिया) इस तरह करूणा व भयानक रस चित्रण अद्भुत बन गया है।

निराला लिखते हैं कि कृषक वर्ग की संवदेनाएँ सामान्य भी नहीं हो पाई कि जमींदार का सिपाही कंधे पर लाठी रखकर अलाव के चारो ओर बैठे खेतिहर को देखकर कहा कि डेरे पर थानेदार आया है और डिप्टी साहब ने जो कर लगया है उसे एक सप्ताह के भीतर भरना है उन्हें जाकर जवाब दे आओ। जमींदार डिप्टी व सिपाही सभी का आतंक बेबस किसानों पर हैं अन्त में निराला ने किसान के एक कुत्ते का वर्णन किया है जो अलाव से कुछ हटकर अन्य खेतिहर के साथ बैठा हुआ था। वह सिपाही को जाता हुआ देखकर खड़ा हुआ और करूणा से बंधु-खेतीहर को देख-देखकर भौंकने लगा। कुत्ते को भी कृषक की विवशता व वेदना पर करूणा उत्पन्न हो रही है, यह विडम्बना ही है कि मानव-मन, मानव के लिए करूणा नहीं है लेकिन जानवर के मन में करूणा-शेष है। यह एक व्यंजनात्मक प्रयोग है।

विशेष:-

1. कवि ने खड़ी बोली में कृषक-जीवन के त्रासद-खण्ड का यथार्थ चित्रण उपस्थित किया हे। जिसके 'हफ्ते', 'दरवाजे' और 'हवाबाज' जैसे फारसी शब्द हैं तो 'कौड़े' जैसे क्षेत्रीय शब्द भी हैं। 'गिर-गले' और 'बाद दे आओ' जैसे मुहावरों का प्रयोग सहज व अकृत्रिम है।

2. इस कविता में वर्णनात्मक व चित्रात्मक दोनों शैलियों का बखूबी प्रयोग हुआ है। साथ ही संवाद भी है।

3. ''कुत्ता भौंकने लगा' करूणा से बंधु खेतिहर को देख-देखकर'', पंक्ति में दयनीय खेतीहर के प्रति मानव की अपेक्षा जानवर के हृदय में करूणा को व्यक्त करने की व्यंजना अनूठी है।

5. ''अबे सुन बे, गुलाब

भूल मत, गर पाई खुशबु रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माल कर रक्खा, सहाया जाड़ा-धाम
हाथ जिसके तू लगा
पैर सर पर रख वह, पीछे को भगा।''

शब्दार्थ:-1. रंगोआब: रंग और चमक-दमक, 2. अशिष्ट: असभ्य, 3. कैपीटलिस्ट: पूँजीपति, 14. जाड़ा-धाम: सदी-गर्मी।

प्रसंग:- यह पद्यांश कुकुरमुत्ता कविता से लिया गया है। कुकुरमुत्ता कविता में सामाजिक विषमता पर व्यंग्य कसा गया है। इस कविता में निराला की प्रगतिशिल दृष्टि का स्वर दृष्टव्य है। ''तुलसीदास'' और ''राम की शक्ति पूजा'' जैसी उत्कृष्ट छायावादी रचनाओं के बाद, निराला की काव्य यात्रा में विशेष परिवर्तन दृष्टिगत होता है। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद बढ़ती पूँजीवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य में पगे आक्रोश को इस कविता में कवि ने कुकुरमुत्ता और गुलाब के माध्यम से व्यक्त किया है। ''गुलाब'' पूँजीपति वर्ग का ओर कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। इस पद्यांश में फारस देश के विदेशी गुलाब के समक्ष उसकी विशिष्टता को नजरअंदाज करते हुए कुकुरमुत्ता निर्भय हो अपने अस्तित्व को व्यक्त करते हुए कहता है।

व्याख्या:- अबे। गुलाब, तू यह मत भूल की यह बाह्य चमक-दमक और खुशबु तूने प्राप्त की है वह सब तेरी है। इसमें तेरा कोई योगदान नहीं है। हे असभ्य। सर्वप्रथम तो तू ने 'खाद' का खून चूस-चूस कर परजीवी की तरह वृद्धि की और डाल पर पूर्ण विकसित होकर अपनी सुगन्ध बिखेर रहा है। यहाँ कुकुरमुत्ता उसे नीचा दिखाते हुए असभ्य के साथ-साथ पूँजीपति (कैपीटलिस्ट) भी कहता है।

इस पूँजीपति वर्ग रूपी गुलाब ने अधिकांश व्यक्तियों को गुलाम बना दिया है। अपने वैभव-विकास के खातिर उसने व्यक्तियों सर्दी-गर्मी की भीषणता सहन करने को मजबूर किया और माली बनाकर रख दिया। हे गुलाब। तेरी प्रवृत्ति व स्वरूप बहुत सम्मोहक है। तुझे प्राप्त करने के उन्माद ने सभी को जीवन की भटकन में लगा रखा है।

विशेष:-

1. कवि में 'कुकुरमुत्ता ' के माध्यम से व्यंग्य व आक्रोश व्यक्त करते हुए उल्लेख किया कि सामाजिक पुनर्जागरण का भाव जोर पकड़ रहा है। गुलाब का समय अब समाप्त हो गया है और जन शक्ति व मजदूर का प्रतीक कुकुरमुत्ता का जीवन सार्थक माना जाएगा।

2. काव्य की भाषा-शैली में ठेठ देशी व उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग दृष्टव्य है। छन्द के बंधन से मुक्त कवितांश का प्रभाव नयापन लिए हुए हैं।

14.6 काव्य की अन्तर्वस्तु

निराला जी एक ऐसे साहित्यकार हैं जिनके व्यावहारिक जीवन और साहित्य-सृजन में कोई भेद नहीं है। निराला जी का सम्पूर्ण कृतित्व उनकी जीवन-साधना और समसामयिक युगचेतना का प्रतिरूप है। छायावाद के समूचे परिदृश्य में सबसे बड़े विद्रोही कवि के रूप में निराला की ख्याति है और यही इनकी विशिष्टता है। राम की शक्ति पूजा, सरोज स्मृति, बादल-राग, जागो पुरि एक बार, तोड़ती पत्थर, विधवा, स्मृति, वनबेला, कुकुरमुत्ता , तुलसीदास, महगा महगा रहा, छत्रपति शिवाजी का पत्र जैसे ऊर्जास्वित कविताएँ अपने गहन भावबोध व कटु यथार्थ के कारण व्यक्ति को बार-बार पराजित होने के बाद भी उसके आत्मबल व स्वाभिमान को उन्नत करती हैं। निराला के समग्र काव्य की संवेदना को जानने के लिए हमें निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना होगा -

14.6.1 प्रेम और सौन्दर्य:-

छायावादी कविता में एक व्यापक सौन्दर्य चेतना दिखई देती है और उसका माध्यम रहे हैं - प्रकृति और नारी। निराला ने भी छायावादी कवियों की तरह प्रकृति और नारी के रूप-सौन्दर्य के अद्भुत चित्र खींचे हैं। निराला ने सौन्दर्य को ललित कला का मुख्य आधार माना है। चित्रकार जितनी सुन्दर कल्पना कर सकता है, उसका चित्र उतना ही सुन्दर होता है। यही तथ्य कवि और उसके बिम्ब-प्रस्तुतीकरण में विद्यमान है।

निराला काव्य में नारी के मांसल-अमासंल, दिव्य, मर्यादित व अप्सरा सौर्न्य में भी दर्शन होते हैं। नारी सौन्दर्य अंकन में निराला ने चित्रण पद्धति का सहारा लिया है - उदाहरणार्थ:

प्रिय यामिनी जागी।

जलस, पंकज द्वग अरूण मुख

तरूण अनुरागी

खुले केश अशेष शोभा भर रहे

पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे।

$ $ $

हेर उर-पट फेर मुख के बाल

लख चतुर्दिक चली मंद मराल

गेह में प्रिय-स्नेह की जयमाल

वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग में तागी।

यद्यपि इस गीत में एन्द्रिय सौन्दर्य विद्यमान है किन्तु अन्त में 'साधना की मुक्ति मुक्ता' कहकर निराला ने नारी-सौर्न्य की उच्चता व्यक्त की है। परिमल काव्य संग्रह में निराला ने सौन्दर्य को यौवन के मधुर रूप से जोड़ते हुए कहा है ''यौवन के तीर पर प्रथम था आया जब स्त्रोत, सौन्दर्य का, वाचियों में कलरव सुख-चुम्बित प्रणय का।''

लेकिन कवि की अनुभूति नारी के कोमल व बाह्य सौन्दर्य चित्रण में ही व्यक्त नहीं होती वरन् शौर्य, उत्साह, पुरूषता, दीनता, कातरता आदि भावों में भी है। निराला उस नारी में भी सौन्दर्य-छवि ढूँढ़ लेते हैं जो मेहनतकश है मजदूरिन है। कवि का सौन्दर्य बोध रूढ़िबद्ध नहीं है, जो 'वह तोड़ती पत्थर' कविता में चित्रित किया गया है -

''श्यामतन, भर बंधा यौवन

नत-नयन, प्रिय-कर्म रत मन।''

निराला-काव्य में नारी-सौन्दर्य के ऐसे दिव्य एवं पावन रूप मिलते हैं जो पुरूष का मार्गदर्शन कर उनमें आत्मगौरव का भाव भरते हैं। 'राम की शक्ति पूजा' कविता में राम के निराश मन को सीता का सौन्दर्य पुनः कर्त्तव्य की याद दिलाता है।

''जानकी-नयन-कमनीय, प्रथम कंपन तुरीय।

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,

हर धनु भंग, को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त।

फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,

फिर विश्व विजय-भावना हृदय में आई भर।''

निराला की दृष्टि में प्रेम जीवन और जगत का सर्वाधिक-मूल्यवान तत्व है। प्रेम का सबसे बड़ा महत्व यह है कि वह स्वयं असूत्र होते हुए भी विश्व के प्राणियों को एकसूत्र में बाँधे हुए है:-

''प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो, उर-उर के हीरों के हार,

गूँथे हुए प्रणियों को भी, गूंथे न कभी, सदा ही सार।

वस्तुतः प्रेम का जनक सौन्दर्य ही है। प्रेम का मूल आधार रूप-असक्ति है और रूप-आसक्ति सौन्दर्य से उत्पन्न होती है। निराला के काव्य में प्रकृति-प्रेम, मानव-प्रेम, अध्यात्मक-प्रेम और उद्दात -प्रेम का चित्रण मिलता है।

14.6.2 नारी के प्रति आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति: एक नवीन दृष्टिकोण:-

काव्य में यद्यपि प्रेम व सौर्न्य चित्रण बिन्दु में नारी-सौन्दर्य के उज्जवल रूप का भी उल्लेख किया गया है फिर भी निराला इस पर विस्तार से विचार करना अपेक्षित है। निराला 'तुलसीदास' की रत्नावली में नारी का अत्यंत तेजस्वी और उज्ज्वल रूचप देखते हैं। निराला ने 'तुलसीदास' के रूप में नारी को जो महिमामय रूप देखा वस्तुतः यह नारी का सौंदर्य-चित्र संपूर्ण हिन्दी साहित्य में सबसे अलग गौरव-पद का अधिकारी है। वे 'तुलसीदास' के रूप में देखते है।। उसके शब्दो में विद्युत की सी तीव्रता थी किंतु उनमें चपलता न होकर दृढ़ता थी, जिन्हें सुनकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे जल पर लक्ष्मी ही जाग पड़ी हो अथवा निर्मल बुद्धि वाली, विमला सरस्वती ही चंचल हो उठी हो। उस समय वह उन्हें तेज की दिव्य -प्रतिमा जान पड़ी हो उसे देख पत्नी के प्रति तुलसीदास का समस्त कामुक आवेग भस्म हो गया। इस प्रकार निराला नारी की असीम शक्ति का परिचय देते हैं। नारी श्रृंगार के उत्तेजनात्मक उद्दाम श्रृंगार खींचने वाले निराला अंततः नारी के प्रति उदार, आदशीकृत मर्यादाशील दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

तन की मन की धन की हो तुम

काम कामिनी कभी नहीं तुम

सहज स्वामिनी सदा नहीं तुम

स्वर्ग दामिनी रही वहीं तुम

अनयन नयन-नयन की ही तुम

निराला के काव्य में नारी 'भाव व बुद्धि के समन्वित रूप को अपनाने वाली है। उसमें ये दोनों गुण विद्यमान हैं 'वह रत्नावली, नाम-शोभन

पति-रति में प्रतनु, अतः लाभनः

अपरिचित-पुण्य अक्षय धन कोई।'

तुलसी के रूप में निराला भौतिक प्रेम-सुख की प्रशंसा करते नहीं अघाते। उनकी पत्नी दैहिक एंद्रिय-प्रेम को पूर्ण परितोष देने वाली अत्यंत सुंदरी नारी थी। कवि के अनुसार - 'वह मायायन (रंग भवन, भोगगमन) में प्रिय के साथ वैयक्ति रूप में केवल अभी शयन करने वाली ही थी, किंतु यथार्थतः वह प्रियतम के हाथों को सहारा देने वाली (प्रिय को सन्मार्ग पर लाने वाली) सत्य का दण्ड थी, वह समष्टिगत-रूप में श्रद्धा स्वरूपिणी थी (जो कवि के लिए सत्य के मार्ग की प्रेरक थी)। वह भोग-मुग्ध पति की भाँति सुषुप्त न होकर जागृत (चैतन्य, उद्बुद्ध) थी। तभी तो समय आने पर तुलसी की वासनांधता - जिससे सामाजिक मर्यादा का हनन हो रहा था, वह सहन नहीं कर पाती। उसके रोषावेश से तुलसी का वासना-मोह टूट जाता है। इस प्रकार कवि अनुभव करता है कि जीवन के भो-विलास, बाह्य एवं आंतरिक निर्मलभाव तथा योगियों के शम, दम, संयम आदि की पूर्ति दाम्पत्य-प्रेम से ही संभव है।

'लखती ऊषारुण, मौन, राग;

सोते पति से वह रही जाग;

प्रेम के फाग में आत्म त्याग की तरुणा।

गृह की सीमा के स्वच्छ भास

भीतर के, बाहर के प्रकाश,

जीवन के, भावों के विलास, शम-दम के।'

इसी एक महान् परिचय (दाम्पत्य-सूत्र) से निःसृत प्रेम का प्रकाश ही संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है जिसमें देह (असत्) और सत् (मन और आत्मा) को आप्लावित करने की पूर्ण शक्ति है। अथवा जिसका मार्ग असत् (भोग) सत् (योग) की ओर है। यह भारतीय-संस्कृति के मूल आदर्शों के प्रति रुचि का ही परिणाम है।

इसी तरह एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य हैं -

'........ दो नीलकमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण

पूरा करता हूं देकर मातः एक नयन।'

कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,

ले लिया हस्त, लक-लक करता वह महाफलक;

ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन

ले अर्पित करने को उद्यत हो गए सुमन

पत्नी-प्रेम का यह उदाहरण न पुराण में है, न इतिहास में।

निराला के इस नारी-प्रेम के पीछे उनकी पूरी युगीन चेतना है। वाल्मीकि और तुलसी से तुलना करने पर वह क्रांतिकारी साबित होती है। लंका-युद्ध में विजय के बाद जब रावण की कैद से निकालकर सीता को राम के सामने लाया गया, तो उन्होंने उनके कहा-तुम यदि यह समझती हो कि मैंने यह युद्ध तुम्हारे लिये किया है, तो वह गलत है। मैंने यह युद्ध इसलिए किया लोग यह न कहें कि रावण मेरी पत्नी को हरकर ले गया और मैंने कुछ नहीं किया। रावण की कैद में रहने के बाद यदि तुम यह सोचती हो कि मैं तुम्हें पत्नी के रूप में स्वीकार कर लूंगा, तो वह असंभव है। अब तुम कहीं भी जाने के लिए स्वतंत्र हो, या मेरे इतने योद्धाओं में किसी के साथ रहना चाहो, तो रह सकती हो। यह वाल्मीकि रामायण है। तुलसीदास की स्थिति आदिकवि से अधिक भिन्न नहीं है। लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर जब राम विलाप करते हैं, तो साफ शब्दों में कहते हैं कि 'नारि हानि विशेष छति नाहीं' अर्थात पत्नी की मृत्यु से कोई खास नुकसान नहीं। पंत जी के शब्दों में कहें, तो खैर, पैर की जूती, जोरू/न सही एक, दूसरी आती'। इस वधु-दहन के युग में, तब पति अपने माता-पिता से मिलकर तिलक-दहेज के लोभ में अपनी पत्नी को जिंदा जला रहा है, 'राम की शक्तिपूजा' में राम के माध्यम से अभिव्यक्त पत्नी-प्रेम की उच्चता और मानवीयता का महत्व आसानी से समझा जा सकता है।

14.6.3 प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण:- निराला जी का धीर, गम्भीर और विद्रोही व्यक्तित्व उनके प्रकृति चित्रण में भी अभिव्यक्त हुआ है। उनके प्रकृति-परक काव्य में उनके अन्तः संघर्ष और तत्कालीन प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन होता है। 'जूही की कली', 'शैफालिका', 'यमुना के प्रति', 'नर्गिस', 'वन बेला' और 'संध्या-सुन्दरी' आदि कविताओं में प्रकृति का श्रृंगार, कोमलता, सौन्दर्यचेतना व मानवीकरण झलकता है तो दूसरी और 'बादल' कविता में विद्रोह का स्वर। निराला के सामाजिक और मानसिक संघर्षों की स्थिति में यदि कोई वस्तु उन्हें सान्त्वना देती रही है तो वह प्रकृति की सौन्दर्य-राशि ही है। उनकी दार्शनिक भावनाएँ प्रकृति को माध्यम बनाकर प्रकट होती है। उस असीम सत्ता के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुए निराला कहते हैं:-

''तुम तुंग-हिमालय-श्रृंग और मैं चंचल-गति सुर-सरिता

तुम विमल-हृदय उच्छवास और मैं कान्त-कामिनी कविता''

निराला ने प्रकृति का उपदेशात्मक, आलंकारिक व पृष्ठभूमि के रूप में भी चित्रण किया है। प्रकृति का मानवीकरण व प्रतीक रूप चित्रण में भी निराला जी का वैषिष्य है। ऋतुगीतों में उन्होंने सभी ऋतुओं पर लिखा है।

14.6.4 राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना:-

निराला ने देश प्रेम व राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति मातृभाषा वन्दना के रूप में भी की है। आज के समान उस समय देश में भाषा सम्बन्धी विवाद नहीं था। उस समय स्वतंत्रता आन्दोलन की तरह ही राष्ट्रभाषा या मातृभाषा का प्रेम भी दिन-प्रतिदिन महत्व प्राप्त करता जा रहा था। निराला लिखते हैं:-

''बंदौ पद सुन्दर तव,/छंद नवल स्वर गौरव,

जननि, जनक-जननि-जननि,/जन्मूभूमि-भाषे।

जागो, नव-अम्बर-भर,/ज्योतिस्तर वाले।''

कवि निराला का मानना है कि भारत वह भूमि है जहाँ से अन्य जातियों को मानवीय गुणों की सीख मिलती है। भारत की एक गौरवशाली सांस्कृति परम्परा है जिसका गान यत्र-तत्र निराला ने किया है। वीरता के लिए कवि निराला भीम, अर्जुन आदि का स्मरण करते हैं। जातीय गौरव के लिए मर मिटने वाले राणा प्रताप की वीरता का स्मरण करते हैं। कृष्ण का अर्जुन को कर्मप्रवृत रहने का शाश्वत जीवन-सिद्धान्त का उल्लेख निराला इस प्रकार करते हैं:-

योग्यजन जीता है,/पश्चिम की उक्ति नहीं,/गीता है, गीता है-/स्मरण करो बार-बार'।

अतीत का स्मरण की कवि कहना चाहता है कि यदि अतीत इतना वैभवपूर्ण हो सकता है तो वर्तमान क्यों नहीं, फलतः उनके काव्य में जन जागरण का स्वर मुखर होने लगा। कवि लिखते हैं -

'जागो फिर एक बार!

समर में अमर कर प्राण

गान गाये महासिंधु-से

सिंधु-नद-तीखा सी

सैंधव तरंगों पर

चतुरंग-चमू-संग

शेरो की मांद में

आया है आज स्यार।

कवि देशवासियों को उनके शेर होने का अहसास कराता है जिससे वे अंग्रेजी रूपी सियारों को खदेड़ कर स्वाभिमान पूर्वक जीवन जी सके। कवि को विश्वास है कि अवश्य ही एक दिन हिन्दुस्तान में स्वतंत्र विचारों का प्रकाश नजर आएगा। उप निवेशवादियों की स्वार्थ भावना का विनाश होगा। 'शिवाजी के पत्र' कविता में कवि विदेशी शासन को नष्ट करने के लिए 'भारतीयो में मातृभूमि के लिए बलिदान, स्वतंत्रता की प्रबल कामना और संगठित जनशक्ति का आह्वान करता है:-

''शत्रुओं के खून से, धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग,

कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे, निर्जर हो जाओग-अमर कहलाओगे।''

निराला कामना करते है:

''जन जीवन के स्वार्थ एकल

बलि हों तेरे चरणों पर माँ

मेरे श्रम संचित सब फल,

क्लेदयुक्त अपना तन दूंगा,

मुक्त करूँगा तुझे अटल।''

निःसन्देह तत्कालीन परिस्थितियों में जनता को जाग्रत करने में अवश्य ही इन कविताओं का योगदान रहा होगा।

14.6.5 आध्यात्मिक चेतना -

निराला जी के काव्य में आध्यात्मिक विचारों का एक अखण्ड प्राणवान् स्त्रोत प्रवाहित है। स्वानुभूति के कारण ही उनके चिंतन पर बौद्धिकता का गहन पुट प्राप्त होता है। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी प्रेमानन्द आदि के विचारों का प्रभाव निरालाजी पर था। स्वयं उन्होंने उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन किया था। वे अपने को और साथ-साथ प्रकृति के कण-कण में विराजमान उस असीम सत्ता के नायक को भी ढूँढ रहे थे। 'कौन तम के पार?' वे बार-बार प्रश्न कर रहे थे। इस जगत् का नियन्ता कौन है? अखिल विश्व उसमें है या वह अखिल विश्व है? या फिर दोनों एक हैं?

तुम हो अखिल विश्व में

या यह अखिल विश्व है तुम में

अथवा अखिल विश्व तुम एक,

यद्यपि देख रहा हूँ तुम में भेद अनेक?

पाया हाय न अब तक इसका भेद!

सुलझी नहीं ग्रंथि मेरी, कुछ मिटा न खेद!

और फिर विश्व में वे सर्वत्र एक ही सत्ता का आभास पाते हैं। एक ही श्याम सुन्दर का सर्वत्र दर्शन करते हैं।

जिधर देखिये श्याम विराजे

... ...

श्रुति के अक्षर श्याम देखिये

दीपशिखा पर श्याम निवाजे

श्याम तामरस, श्याम सरोवर

श्याम अनिल, छवि श्याम सँवाजे।

ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति है, अन्त में जगत् उसी के लीन होता है। मानव जीवन के सभी कर्मो का ब्रह्म से ही उत्पन्न होना और ब्रह्म में ही लीन होना निरालाजी मानते थे

जीवन की विजय, सब पराजय

चिर अतीत आशा सुख, सब भय

सब में तुम, तुम में सब तन्मय।

परमसत्ता को खोजने वे और कहीं नहीं गये। उनका चिन्तन उस परब्रह्म को स्वयं में ही ढूँढ लेता है। जो लोग उसे पात-पात, डाल-डाल ढूँढते फिरते है। उनके लिये उन्होंने कहा:

पा हीरे, हीरे की खान

खोजता कहाँ और नादान?

कहीं भी नहीं सत्य का रूप

अखिल जग एक अन्ध-तम-कूप

ऊर्मि घूर्णित रे, मृत्यु महान,

खोजता कहाँ यहाँ नादान?

माया का यह आचरण हटते ही कवि जीवन और आत्मा के परस्पर सम्बन्ध की एकात्मकता को जान लेता है। दोनों वास्तव में एक ही हैं, भेद उनके लघु-गुरू स्वरूप का मात्र है।

तुम तुंग -हिमालय-श्रृंग

और मैं चंचल-गति सुर-सरिता

तुम विमल हृदय उच्छवास,

और मैं कान्त-कामिनी-कविता।

निराला भक्त ही थे। सगुणोपासक भक्तों की तरह उनकी कविता में भक्ति के सभी अंगों और प्रकारों के दर्शन होते है। बुद्धि के धरातल पर स्थित तथा भावना से संपृक्त उनका भक्ति-काव्य भारतीय भक्ति-काव्यधारा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। 'आराधना' और 'बेला' के असंख्य गीत इसके प्रमाण है।

निराला विवेकान्द और रामकृष्ण परमहंस से पर्याप्त प्रभावित थे। निराला का दर्शन समन्वयवादी है। उसमें तर्कवाद, भक्तिवाद और कर्मवाद का अद्भुत समन्वय हे। वे इन तीनों के समन्वय ही मानव के व्यावहारिक जीवन की संगति समझते थे। पंचवटी प्रसंग में लिखते हैं:-

'भक्ति योग कर्म ज्ञान एक ही है

यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दिखते हैं

एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ -

द्वैतभाव ही है भ्रम।''

इस प्रकार निरालाजी के आध्यात्मिक काव्य के दो स्तर हो सकते हैं। प्रथम वह जिसमें वे अधिक दार्शनिक हैं, और जो उनकी रहस्यवादी रचनाओं का रूप ग्रहण करता है। दूसरा स्तर उनके आध्यात्मिक काव्य का है, जो शुद्ध भक्ति-काव्य है, जहाँ वे सभी से निराले हैं। एक समर्पण एवं तल्लीनता की भावना दिखाई देती है।

14.6.6 विद्रोह धर्मिता:-

सामान्यतः निराला को विद्रोही कवि कहा जाता है। विचारों के धरातल पर बुद्ध, कबीर, मार्क्स, गांधी के संदर्भ को देखे तो एक लम्बी परम्परा भारत में वैचारिक विद्रोह की मिलती है। यह निराला की विशिष्टता है कि उन्होंने इस व्रिदोही परम्परा को अपने कवि-व्यक्तित्व में रचा-बसा कर काव्य अनुभूतियों को नया मोड़ दिया। निराला के विद्रोही कवि-मानस का प्रथम परिचय 1916 में लिखी 'जूही कही कली' कविता में देखने को मिला जिसमें पूर्ववर्ती छंदबद्ध कविता के बंधन को मुक्त कर उन्होंने मुक्त छन्द का रास्ता दिखाया। वस्तुतः जूही की कली कविता की भाव-संवेदना, अबाध प्रणय-पिपासा को छंदबंधन में व्यक्त करना अकाव्यात्मक होता। निराला काव्य में आंतरिक अनुभूति के अतिरेक के कारण ही यह मुक्त छंद सामने आया। निराला एक ही समय में छन्दोबद्ध और छन्दमुक्त कविता लिखते थे क्योंकि उनका मानना था कि अनुभूति की भीतरी लय ही अभिव्यक्ति का रूप निश्चित करती है। यद्यपि निराला का मुक्त छन्द साहित्यिक समाज को नहीं रूचा था और सम्पादकगण इसी वजह से उनकी रचनाओं को छापने मे संकोच करते थे पर परिवेश के बंधन व नियमों को तोड़ने मे निराला का कवि व्यक्तित्व पीछे नहीं रहा।

सरोज स्मृति में वे लिखते हैं:-

''लिखता अबाध्य गतिमुक्त छन्द,/पर सम्पादकगण निरानन्द/वापस कर देते पढ़ सत्वर,/दे एक-पंक्ति-दो में उत्तर ।''

निराला ने साहित्यिक ही नहीं वरन् सामाजिक बंधन और धारणाओं का भी विरोध किया। यह सामाजिक रीति व परम्परा है कि अपनी ही जाति में परम्परा के कारण कई कर्म व संस्कार सम्पन्न करने पड़ते हैं लेकिन निराला स्वभाव से क्रान्तिकारी व स्वविवकी रहे हैं। वे स्वयं

काव्यकुन्ज ब्राह्मण होकर भी अपनी पुत्री 'सरोज' का विवाह अन्तर्जातीय स्तर पर करने को इच्छुक होते हैं। उदाहरणार्थ:

''ये कान्यकुन्ज-कुल कुलांगर,

खाकर पत्तल में करे छेद, इनके कर कन्या, अर्थ खेद।'

इसी तरह पुत्री-विवाह के समय होने वाले रीति रिवाजों का विरोध इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है:-

बारात बुलाकर मिथ्या व्यय, मैं करू, नहीं ऐसा सुसमय,

इसी तरह,

तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम

मैं सामाजिक योग के प्रथम

लग्न के पढ़ूंगा, स्वयं मंत्र

निरंतर दुःख और अवसाद को भोगते हुए भी निराला सामाजिक जीवन की गलत मान्यताओं और अन्याय का विरोध करते रहे। 'बादल राग', 'तोड़ती पत्थर' और 'कण' आदि कविताओं में यह भाव विद्यमान है।

14.6.7 विषाद और करूणा:-

छायावादी धारा के प्रतिनिधि कवि होने के उपरान्त भी कवि निराला की सोच व व्यक्तित्व के अनुसार उनके काव्य में दलित शोषित वर्ग के प्रति करूणा और सहानुभूति विद्यमान है। 'पंचवटी' में लिखते हैं:-

मां मुझे, वहां तक ले चल!

देखूंगा वह द्वार-/दिवस का पार,

मूर्छित पड़ा हुआ है जहां-/वेदना का संसार।

परानुभूति में डूबा कवि-हृदय,

जनसाधारण के प्रति प्रतिबद्ध व सर्वहित का भाव लिए हुए है। निराला अपनी रचनाओं में दीन-हीन व उपेक्षित समाज के दुखदर्द व उनके सम्मान को अभिव्यक्ति देते हैं। वह तोड़ती

पत्थर/विधवा महगू महगा रहा, कुत्ता भौंकने लगा आदि कविताएँ कारूणिक विडम्बना को व्यक्त करती है।

उदाहणार्थ:-

लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था

चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,

और भौंकने लगा

करूणा से, बंधु खेतिहर को देख-देखकर।

यह वर्तमान समय की विडम्बना है मानव-मन में मानव के लिए करूणा नहीं, लेकिन उसके लिए जानवर के मन में करूणा हैं

कवि निराला जीवन के निजी दुखद अनुभवों, अमानवीय सामाजिक परिस्थितयों, विसंगतियों से संघर्ष करते रहे, निराश होते रहे, पर उनकी निराशा भी रचनात्मक बन कर अभिव्यक्त हुई क्योंकि वे अपनी आत्मचेतना को पूर्णत् एकाग्रत कर चुके थे। उदहारण के लिए 'राम की शक्ति पूजा' में राम की निराशा भी विजय दिलाने में सिद्ध होती है। निराला परोपकार और करूणा द्वारा सामाजिक वैषम्यता को दूर करना चाहते थे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था ''इन बेचारे दीन जनों को, भारत के इन पद-दलित मनुष्यों को उनका वास्तविक स्वरूप समझना होगा। जाति, वर्ण-सबलता और दुर्बलता के भेद-भाव को छोड़कर सभी स्त्री-पुरूषों एवं प्रत्येक बालक-बालिका को सिखा दो कि सबल-दुर्बल, उच्च-नीच सभी के हृदय में अनंत आत्मा मौजूद है।

14.6.8 भक्ति-भावना:-

निराला के काव्य-रचनाकाल में भक्ति भाव **कुकुरमुत्ता** और **नये पत्ते** में संकलित रचनाओं को छोड़कर आरम्भ से अन्त तक की 'सांध्य काकली' रचना में भी विद्यमान है। प्रारम्भिक काव्य संग्रह, अनामिका और 'परिमल' में निराला का भक्तिभाव सूक्ष्म व अमूर्त रूप में व्यक्त हुआ है। धीरे-धीरे 'आराधना' व 'अर्चना' काव्य संकलन तक यह भाव गरिमा व संयतता के साथ साकार रूप में व्यक्त होने लगा। निराला का झुकाव आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन की ओर प्रारम्भ से ही था। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी सारदानंद, रवीन्द्र नाथ टैगेर आदि का निराला जी पर व्यापक प्रभाव पड़ा। तुलसीदास व सूरदास की भक्ति भावना का व्यापक प्रभाव निराला पर था। निराला की भक्ति प्रकृति का सर्वाधिक वैभीष्ट्य यह है कि वे स्वयं के मोक्ष के स्थान पर वैश्विक स्तर पर मंगल की कामना करते हैं। निराला जी ने ईश्वर के लीलाकामी सगुण, मायातीत निर्गुण, आनन्दवादी, अशरण शरण, करूणागार आदि सूक्ष्म गुणों के साथ ही

प्रभु, राम, कृष्ण, शिव, हरि आदि संबोधनों से भी सम्बोधित किया है और सरस्वती दुर्गा आदि से प्रार्थनाएँ की है। इन प्रार्थनाओं में जो भाव है: वह स्वयं की मुक्ति के साथ-'साथ सर्वजन की मुक्ति की कामना है -

उदाहरणार्थ:-

दलित जनपर करो करूणा

दीनों पर उतर आए

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरूणा

देख वैभव न हो नित सिर

समुद्धत मन सदा स्थिर

पार कर जीवन निरन्तर

रहे बहती भक्ति वरुणा

माँ सरस्वती जी और शक्ति के प्रति भाव-विह्वलता और निष्काम भक्ति भाव निराला काव्य में यत्र-तत्र देखने को मिलता है। परन्तु उत्तरवर्ती कविताओं में निराला के भीतर का भक्त-हृदय में आस्था भाव देखने को मिलता है। परम्परागत भगवत भक्तों की भाँति कवि शरणागति को प्राप्त कर निश्चित होना चाहते हैं ।कवि लिखते हैं -

''अनगनित आ गए शरण में जन जननि।

सुरभि सुमनावली ,खुली मधु-ऋतु अवनि।

स्नेह से पंक-उर हुए पंकज मधुर,

ऊर्ध्व-दृग गगन में दखते मुक्त मणि।

बीत रे गयी निशि, देख लख हँसि दिशि

अखिल के कण्ठ से उठी, आनन्द-'ध्वनि।''

निराला जी का मानना है कि ईश्वर की शरण में न केवल 'मरण का महादुख' मिटता है, अपितु आनन्द ध्वनि भी प्रशस्त होती है। भक्तशिरोमणि कवि तुलसीदास उनके परम आदर्श थे। वस्तुतः निराला की भक्ति भावना जीवन के विवधि अनुभवों का परिणाम है और उनकी भक्ति में

दीनता, आस्था, आत्मजर्जरता, मानवीय करूणा, देश प्रेम, आत्मोत्सर्जन और निश्चल प्रवृत्ति का अद्भुत समन्वय है।

14.6.9 व्यंग्य और विनोदः-

कवि की व्यंग्य भाव की कविताओं में सामाजिक विषमता के प्रति विद्रोह है तो मानव जाति के प्रति व्यापक सहानुभूति भी विद्यमान है। 'कुकुरमुत्ता ' और 'नये पत्ते' जैसी रचनाएँ इसी प्रवृत्ति को व्यक्त करती हैं। इससे पूर्व अनामिका संकलन की 'दान' शीर्षक कविता 'तेल फुलेल पर पानी सा पैसा बहाने वाले' ढौंगी और पाखण्डी मनुष्यों की दम्भी प्रकृति पर व्यंग्य करती है। 'सरोज स्मृति' कविता में भी काव्यकुब्जों व पारम्परिक मान्यताओं पर व्यंगय कसा गया है। 'वनबेला' कविता में पैसों से राष्ट्रीय गीत बेचने वालों और गर्दभ स्वर से गायन करने वालों की आलोचना की गई है। इसी क्रम में 'रानी और कानी', 'गर्म-पकौड़ी', 'मास्को डायलोक्स', 'प्रेम संगीत' और 'डिप्टी साहब आए' आदि कविताओं का व्यंग्य भी मार्मिक है। पूँजीवादी संस्कृति पर, वैभव सम्पन्नता का प्रतीक 'गुलाब' के माध्यम से किया गया व्यंग्य ही 'कुकुरमुत्ता ' कविता का केन्द्रीय भाव है, उदाहरणार्थ:

अबे! सुन बे गुलाब/भूल मत पाई जो खुशबु रंगोआब/

खून चूसा का श्वाद का तू ने अशिष्ट/डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट/

14.7 काव्य का रचना-विधान

कवि निराला की अनुभूति में जितनी गहराई और पकड़ है, अभिव्यक्ति उतनी ही बोध गम्य व सशक्त है। कवि का रचना विधान कवि के अनुरूप कहीं कठोर और कहीं कोमल है। उनके शारीरिक व्यक्तित्व के सभी गुण-पौरूष, और स्वच्छदता-उनके काव्य गुणों के रूप में प्रकट हुए हैं। 'ओज' निराला के काव्य की मूलभूत प्रकृति है। परन्तु ओज के साथ-साथ लालित्य व श्रृंगार का भव्य रूप भी उनके काव्य में दृष्टव्य है। निराला का हास्य रस भी जीवन्त है। यह हास्य समाज की विषमता के चित्रण में व्यंग्य रूप में प्रकट हुआ है। 'कुकुरमुत्ता ' इस चुभते व्यंग्य का सुंदर उदाहरण है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि निराला की रचनात्मक प्रतिभा विविधता व व्यापकता लिए हुए है। कवि के रचना विधान को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

काव्य भाषा और शब्दावली - भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा होती है। निराला कुशल भाषाविद् हैं। निराला काव्य में भाषा का जो स्वरूप उभर कर आया है - उसका श्रेय उनकी काव्य-शब्दावली का है। काव्य शब्दावली में समासयुक्त तत्सम बहुल शब्द हैं तो कहीं देशी शब्दों

का प्रयोग है। कालक्रम की दृष्टि से प्रथम चरण की रचनाओं में 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका' एवं 'तुलसीदास' में समासयुक्त तत्सम शब्दावली का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है तो दूसरे चरण की कविताएँ - 'कुकुरमुत्ता ', 'अणिमा', 'बेला' और 'नए पत्ते ' में हास्य व्यंग्य का पैनापन और देशी शब्दावली का प्रयोग हुआ है। 'राम की शक्ति पूजा' में भाषा का तत्सम बहुल समास युक्त रूप दृष्टव्य हैः-

''विच्छुरित वाह्नि-राजीव-नयन-हत-लक्ष्यवान,

लोहित लोचन-रावण मद-मोचन-महीयान,

राघव-लाघव-रावण-वारण-गतयुग्म प्रहर।''

इसके अतिरिक्त भाषा में सरल पद-विन्यास व द्विरुक्ति का प्रयोग भी अन्य विशिष्टता है जैसे:-

(1) वह संध्या सुन्दरी परी-सी/धीरे-धीरे -

(2) सुन-सुन घोर व्रज हुंकार।

निराला की भाषा नाद एवं संगीत मय शब्दावली का भी प्रयोग हुआ यथा:

''नुपुरों में भी रून-झुन रून-झुन नहीं

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा चुप, चुप चुप।''

उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग भी विषयानुरूप निराला ने किया है।

काव्य-रूप - गीत, प्रगीत, कथाश्रित काव्य (प्रबन्ध काव्य) और गीति नाट्य-ये चार रूप निराला के काव्य में मिलते हैं। गीत लेखन का प्रारम्भ 'गीतिका' से माना जाता है। उनके गीतों में प्रार्थना, वेदना-करूणा, विद्रोह, देशप्रेम, सौन्दर्य व प्रेम, प्रकृति व भक्ति आदि विविध भाव देखने को मिलते हैं। प्रगीत (लम्बी कविता) गीत की तुलना में अधिक लम्बे होते हैं। निराला की 'सरोज स्मृति', 'यमुना के प्रति', 'विधवा', 'भिक्षुक' और 'शिवाजी का पत्र' आदि विविध रचनाएँ इसी श्रेणी में आती हैं। प्रगीत रचना में कवि वैयक्तिकता, शब्दों की कसावट व संक्षिप्तता के स्थान पर उन्मुक्तता और दृश्यांकन से काम लेता है। सामान्य जन मानस में बसे लोक विश्वासों व धार्मिक परम्पराओं को कथ्राश्रित काव्य का आधार माना जाता है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' आख्यानक रचनाएँ मानी जाती हैं। भावावेश सरस कल्पना और कथा का नियत प्रवाह से ऐसी रचनाओं में रोचकता में श्री वृद्धि होती है। 'तुलसीदास' में नए ढ़ंग प्रबन्धात्मक गरिमा विद्यमान

है। गीतिनाट्य का रूप हमें निराला के 'पंचवटी' में देखने को मिलता है। संक्षिप्तता, स्वगत कथन द्वारा चरित्रोद्घाटन व मार्मिक संवाद गीति नाट्य रचना को प्रभावी बनाते हैं।

काव्य-शैली - काव्य-रूप की भाँति शैलीगत विविधता भी निराला काव्य में दृष्टव्य है। निराला-शैली का मूलभूत गुण 'ओज' और उद्दात्तता है। इनकी रचनाओं में कहीं भावना का ओज और कहीं नाद की उद्दात्तता मुखरित हुई है। 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास का प्रारम्भिक अंश', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' और सहस्त्राब्दि' आदि कविताओं में भावना का ओज और 'बादलराग' जैसी कविता में नाद का सरस गाम्भीर्य विद्यमान है। यह शैलीगत विशिष्टता ही है कि इनकी रचनाओं में ललित शैली, हास्य व्यंग्य शैली और प्रसाद शैली के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

निरालो के गीतों के अन्तर्गत विशेष रूप से स्मृति और प्रकृति चित्रणों में प्रायः ललित सुकुमार शैली के दर्शन होते हैं। 'गीतिका' में इस शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है:-

अलि, घिर आए घन पावस के -

लख, ये काले-काले बादल

नील-संधु में खुले कमल-दल

हरित ज्योति चपला अति चंचल

सौरभ के, रस के।''

निराला काव्य में शैली सम्बन्धी प्रतिभा की वृद्धि में रचनाओं में विद्यमान भाव-प्रवाह और विशेषण-बहुलता का काफी योगदान रहा है। यह प्रवृत्ति निराला की ही नहीं वरन् समस्त छायावादी कवियों की रही है। 'यमुना' के प्रति' गीत का एक उदाहरण इस प्रकार है -

''वह कटाक्ष चंचल यौवन-मन

वन-वन-प्रिय-अनुसरण-प्रयास

वह निष्पलक सहज चितवन पर

प्रिय का अचल अटल विश्वास''

काव्य प्रतीक - निराला के भाव-संवेदनाओं को प्रभावी बनाने में प्रतीक सहायक हुए हैं। उन्होंने यथार्थबोध के दबाव से बदलती गई स्वयं की दृष्टि को प्रतीकों के माध्यम से साकार किया है। 'उद्दात्तता ' प्रतीक योजना की दृष्टि से निराला की सर्वाधिक क्रांतिकारी रचना मानी जाती है जिसमें

'गुलाब' पूँजीवादी सत्ता व शोषक समाज तथा 'कुकुरमुत्ता' शोषित समाज का प्रतीक है। अधिकांश प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से लिए गए हैं। काव्य में पारम्परिक और नवीन दोनों प्रकार के प्रतीक हैं, साथ ही भाव-प्रवण भी है। 'जूही की कली', नव परिणीता का, 'वन बेला' त्याग व तप की प्रतिमूर्ति नारी का प्रतीक है, 'बादल राग' में बादल कभी विप्लव का तो कभी युद्ध की आशंका से पूर्ण पुरूष का प्रतीक है। 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में निराला की विराट प्रतीक योजना का स्वरूप देखने का मिलता है। 'आकाश', 'पर्वत' और 'सागर' आदि महानाश के प्रतीकों द्वारा मन की तामसिक शक्तियों की अभिव्यक्ति निराला करते हैं। वस्तुतः प्रतीक निराला की विविध भाव-चेतना की रचनात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहे हैं।

काव्य-बिम्ब - प्रतीक विधान की तरह निराला के काव्य में बिम्ब विधान में भी विविधताहै। भाव, आवेग और ऐन्द्रियता आदि तत्व बिम्ब को जीवन्त और प्राणवान बनाते हैं। भाव-संवेदनाओं को साकार करने में बिम्ब ही सहायक होते हैं। निराला ने काव्य में जीवन के विविध पक्षों का मार्मिक अंकन किया है जिनकी सार्थकता हम उनके बिम्ब विधान में देख सकते हैं। निराला की बिम्ब योजना का भावपूर्ण रूप 'तुलसीदास' में देखा जा सकता है।

पति के 'अनाहूत' आने पर भवातुर रत्नावली का तेदोद्दीप्त विराट योगिनी रूप दृष्टव्य है:-

बिखरी छूटीं शफरी अलकें, निष्णात नयन-नीरज पलकें,

भवातुर प्रथु उर की छलके उपशमिता।

निःसंबल केवल ध्यान मग्न, जागी योगिनी अरूप-लग्न

वह खड़ी शीर्णप्रिय भाव मग्न निरूपमिता।

इसके अतिरिक्त नारी की शान्त नीरव मनःस्थिति का भाव पूर्ण अंकन 'विधवा' में दृष्टव्य है:-

''वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी, वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन''

इसी तरह स्नेह निर्झर बह गया है, रेते ज्यों तन रह गया है' कहकर जीवन की नश्वरता को सहज अलंकृति के साथ कवि ने 'रेत' के बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया है। इसी तरह 'संध्यासुन्दरी' व 'प्रिययामिनी' जागी शीर्षक कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब भी सहज अलंकृति से आरम्भ होकर चाक्षुस गतिशील बिम्ब का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि निराला द्वारा प्रयुक्त बिम्बों में दृश्यात्मकता या चाक्षुस गुण सर्वत्र विद्यमान है।

निराला ने विराट बिम्बों की भी सृष्टि की है। उनके काव्य में संवेद्य बिम्बों की भी प्रचुरता है। शब्द नाद के माध्यम से बिम्ब योजना करने में निराला को विशेष सफलता मिली है।

''कुछ समय अनन्तर, स्थिर रहकर

स्वर्गीयामा वह स्वरित प्रखर

स्वर में झरकर जीवन भरकर ज्यों बाली'

इसी तरह 'नीचे प्लावन की प्रलय-धार ध्वनि हर-हर' में ध्वनि बिम्ब है। निराला ने भारत के तमसपूर्ण, दिग्मण्डल, मोगल-दल-बल-जलधि, घन-नीलालका, छाया-श्लथ, धूल-धूसरित छवि, उन्मद-नद पठार, उत्ताल -तरंगाघात-प्रलय-धन-गर्जन-जलधि-प्रबल में नुपुरों में भी रून-झुन, रून-झुन, रून-झुल नहीं आदि अनके नादात्मक शब्दों का प्रयोग करके ध्वनि बिम्बों की सार्थक संयोजना की हैं

इस प्रकार निराला काव्य में 'ऐन्द्रिय' और 'मानस' दोनों प्रकार के बिम्बों का सफल चित्रण देखा जा सकता है।

अप्रस्तुत विधान - भाषा, प्रतीक, काव्य-रूप, शैली की भाँति अप्रस्तुत योजना या 'अलंकार' भी शिल्प विधान का महत्वपूर्ण तत्व है। अलंकारों में कवि के भाव, विचार एवं अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने की अद्भुत क्षमता होती है। निराला काव्य में अनुप्रास, रूपक, पुनरूक्ति, उपमा, यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के अतिरिक्त मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजक और विशेषण विपर्यय आदि का विशेष प्रयोग देखने को मिलता है। निराला काव्य में अप्रस्तुत विधान के कुछ रूप दृष्टव्य है:-

उपमा अलंकार - 'संध्या-सुन्दरी परी सी।'

'वह दीप-शिखा सी शांत, भाव में लीन'

'लोग बैठे जैसे चूसे आम हो' और गाड़ी

आई जैसे खैयाम की रूबाई हो।'

अनुप्रास: पय पीयूषपूर्ण पानी से/रून झुन-रून झुन नहीं।

सकल श्रेय-श्रम-सिचिंत फल

मानवीकरण:- 'संध्या सुन्दरी परी सी' - 'सखि वसन्त वाया'

'भारति जय-विजय करे', खुलती मेरी शैफाली

रूपक:- 'स्नेह-निर्झर बह गया/तिरती है समीर-सागर पद।'

और 'यह तेरी रण-तरी, भार आकांक्षाओं से' इन मुख्य अलंकारों के साथ-साथ यथा आवश्यक अन्य अलंकारों का भी निराला काव्य में प्रयोग हुआ है।

छन्द विधान - निराला का काव्य छन्द - प्रयोग की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। उनकी काव्य प्रतिभा मुक्त छन्द में भी व्यक्त हुई है। निराला जी को छायावादीयुगीन कवियों में सर्वाधिक स्वच्छन्द प्रकृति का कवि माना जाता है। वे छन्द के बन्धन से कविता को मुक्त करने के हिमायती है। इसीलिए उन्होंने अपनी काव्य-रचना में प्रारम्भ से ही मुक्त छन्द का प्रयोग अपनाया। 1916 में उनकी प्रथम रचना 'जूही की कली' से मुक्त छन्द परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है। मुक्त छन्द का तात्पर्य छंद से मुक्ति नहीं, वरन् छंद का ऐसा मूलभूत स्वच्छंद और बन्धन हीन रूप से है जिसमें भाव-प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। इस संदर्भ में निराला ने 'परिमल' की भूमिका में लिखा है ''मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है ......, मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति।'' निराला ने मुक्त छन्द को कई स्थितियों में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। परम्परागत नियमानुसार सम और अर्ध सम छन्द प्रायः चार पंक्तियों में लिखे जाते हैं। सम मात्रिक छन्दों में चारों चरणा में समान मात्राएँ और छंदो में प्रायः सान्त्यानुप्रास की एक विशेषता रहती है, परन्तु भाव-प्रवाह की दृष्टि से निराला ने इनमें स्वच्छन्दता अपनाई है। एक ही मात्रा वर्ग के विभिन्न छन्दों की पंक्तियों को एक छंद में गूंथकर उन्होंने सम मात्रिक छंद के अन्तर्गत मुक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने चार, छः, दस सममात्रिक पंक्तियों के बाद एक-दो कम या अधिक मात्राओं की पंक्तियाँ रखकर भाव-प्रवाह को मोड़ दिया और उसके बाद फिर अन्य सम या अर्ध सम मात्रिक पंक्तियों की रचना की। उदाहरणार्थ -

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा-सी, ... 22 मात्राएँ

वह दीप शिक्षा-सी शान्त, भाव में लीन .... 21 मात्राएँ

वह क्रूर काल तांडव की स्मृति-रेखा सी, ... 22 मात्राएँ

वह टूटे तरू की छूटी लता सी दीन, ... 21 मात्राएँ

दलित भारत की ही विधवा है। .... 17 मात्राएँ

इसमें प्रथम चार पंक्तियाँ में क्रमशः 22, 21, 22, 21 मात्राओं के रूप में अर्धसम छन्द की योजना है परन्तु पाँचवी पक्ति (टेक) 17 मात्राओं की है। आगे की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं:-

षड्-ऋतुओं का श्रृंगार .... 13 मात्राएँ

कुसुमित कानन में नीरव-पद संचार .... 20 मात्राएँ

अमर कल्पना में स्वच्छंद विहार .... 20 मात्राएँ

व्यथा की झूली हुई कथा है .... 17 मात्राएँ

उसका एक स्वप्न अथवा है .... 17 मात्राएँ

उक्त विधवा की छठी पंक्ति में फिर 13 मात्राएँ, सातवीं और आठवीं पक्ति में 20-20 और दुहरे टेक के रूप में 17-17 मात्राओं की पंक्तियाँ हैं। इन पंक्तियों में सिर्फ लय या अनवरत की संगति विद्यमान है। इस प्रकार स्पष्ट है कि निराला भाव की अभिव्यक्ति में पूर्णता लाने के लिए कम से कम छंद सम्बन्धित अनुशासन स्वीकार करने के पक्ष में है। निराला-काव्य में छंद की कल्पना नृत्य में गति-सौष्ठव के समान है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में निराला-काव्य का विवेचन करते हुए 'परिमल' में दिए गए उनके मुक्त छंद प्रयोग के उद्धरण के आधार पर लिखा है - ''सबसे अधिक विशेषता आपके पद्यों में चरणों की स्वछंद विषमता है। कोई चरण बहुत लम्बा, कोई बहुत छोटा, कोई मझोला देखकर आलोचक इसे रबर छन्द' केंचुआ दंद आदि कहने लगे थे। 'बेमेल चरणों की विलक्षण आजमाइश उन्होंने सर्वाधिक की है। जैसा कि 'विधवा' कविता के उदाहरण में हमने पूर्व में समझा।

भाव प्रवाह को अधिक गतिशील और स्वच्छंद बनाने के लिए ही रचनात्मक स्तर पर स्वयं निराला द्वारा किया गया यह प्रयोग है जो साहित्य के क्षेत्र में सफल हआ और मुक्त छंद के इस नवीन मार्ग के आधुनिक हिन्दी कविता का नया शिल्प-स्वरूप विकसित हुआ। परन्तु यह भी सत्य है कि निराला का छन्दबद्ध काव्य उनके मुक्त छन्द काव्य से कहीं हल्का नहीं पड़ताहै। यद्यपि वे मुक्त छन्द के प्रणेता है पर 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज-स्मृति' और 'तुलसीदास क्लासिकी पद्धति की रचनाएँ हैं जो व्यवस्थित छंद विधान में लिखी गई है और अंत्यानुप्रास और तुक-विधान इसमें सम्मिलित है। मुक्त छन्द का प्रयोग नए विषयों में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। मुक्त छन्द विधान उनके काव्य, वैविध्य-का एक प्रभावी एक आयाम है।

अभ्यास प्रश्न -

नीचे दिए गए बिन्दुओं पर टिप्पणी लिखिए -

(क) निराला की काव्य-भाषा में शब्दावली का स्वरूप।

(ख) निराला-काव्य में बिम्ब और प्रतीक।

(ग) निराला के काव्य में सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना।

(घ) निराला के व्यक्तित्व से प्रभावित उनका कवि-कर्म

14.8 सारांश

छायावाद अपने आप में एक विशिष्ट काव्यधारा रही और छायावाद के प्रतिनिधि कवि निराला भी संवेदना और शिल्प दोनों क्षेत्रों में विशिष्ट बने रहे। प्रस्तुत इकाई में निराला काव्य का पाठ और काव्य की अन्तर्वस्तु व रचनात्मक कौशल से स्पष्ट हो जाता है कि निराला के काव्य में प्रेम, श्रृंगार, प्रकृति व सौन्दर्य चित्रण के साथ-साथ राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना, अध्यात्मिकता, विषाद और करूणा भाव, भक्ति भावना, व्यंग्य, विनोद और विद्रोह का स्वर भी मुखरित हुआ है। छायावादी कवियों में निराला सर्वाधिक स्वच्छंद प्रकृति के घोर विद्रोही कवि माने जाते रहे। निराला की अभिव्यक्ति में सर्वत्र नूतनता का आह्वान देखने को मिलता है। चाहे काव्य की अन्तर्वस्तु हो या शिल्प विधान सभी में उन्होंने नए-नए प्रयोग किये हैं। यह एक विलक्षण बात है कि उनमें क्लासिकी, रोमांटिक तथा आधुनिक तत्व एक साथ दिखाई देते हैं। मुक्त छंद और छन्द बद्ध, 'राम की शक्ति पूजा' और 'कुकुरमुत्ता' तत्सम-तद्भव-देसी, प्रबन्ध-गीत-मुक्तक विधान, काव्य रूप और भाषा के इन विविध स्तरों पर इतना वैविध्य अन्यत्र कवियों में दुर्लभ है। वस्तुतः निराला क्रान्ति के अग्रदूत पौरूष के श्रृंगार, भक्त, युगीन विषमताओं और निजी व्यथाओं से तप-तप कर निर्भीक, स्पष्टवादी और मानवता का जयघोष करने वाले 'महाप्राण' कवि थे।

14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भागीरथ मिश्र: निराला काव्य का अध्ययन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967

2. (संपा.) डॉ. पद्मसिंह: निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1969

3. (संपा.) डॉ. वचन देव कुमार: निराला आलोचकों की दृष्टि में, बिहार ग्रंथ कुटीर प्रकाशन, पटना, 1980

14. रेखा खरे: निराला की कविताएँ और काव्यभाषा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989

5. (संपा.) डॉ. रामजी तिवारी: शताब्दी पुरूष: निराला, परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई, 1999

5. डॉ. विजय लक्ष्मी: छायावाद का प्रेम दर्शन, ईशा ज्ञानदीप, दिल्ली, सन् 2001

14. नन्द किशोर नवल: निराला-काव्य की छवियां, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2002

14. श्री कृष्ण नारायण कक्कड़ ' निराला से रघुवीर सहाय तक, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

14. (संपा.) नन्द किशोर नवल: निराला रचनावली भाग-1 से 8 तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2009 पांचवा संस्करण

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. निराला के व्यक्तित्व का विस्तृत परिचय देते हुए उनके कृतित्व की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

2. ''निराला के काव्य में कल्पना-वैभव, अध्यात्मिकता और भक्ति भावना के साथ व्यंग्य और विनोद का भी सम्मिश्रण है।'' इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिए।

3. 'निराला काव्य में वैविध्य का स्वर संवेदना और शिल्प दोनों स्तर पर विद्यमान हैं।'' इस कथन का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

इकाई 15 - महादेवी वर्मा: पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 व्यक्तित्व और कृतित्व
15.4 काव्य-पाठ और ससंदर्भ व्याख्या
15.5 काव्य का अनुभूति पक्ष
15.5.1 करूणा की प्रधानता (बौद्ध दर्शन का प्रभाव)
15.5.2 नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण
15.5.3 सामाजिकता की भावना
15.5.4 दार्शनिकता और रहस्यानुभूति
15.5.5 प्रणय और विरहानुभूति का स्वर
15.5.6 जागरण और विद्रोह का स्वर
15.5.7 प्रकृति प्रेम
15.5.8 सौन्दर्य चेतना
15.5.9 गीति-तत्व की प्रधानता
15.6 काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष
15.6.1 काव्य-भाषा
15.6.2 प्रतीक एवं बिम्ब विधान
15.6.3 अलंकार
15.7 सारांश
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने छायावाद के उद्भव एवं विकास को विस्तार से समझा। प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि हिन्दी के छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व व कृतित्व संवेदनशील रहा है।

प्रायः महादेवी को जीवन व समाज से परे अन्तर्मुखी कहा जाता रहा है। किन्तु वे अपनी काव्य-सृष्टि और सर्जना दोनों में साहित्य की समाज सापेक्षता की पक्षधर रही है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि छायावाद रहस्यवाद हिन्दी काव्य-प्रकृति के प्रधान संवाहक बनकर उभरे थे और यह युग विश्वमानवतावाद और जागरण की चेतना को अपना सहवर्ती बनाकर उससे प्रेरणा ग्रहण करने में भी सफल हो गया। प्रसाद, निराला और पन्त की भाँति महादेवी वर्मा ने भी अपने सम्पूर्ण काव्य में भाववादी और संवेदनात्मक विद्रोह को व्यक्त किया है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:

1. महादेवी के जीवन परिचय और व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2. महादेवी की काव्य-रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3. काव्य पाठ का वाचन कर उनकी व्याख्या करने की योग्यता विकसित कर सकेंगे।

15. महादेवी के काव्य में विद्यमान संवेदना व शिल्प का विश्लेषण कर सकेंगे।

5. अन्य छायावादी कवियों में महादेवी की विशिष्टता का उल्लेख करते हुए उनके योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

15.3 व्यक्तित्व और कृतित्व

छायावाद चतुष्टय के नाम से प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा प्रसिद्ध हैं। महादेवी वर्मा काव्यमय व्यक्तित्व से सम्पन्न थी। वे जीवन की कृत्रिमताओं से मुक्त उन्मुक्त हंसनेवाली एवं शुभ व उज्ज्वल नारी थी।

26 मार्च 1907 को होली के शुभ दिन पर उत्तरप्रदेश के फरूखाबाद जिले में महादेवी वर्मा का जन्म हुआ था। इनका परिवार सुसम्पन्न व सुशिक्षित था लेकिन इस परिवार में लगभग सात पीढ़ियों तक कन्याएं जन्म के साथ मार-डाली जाती थी। दो सौ सालों के बाद कन्या के रूप में इनका जन्म हुआ था अतः इनके बाबू बांके बिहारी जी ने नाम महोदवी (घर की देवी) रख दिया। महादेवी वर्मा ने स्वयं इसका उल्लेख किया है ''जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर एक कोने से दूसरे कोने तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। ''महोदेवी वर्मा के हृदय में बचपन से ही जीवमात्र के प्रति दया थी, करूणा भावना थी। उनके रेखाचित्रों से बाल्य जीवन की झांकिया मिल जाती है। अतीत के चलचित्र के पहले तीन संस्मरणों में 'रामा', 'भाभी'

तथा 'बिन्दा' का सम्बन्ध इनके बाल्यजीवन से है। महादेवी वर्मा की शादी बचपन में मात्र 9 वर्ष की अवस्था में कर दी गई थी। परन्तु इन्होंने अपनी पढ़ाई 1932 तक जारी रखी और प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. संस्कृत विषय में उत्तीर्ण किया। बाद में प्रधानाचार्य के रूप में शिक्षा क्षेत्र की सेवा में लग गईं।

होली के दिन जन्मी महादेवी का व्यक्तित्व होली की विविधता और रंगमयता से भरा था। इनके व्यक्तित्व में संवेदना, दृढ़ता व आक्रोश का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे विदुषी, अध्यापिका, कवि, गद्यकार, चित्रकार, कलाकार व समाजसेवी के रूप में हमारे सामने आती हैं। अध्ययनशील व संवेदनशील मनोवृत्ति, सफाई व स्वच्छता प्रिय, गंभीरता व धैर्य इनमें विशिष्ट गुण थे।

महादेवी वर्मा 1952 को उत्तर प्रदेश की विधान परिषद की सदस्य मनोनीत की गई। महादेवी को कई पुरस्कार व सम्मान से नवाजा गई। महादेवी की रचनाएं आरम्भ काल से अर्थात् 1930 से 1975 तक साहित्य जगत को आकर्षित करती रहीं। भारत सरकार द्वारा इन्हें मरणोपरांत 'पद्म विभूषण' उपाधि से अलंकृत किया गया। महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य जगत की प्रसिद्ध कवयित्री और उल्लेखनीय गद्य लेखिका थीं। उन्हें नीरजा कृति पर 1933 में सेकसरिया पुरस्कार मिला। 1944 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'मंगलाप्रसाद' पुरस्कार और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'विशिष्ट साहित्य पुरस्कार' सन् 1973 को प्रदान कर इनकी सेवाओं को सम्मानित किया गया। 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय और 1980 को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट. की उपाधि दी गई। 1982 में लखनऊ के हिन्दी संस्थान द्वारा 'भारत-भारती' पुरस्कार प्रदान किया गया। 1983 को उनके काव्य संग्रह 'यामा' और 'दीपशिखा' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ने अपने पुरस्कार से वर्मा जी का सम्मान किया। 11 सितम्बर 1987 को महादेवी का निधन हुआ था।

परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके इन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर इनका अपना विशाल परिवार व उनका पोषण सब के वश की बात नहीं है। गायें, हिरण, गिलहरी, बिल्लियां, खरगोश, मोर, कबूतर तो इनके चिरसंगी रहे। वृक्ष, पुष्प, लताएं इनकी ममता के आगोश में पले-बढ़े थे। परिवार के नौकर पारिवारिक सदस्य ही थे।

महादेवी वर्मा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का परिचय सुमद्रा कुमारी चौहान, कृष्णा, हरिसिंह (जवाहरलाल नेहरू की बहन), सुमित्रानन्दन पंत, निराला, गोपीकृष्ण गोपेश, महात्मा गांधी जैसी विभूतियों से था।

बचपन से ही महादेवी वर्मा जी का स्वभाव रहा कि इन्होंने अपने जीवन-विकास के लिए जो उचित और उपयुक्त समझा सो किया, हठ और भीषण विद्रोह के साथ किया। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा ने शायद इनको पारिवारिक जीवन व गृहस्थ से दूर रहने की प्रेरणा दी

होगी। व्यक्तित्व में करूणा का अंश और भीतर के द्वन्द्व का समन्वय करने में सफलता इसीलिए प्राप्त हुई। महादेवी वर्मा अत्यन्त सरल व विनम्र, गंभीर व महान हृदया थी।

जीवन और साहित्य के पट में इतने विभिन्न रंगी सूत्रों का सम्मिलन बहुत ही विरल होता है। रहस्यवादी कवि, यथार्थवादी गद्यकार, समन्वयवादी समालोचक होने के साथ ही वे अद्वितीय रेखाचित्रकार, संस्मरण लेखिका, सामाजिक एवं ललित निबंधकार, उच्चकोटि की चित्र कर्त्री और प्रबुध समाज सेविका तथा राष्ट्रीय संस्कृति की संरक्षिका थीं। इनके रचनात्मक कार्यों के प्रतीक प्रयाग महिला विद्यापीठ और साहित्यकार संसद के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थायें और पाठशालाएँ हैं। विशेषता यह है कि इन सभी क्षेत्रों में इनके व्यक्तिव की अखण्डता सर्वथा अक्षुण्ण है।

कृतित्व

विद्यार्थी जीवन में ही महोदेवी वर्मा ने कविताएं लिखनी शुरू कर दी थी। प्रारम्भिक कविताएं छन्दबद्ध थीं और ‘रोला’, ‘हरिगीतिका’ छन्द में लिखी गईं। महादेवी वर्मा की काव्य कृतियां नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1935), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), सप्तपर्णा (अनुदित)(1966), हिमालय (1963), अग्निरेखा (1980) है। महादेवी का प्रथम काव्य संग्रह नीहार है। नीहार में जीवन संसार की नश्वरता, वेदना व करूणा में खो जाने की इच्छा है। ‘रश्मि‘ कविता संकलन में कवयित्री ने अतृप्ति, अभाव और दुख आदि को मनुष्य के जीनव का मौलिक सत्य माना है। सांध्यगीत में उनकी कविताओं में उपासना का भाव है। विरह का अभिशाप वरदान के रूप में है और विरह व अभाव आनन्द देने वाला है। दीपशिखा महादेवी के चित्रमय काव्य का मूर्त रूप है। इन गीतों में उनके निर्भय व स्वाभिमानी भावना का परिचय मिलता है जैसे ‘‘पंथ होने दो अपरिचित, प्राण, रहने दो अकेला”- इसी तरह ‘‘तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देखलूं उस पार क्या है?” ‘सप्तपर्णा’ संकलन संस्कृति और पाली भाषा के साहित्य के कुछ चुने हुए अशों का अनुवाद है। ‘अग्निरेखा में‘ दीपक को प्रतीक मानकर रचना की गई है।

बाल कविताएं -

बाल कविताओं के दो संग्रह छपे हैं (क) ठाकुर जी भोले हैं (ख) आज खरीदेंगे हम ज्वाला। ठाकुर जी बोले है संग्रह बच्चों के भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है -

ठण्डा पानी से नहलाती

ठण्डा चन्दन इन्हें लगाती

इनका भोग हमें दे जाती

फिर भी कभी नहीं बोलें है

माँ के ठाकुर जी भोले हैं।

महादेवी की गद्य **कृतियां** :-

अतीत के चलचित्र (1941), श्रृंखला की कड़ियां (1942), स्मृति की रेखाएं (रेखा चित्र)(1943), पथ के साथी (संस्मरण)(1956), क्षणदा (निबन्ध)(1956), साहित्यकार की आस्था और अन्य निबन्ध (1960), संकल्पिता (आलोचना)(1963), मेरा परिवार (पशु-पक्षी संस्मरण)(1971) और चिन्तक के क्षण (1986) आदि महादेवी वर्मा द्वारा रचित गद्य रचनाएं हैं।

15.4 काव्य पाठ और ससंदर्भ व्याख्या

पंथ रहने दो अपरिचित .... दीप खेला।

पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला

घेर ले छाया अमा बन,

आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन,

और होंगे नयन सूखे

तिल बुझे औ, पलक रूखे

आर्द्र-चितवन में यहाँ शत-विद्युतों में दीप खेला

शब्दार्थ - पंथ: रास्ता, अपरिचित: अनजान, अमा: अमावस्या (अँधेरा), कज्जल: काजल, तिल: आँख की पुतली, आर्द्र: नम (भिगी हुई), चितवन: नज़र, दृष्टि।

प्रसंग: प्रस्तुत पद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित काव्य संकलन 'दीपशिखा' से उदधृत है। महादेवी के काव्य में विरह व वेदना का भाव प्रमुख है। कवयित्री अपने अकेलेपन को छोड़ना नहीं चाहती। प्रियतम की प्राप्ति नहीं वरन् वेदना की अभिव्यक्ति ही मुख्य है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई महादेवी कहती हैं -

व्याख्या:- प्रियतम को प्राप्त करने का रास्ता मेरे लिए अपरिचित हो और विरह में व्यथित मेरे प्राण अलग-थलग पड़े रहें, चाहे जितनी भी विपदाऐं मेरे इस साधना पथ में आए मैं निरन्तर आगे बढ़ती रहूँगी। प्रियतम को प्राप्त करने के इस अज्ञात सफर में अमावस्या अर्थात अंधकार की छाया मुझे घेर ले, अंधकार से घिरे बादल काजल के आँसुओं की झड़ी लगा दे, चाहे कितना ही रूदन क्यों

न हो, अमावस्या की कालिमा-सज्जित रात्रि का निराशाजन्य अंधकार, क्यों न घेर ले, मैं सभी बाधाओं का सामना करती हुई इस वेदना के पथ पर एकाकी चलती रहूँगी। इस साधना पथ पर प्रियतम की प्रतीक्षा में यदि आँखे सूख भी जाए, पुतलिया बुझ जाए, पलके रूखी हो जाए अर्थात् आँसू भी जीवन का साथ नहीं दे और नेत्र-कोश रीते हो जाए तो भी मैं वियोग में पलती रहूँगी। प्रियतम की वेदना से मेरी आँखे तो, अवश्य आर्द्र (भीगी हुई) रहेगी, हृदय की रिक्तता और अकेलेपन का विस्तार होता रहेगा। मेरी दृष्टि में सैंकड़ों प्रकाश के दीप झिलमिलाते रहेंगे अर्थात् मैं एक सजल दृष्टि से भी अराध्य को पाने का अटूट आत्मविश्वास रखती हूँ।

विशेष:-

1. विरह जन्य स्थितियों से उत्पन्न अकेलेपन का भी सकारात्मक पक्ष उजागर हुआ है। महादेवी के लिए वियोग हृदय का विस्तार ही है। वेदना से नम आँखों के दीप में आत्मविश्वास रूपी विद्युत (प्रकाश) झिलमिलाती रहती है।

2. महादेवी वेदना को छोड़ना नहीं चाहती, क्योंकि इसी में प्रियतम निहीत है। प्रियतम को प्राप्त करते ही वेदना का मधुर भाव छूट जाएगा। जिस तरह ब्रह्म प्राप्ति को तत्पर जीव जब ब्रह्म से मिलता है तो उसका अस्तित्व समाप्त् हो जाता है, महादेवी यह नहीं चाहती। ब्रह्म (प्रियतम) की प्राप्ति के निरन्तर प्रयास में लीन रहना ही उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। जिससे उन्हें निरन्तर ब्रह्म की अनुभूति होती रहे। महादेवी को चिर-विरहिणी बने रहने में ही संतोष प्राप्त होता है, क्योंकि तृप्ति साधना में बाधक होती है।

व्याख्या खण्ड (2)

धीरे-धीरे .... सिहरती आ वसन्त रजनी।

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से

आ बसंत-रजनी

तारकमय नव वेणी बंधन,

शीश-फूल कर शशि का नूतन

रश्मि वलय सित घन-अवगुण्ठन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी

पुलकति आ बसन्त रजनी

मर्मर की सुमधुर-नुपुर-ध्वनि

अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणी,

भर पद-गति में अलस-तरंगिणि,

तरल रजत की धार बहा दे, मृदु स्मित से सजनी!

विहँसती आ वसन्त-रजनी!

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,

कर में हो स्मृतियों की अंजलि,

मलयानिल का चल-दुकूल अलि!

घिर छाया-सी श्याम, विश्व को आ अभिसार बनी!

सकुचती आ वसन्त-रजनी!

सिहर-सिहर उठता सरिता-उर,

खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,

मचल-मचल आते पर फिर-फिर,

सुन प्रिय की पद-चाप हो गयी पुलकित यह अवनी!

सिहरती आ वसन्त-रजनी!

शब्दार्थ:- तारकमय: तारों से मुक्त, शशि: चन्द्रमा, घन-अवगुण्ठन: बादलों का घूँघट, सित: सफेद, अभिराम: सुन्दर, चितवन: दृष्टि, नूपुर: पाजेबी, किंकिणी: कंगन, रजत: चाँदी, मदु: मधुर, स्मित: मुस्कान, मलयानित: मलय पर्वत से आने वाली वायु, अभिसार: प्रियतम से मिलने जाना, सरिता-उर: नदी के हृदय, सुधा-अमृत, पद-चाप: पैरों की आहट, अवनी: धरती।

प्रसंग: प्रस्तुत गीत महादेवी वर्मा कृत काव्य संग्रह 'नीरजा' से अवतरित है। अन्य छायावादी कवियों की भाँति महादेवी वर्मा ने प्रकृति का मानवीकरण कर अपनी संवेदना का माध्यम बनाया है। महादेवी ने वासंती निशा का श्रृंगार से सजी नायिका के समान पृथ्वीतल पर उतरने को चित्रात्मक अभिव्यक्ति दी है।

व्याख्या: महादेवी वर्मा सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित बासंती रजनी को आमंत्रित कर रही है जैसे किसी नायिका को उसके प्रियतम से मिलाने हेतु बुला रही हो।

महादेवी वसंत रजनी का पूरा चित्रण एक सजी-धजी युवा स्त्री के रूप में प्रस्तुत कर निमन्त्रण दे रही है कि सूखी पत्तियों की मधुर मर्मर ध्वनि की पायल छमकाती हुई, भ्रमरों से गुंजरित कमलों का कंगन बजाती हुई, अलसाई नदी की मंथर चाल चलती हुई, मधुर मुस्कान से पिघली हुई चाँदी की धार-बहाते हुए हँसती हुई धरती रूपी नायक से मिलने आओ। प्रिय से अभिसार के लिए उत्सुक वासंती निशा रूपी प्रियतमा का सुखद सपनों से रोमांचित हो, हाथों में मधुर मिलन की स्मृतियों की अंजुरि भर, मलय पर्वत से आने वाली शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा का आँचल धारण कर, उसे लहराते हुए, काली छाया के समान घिरकर और पूरे विश्व को अभिसार स्थली बनाने का आग्रह है।

वासंती रजनी का यह रूप सौन्दर्य व रोमांच देखकर नदी का हृदय तरंगों के रूप में बार-बार सिहर उठता है और मकरन्द से भरे फूल बार-बार रोमांचित हो खुलते जा रहे, मिलने की आशा के क्षण पुनः मचल उठते हैं, इस तरह से धरती पुलकित हो रही है। इन क्षणों में बसन्त रजनी से सिहरती हुई आने का आग्रह है।

विशेष:

1. महादेवी छायावादी काव्य धारा की प्रमुख स्तम्भ रही है। अतः इस काव्य धारा की भाषा शैली के सभी गुण इनमें भी विद्यमान हैं। प्रस्तुत गीत में भी कोमल कान्त पदावली, परिनिष्ठित चित्रमयी भाषा, नाद सौन्दर्य, लाक्षणिकता, अलंकार विधान, समुचित प्रतीक विधान, शब्दों की पुनरावृत्ति आदि का कुशलतापूर्वक संयोजन है।

2. गीतिशैली या प्रगीत काव्य-रूप की सभी विशेषताएँ इस गीत में है। लयात्मकता, भाव-सघनता व संक्षिप्तता अत्यन्त प्रभावी है।

3. प्रकृति के मानवीकरण रूप की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीत में है।

चुभते ही तेरा अरूण बान .... सुधि विहान।

चुभते ही तेरा अरूण बान!

बहते कन कन से फूट फूट,

मधु के निर्झर से सजल गान!

इन कनक रश्मियों में अथाह,

लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग,

बुदबुद से बह चलते अपार,

उसमें विहगों के मधुर राग,

बनती प्रवाल का मृदुल कूल,

जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान!

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,

बन गये इन्द्रधनुषी वितान,

दे मृदु कलियों की चटक, ताल,

हिम-बिन्दु नचाती तरलप्राण,

धो स्वर्ण-प्रात में तिमिर-गात,

दुहराते अलि निशि-मूक तान!

सौरभ का फैला केश-जाल,

करतीं समीर-परियाँ विहार,

गीली केसर-मद झूम झूम,

पीते तितली के नव कुमार,

मर्मर का मधु संगीत छेड़-

देते हैं हिल पल्लव अजान!

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख,

उड़ गई नींद-निशि क्षितिज पार,

अधखुले दृगों के कंज-कोष-

पर छाया विस्मृति का खुमार,

रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास,

यह चतुर चितेरा सुधि-विहान!

महादेवी जी के हृदय में पीड़ा का स्थान स्थायी हो चला है। उन्हें इसी कारण आधुनिक युग की मीरा कहा जाता है। प्रस्तुत गीत में फूलों को छोड़ काँटों से भी प्रियतम के नाम पर प्यार करना उन्हें अच्छा लगता है। हृदय की रागात्मक अभिव्यक्ति है।

शब्दार्थ: शूल: काँटे, अलि: भौंरा, हीरक: हीरा, खरा - शुद्ध, श्रेष्ठ, सुख मिश्री: सुख की मिठास, मुकुल: पुष्प।

नोट: विद्यार्थी इस इकाई पाठ के आधार पर स्वयं व्याख्या करने का प्रयास करें।

विशेष :

इस गीत में प्रभात का चित्रोपम वर्णन हैं। रात्रि के अंधकार में समस्त प्राणी निद्रामग्न रहते हैं। उनमें चेतना का संचार नहीं होता। सूर्यरश्मि के स्पर्श से उनमें चेतना का उदय होता है, नवीन गति का संचार होने लगता है। महादेवीजी सूर्य की किरणों में आध्यत्मिक दृष्टि से उस अज्ञात चित्रकार का चैतन्यदायक स्पर्श पाती हैं, जो संपूर्ण संसार का संचालक है।

अरूण बान लाल रंग का शर। सूर्य की अरूण किरण को बाण के रूप में रूपित किया है। सजल गान: विरह वेदना के गीत। मधु के निर्झर: मकरंद के प्रवाह ; रसमय गीत। प्रभात में रश्मि के स्पर्श से जाग्रत होकर आत्मा प्रियतम का स्मरण करती है, वेदना के गीत गाने लगती है।

कनक रश्मियों में: सूर्य की स्वर्णाभ किरणों में। तम-सिंधु: अंधकार-रूपी समुद्र। संसार जागता है, हलचल मचती है; यही सिंधु का 'हिलोर लेना' है। विहगों के समान कलकूजन करनेवाले कवियों की मधुर, रससिक्त वाणी। कुहर-म्लान: कुहरे से प्रवालमय तीर का रूप ले लेती है। कुदकुसुम से मेघपंज: कुंदपुष्पों के समान बादल। इंद्रधनुषी: संध्या (प्रातःकालीन) की अरूणिमा से रंजित। निशि मूक तान: जो संगीत रात्रि में बद हो गया था। अलि: भौंरे। भाव है कि रात को विश्राम की नींद सोनेवाले भ्रमर ही अप्सराएँ हैं। सौरभ का केशजाल: उनकी सुगंधि अप्सराओं के केशपाश के समान हैं।

स्वप्नपंख: स्वप्नरूपी पंख। नींद को एक चिड़िया के रूप में रूपित करने पर, स्वप्नें को उस पक्षी के पंख मानना उचित है। जैसे शिकारी के बाण से त्रस्त पक्षी पंख फैलाकर उड़ जाता है, वैसे ही नींद भी सूर्यकिरणरूपी बाण के स्पर्श से त्रस्त होकर उड़ गयी। दृगों के कंजकोष: नेत्ररूपी कमल-कुण्डल। खुमार: नशा। चतुर चितेरा: निपुण चित्रकार। अश्रु-हास: दुख-सुख। यह अज्ञात

चित्रकार अश्रु और हास लेकर जनमानस को रंग रहा है। सुधि-बिहान: स्मृतियों का प्रभात। 'विहान' शब्द व्रजभाषा का है। यह बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होता है।

15.5 काव्य का अनुभूति पक्ष

15.5.1 करुणा की प्रधानता (बौद्ध दर्शन का प्रभाव)

महादेवी की रचनाओं में बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। विशेष रूप से करूणा और उसके विस्तार का भाव उनके सम्पूर्ण काव्य में व्याप्त है।

बौद्ध धर्म के जिस ऐतिहासिक पक्ष को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य की भूमिका में उजागर करते हैं उसी का महत्व व धर्म के तत्वों (सिद्धान्तों) का प्रयोग महादेवी वर्मा अपनी कविताओं में करती हैं। बुद्ध के कोमल मानवीय तत्वों का उनकी काव्य-रचनाओं में तथा कठोर बुद्धिवाद का उनके गद्य साहित्य में सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। नव जागरण काल में ईश्वर सम्बन्धित पाश्चात्य विचारों का भारतीय संस्कृति में प्रवेश के दौरान महादेवी का यह कथन मार्मिक व समयानुकूल था। ''संसार के धर्म संस्थापकों की पंक्ति में बुद्ध ऐसे अकेले हैं, जिन्होंने मनुष्य के सम्बन्धों में सामंजस्य लाने के परमात्मा की मध्यस्थता स्वीकार नहीं की, मनुष्यता उत्पन्न करने के लिए किसी पारलौकिक अस्तित्व का सहारा नहीं लिया।" महादेवी की रचनाओं में बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। विशेष रूप से करूणा और उसके विस्तार का भाव उनके सम्पूर्ण काव्य में है।

महादेवी जी ने भारत के साहित्य और संस्कृति का भी गहन अनुशीलन किया था और वे 'आत्मवत् सर्वभूतेषू' की उदार भावना से भी ओतप्रोत थीं। यही कारण है कि उनकी विरहानुभूति में करूणा का साम्राज्य है और इसीलिए उनकी यह धारणा बन गई है कि विरह-कमल का जन्म वेदना से हुआ है और करूणा में ही वह निवास करता है -

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!

वेदना में जन्म, करूणा में मिला आवास,

अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,

जीवन विरह का जलजात्।

इसी कारण से ओतप्रोत रहने के कारण महादेवी जी की स्पष्ट धारणा है कि करूणा का उदार भावना में स्नान करके दुःख भी उज्ज्वल हो जाता है, उसमें विषद की कालिमा नहीं रहती

और वह अपनी वैयक्तिक सीमाएँ तोड़कर सर्ववाद का रूप ग्रहण कर लेता है। इसीलिए महादेवीजी करूणा-स्नात् दुःख को ही अपना पुजारी बनाने की कामना कर रही हैं -

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी!

अर्चना हो शूल भोले, क्षार दृग-जल अर्ध्य हो ले,

आज करूणा-स्नात उजला दुःख हो मेरा पुजारी!

उनके हृदय में यह करूणा का पारावार अविरल गति से उमड़ता रहता है और उन्हें यह करूणा सहज रूप में उपलब्ध हुई है।

15.5.2 नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण

महादेवी को एक कोमल नारी-हृदय प्राप्त है, जो केवल कवि होने के कारण सहृदय एवं सरस ही नहीं है, अपितु सात्विक गुणों से भी परिपूर्ण है, क्योंकि उनके गीतों में जिस निच्छल प्रेम-वेदना का निरूपण हुआ है, उसमें न कहीं कटुता है, न कहीं द्वेष है, न कहीं घृणा है और न कहीं प्रतिकार की भावना है। उनकी वेदना तो अपनी सहजता में विश्व-वेदना-सी बन गई है। यह प्रेम-वेदना एक कोमल नारी हृदय की तड़पन से आप्लावित है।

यद्यपि सभी छायावादी कवियों ने वेदना एवं विरहानुभूति का निरूपण किया है, तथापि महादेवी की-सी तरलता, सहजता एवं सात्विकता अन्यत्र नहीं देती, क्योंकि महादेवीजी को विरह का सहज स्रोत रूप नारी-हृदय प्राप्त है और उस हृदय में निश्छल प्रेम का सिंधु उमड़ रहा है। इसीलिए तो उनकी वाणी सत्, ऋत एवं सात्विकता से परिपूर्ण जान पड़ती है। विरह की ऐसी सच्ची अनुभूति अन्यत्र कहाँ देखने को मिलेगी -

जो तुम आ जाते एक बार!

कितनी करूणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते वन पराग,

आँसू लेते वे पद पखार!

हँस उठते पल में आर्द्र नयन घुल जाता ओठों से विषाद,

छा जाता जीवन में बसन्त लुट जाता चिर संचित विराग,

आँखे देती सर्वस्व वार!

उक्त गीत में कितनी करूणा है, कितनी मनुहार है, कितनी याचना है, कितनी मंगल-कामना है और कितनी सात्विक भावना है, जो एक नारी हृदय से ही निकल सकती है और जिसका जन्म एक चिर-व्यथित कोमल हृदय से ही हो सकता है। जिसमें कृत्रिमता एवं आडम्बर के लिए तनिक भी स्थान नहीं है।

प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा ये चारों कवि छायावादी कविता को सामूहिक पहचान प्रदान करने में समर्थ रहे परन्तु नारीत्व की पहचान अकेले महादेवी वर्मा ने की। महादेवी वर्मा अपने निबन्धो में नारी विषयक चिन्तन विस्तार से किया है, पर अधोलिखित पंक्तियों में जैसे उनके नारी चिन्तन का निचोड़ है - ''हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए न किसी का प्रभुत्व, केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिसका पुरूष के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन न सकेंगी'' (पृ. 304, श्रृंखला की कड़ियाँ)। सही अर्थों में नारी विमर्श का भारतीय रूप यही हो सकता है। जीने की कला, हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व, आर्थिक-स्वातंत्र्य, युद्ध और नारी, घर और बाहर तथा नए दशक में महिलाओं के स्थान तक को वे अपनी चिन्ता का विषय बनाती हैं।

15.5.3 सामाजिकता की भावना (स्वातं सुखाय से परांत सुखाय तक)

प्रायः महादेवी को जीवन और समाज के परे अन्तर्मुखी कहा जाता रहा है किन्तु वे अपनी काव्य दृष्टि और सर्जना दोनों में साहित्य की समाज-सापेक्षता की पक्षधर है। महादेवी में स्वातः सुखाय में परान्त सुखाय की सहज स्थिति दिखायी देती है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि ''जीवन के परिष्कार और परिवर्तन के हर अध्याय में साहित्य के चिह्न हैं, अतः उसे व्यापक सामाजिक कर्म न कहना अन्याय होगा। पर जब हम उसे सामाजिक कर्म मान लेते हैं, तब यह समस्या मानसिक क्षेत्र से उतर कर सामाजिक धरती पर प्रतिष्ठित हो जाती है और उसका समाधान भी नये रूप में उपस्थित होता है।'' उनकी दृष्टि में काव्य मानव हृदय में समाज के प्रति विश्वास को जन्म देने में महती भूमिका निभाता है। महादेवी ने 'दीप' और 'बदली' जैसे प्रतीकों का प्रयोग अकारण नहीं किया है। 'दीप' और 'बदली' की सार्थकता स्वयं को संसार को आह्लादित करने में निहीत है तभी तो कहती है -

''मधुर मधुर मेरे दीपक जल''

इसी तरह महादेवी वर्मा का यह उदाहरण ''मैं नीर भरी दुख की बदली'' अंततः स्वयं को नि:शेष कर देने में ही जीवन की अर्थवत्ता को व्यक्त करता है।

उनका यह विश्वास है कि वह चेतना-सत्ता तो अम्लान हँसी से परिपूर्ण है और सम्पूर्ण वैभव से भरी हुई; किन्तु वे उस अम्लान हँसी को नहीं, अपितु जगती के जीवन में व्याप्त क्रन्दन को देखती हैं और अपने उद्गार इस तरह व्यक्त करती हैं-

देखूँ खिलती कलियाँ या प्यासे सूखे अधरों को,

तेरी चिर यौवन-सुषमा या जर्जर जीवन देखूँ!

देखूँ हिम-हीरक हँसते हिलते नीले कमलों पर,

या मुरझायी पलकों से झरते आँसू-कण देखूँ!

15.5.4 दार्शनिकता और रहस्यानुभूति

छायावादी कवियों की भाँति महादेवी वर्मा ने भी अपने गीतों में उस अव्यक्त, अगोचर एवं असीम चेतना के प्रति अपने भावोद्गार व्यक्त किए हैं जिन्हें आलोचकों ने रहस्यानुभूति के संदर्भ में समझा है। वस्तुत रहस्यवाद जीवात्मा परमात्मा के मध्य निश्चल व अद्वैत सम्बन्ध हैं और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अन्तर भी नहीं रहता।

इस दृश्य जगत में व्याप्त उस अगोचर चेतन सत्ता से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ही 'रहस्यवाद' कहलाता है। एक रहस्यवादी कवि उस चेतन सत्ता के प्रति अपने ऐसे-ऐसे भावोद्गार व्यक्त करता है, जिसमें सुख-दुःख, आनन्द-विषद रूदन-हास, शोक-उल्लास, विरह-मिलन घुले-मिले रहते हैं और वह अपनी असीमता को चेतन सत्ता की असीमता में लीन करके एक अलौकिक आनन्द का अनुभव किया करता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद की परिभाषा इस प्रकार दी है - ''चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।''

डा. राममूर्ति त्रिपाठी के शब्दों में 'रहस्यवाद रहस्यदर्शियों का सांकेतिक कथन या वाद है।'

गंगाप्रसाद पाण्डेय के अनुसार - ''रहस्यवाद हृदय की वह भावावेशमयी अवस्था है जिसमें साधक अपने असीम और पार्थिव अस्तित्व का उस असीम और अपार्थिव अस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करता है।''

इस दृश्य जगत में व्याप्त उस अगोचर चेतन सत्ता से अपना रागात्मक सम्बन्घ स्थापित करना ही 'रहस्यवाद' कहलाता है। एक रहस्यवादी कवि उस चेतन सत्ता के प्रति अपने ऐसे-ऐसे भावोद्गार व्यक्त करता है, जिसमें सुख-दुःख, आनन्द-विषद्, रूदन-हास, शोक-उल्लास, विरह-मिलन घुले-मिले रहते हैं और वह अपनी असीमता को चेतन सŸाा की असीमता में लीन करके एक अलौकिक आनन्द का अनुभव किया करता है।

रहस्यभावना के विषय में स्वयं महादेवी का कथन है - ''छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के बीच प्राण डाल दिए परन्तु इस सम्बन्ध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण एक मधुरतम व्यक्ति का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यवादी रूपों के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया।'' इसलिए महादेवी विरहजन्य दुख में ईश्वर की तलाश करती हैं -

पर शेष नहीं होगी यह

मेरे प्राणों की क्रीड़ा

तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा

तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।

इसी तरह ''बीन भी हूँ मैं तुम्हारी, रागिनी भी हूँ।'' कविता भी जीवात्मा-परमात्मा के अद्वैत सम्बन्ध को व्यक्त करती है।

महादेवी के काव्य में औपनिषदिक सर्वात्मवाद की अनुगूँज उनकी कई रचनाओं में उतरी है, जिसे वे अपने अनुभव की जैविक अन्तःक्रिया में उतारने में सफल रही है। एक ही सत्ता नाना नाम-रूपों में प्रतीत होती है, तत्वतः वही सब कुछ है -

बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ

नाश भी हूँ मैं अन्तन्त विकास का क्रम भी

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी

तार भी आघारत भी झंकार की गति भी

पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं रहस्यानुभूति उनके जीवन की साधना है। उन्होंने ब्रह्म या परमाप्ता को अपना प्रियतम माना। उनका प्रियतम दूर रहकर भी उनके पास है और वे अखण्ड सुहागिन हैं। उनके रहस्यवाद में जिज्ञासा, प्रणय-मिलन, विरह व आत्मा-परमात्मा के अद्वैत व आध्यात्मिक भाव की अनेक व्यंजनाएँ हुई है। विशिष्टता यह है कि इनके रहस्यवादों में व्यक्तिगत चेतना की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति होने के कारण दार्शनिकता की शुष्कता न होकर भाव प्रवणता सर्वत्र दृष्टव्य होती है।

15.5.5 प्रणय और विरहानुभूति का स्वर

महादेवी के काव्य में छायावादी परम्परानुसार प्रणय का स्वर सर्वाधिक मुखर है। प्रणय के क्षेत्र में वियोगानुभूति की तीव्रता अभिव्यक्त हुई है।

महादेवी की विरह जन्य व्यथा लौकिक या दैहिक प्रेम से परे अध्यात्म्यपरक चिन्तन पर आधारित है। उसका प्रिय बादलों में, अन्तरक्षि में, फूलों में, सुगंध में अथवा आत्मा के अन्तरंग चिन्तनीय प्रेरणाओं में छुपा रहता है।

'हे नभ की दीपावलियाँ, तुम पलभर को बुझ जाना।

मेरे प्रियतम को भाता है, तम को पर्दे में आना।

स्वयं महादेवी जी ने कहा है - दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस वेदना को समीक्षित करते हुए कहा है - ''इस वेदना को लेकर वे हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने लायीं जो लोकोत्तर हैं, कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना, वह नहीं कहा जा सकता।''

महादेवी काव्य का प्रमुख केन्द्रस्थ करूणा है। करूणा की अनुभूति ही उनकी जीवनी-शक्ति है। उनकी यह स्वर व्यैक्तिक न होकर विश्व-वेदना तक व्याप्त है। उनका विरह जन्य दुःख ससीम से असीम की ओर दैहिक अनुभूतियों से हटकर मानसिक चिन्तन में व्याप्त हुआ है यथा -

मैं नीर भरी दुःख की बदली।

स्पंदन में चिर निस्पन्द बसा,

क्रंदन में आहत विश्व हँसा।

नयनों में दीपक-से जलते,

पलकों में निर्झरणी मचली।

करूणामय काव्याभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए स्वयं महादेवी ने लिखा है -

''रहस्यवाद से पराविद्या की अपार्थिवता ली। वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका, पार्थिव प्रेम से ऊपर उठ सका। हृदय को मष्तिष्कमय और मष्तिष्क को हृदयमय बना सका।''

महादेवी का यह कथन विश्व करूणा को व्यक्त करता है। हृदय और बुद्धि के संतुलन का संदेश देता है। जयशंकर की कामायनी की शाश्वतता का मूल आधार भी यही संदेश है।

प्रेम या प्रणय की अवस्था में मधुरता और वेदना एक साथ अनुभव होती है। एक प्रकार की अनुभूति ऐसी भी होती है जिसमें एक तरफ अपार आनन्द-आह्लाद का अनुभव होता है तो दूसरी तरफ आत्यधिक मार्मिक पीड़ा का भी। इस मीठी फिर भी तीखी अनुभूति को प्रणयानुभूति कहा जा सकता है। महादेवी कहती है कि

''गयी वह अधरों की मुस्कान

मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।''

सामान्यतः वेदना या पीड़ा कभी मधुमय नहीं होती। पर महादेवी को यह अत्यंत प्रिय है वे कहती हैं-

''पर शेष नहीं होगी, यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा।

तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।''

15.5.6 जागरण और विद्रोह का स्वर

महादेवी ने विरह-मिलन, करूणा-वेदना और रहस्यानुभूति के गीत ही नहीं लिखे हैं, जागरण और विद्रोह का स्वर भी मुखरित किया हैं।

श्रृंखला की कड़ियाँ‘ की नारी का व्रिदोह उनके कुछ गीतों में भी समर्थ ढंग से उतरा है। यथाः

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!

जाग तुझको दूर जाना!

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले!

या प्रलय के आँसूओं में मौन अलसित व्योम रो ले,

आज पी आलोक को डोले तिमिर की घेर छाया,

जाग या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफान बोले!

पर तूझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना!

जाग तूझको दूर जाना!

नवजागरण में जिन दलितों के प्रति करूणा दिखाई गई थी उसका व्यावहारिक रूप महादेवी में देखने को मिलता है। वे शोक-संतप्त मानवता के साथ एकाकार होना चाहती हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवीय पीड़ा में जहां तक चुनाव की बात है, वे मानवीय पीड़ा, संतप्त मानवता को विशेष महत्व देती हैं -

यह विश्व और उसकी वेदना, उसकी एक-एक गतिविधि हर क्षण उनकी चिन्ता के दायरे में है। ‘दुविधा‘ शीर्षक कविता में वे कहती है कि -

तेरे असीम आंगन की देखूँ जगमग दीवाली,

यह इस निर्जन कोने के बुझते दीपक को देखूँ?

तुझमें अम्लान हंसी है, इसमें अजस्र आँसूजल,

तेरा वैभव देखूँ या जीवन का क्रन्दन देखूँ?

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महादेवी की कविताओं में भावात्मक नव जागरण एवं विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है जिसके केन्द्र में मानव है, कविता यह स्वर सतही नहीं है जिसे आसानी से पकड़ सके वरन् यह काव्य-धारा की गहराई में है जिसे संवेदनाशून्य हृदय नहीं समझ सकता।

15.5.7 प्रकृति प्रेम

प्रकृति मानव की चिरसहचरी है। मानव ने पृथ्वी पर जन्म लेकर सर्वप्रथम प्रकृति की रमणीय गोद में ही क्रीड़ा की है और उसके विविध परिवर्तनों को देखा है।

आधुनिक कवियों ने अपने-अपने काव्यों में प्रकृति को विविध रूपों में अंकित किया है जैसे - (1) आलम्बन रूप, (2) उद्दीपन रूप, (3) संवेदनात्मक रूप, (4) वातावरण निर्माण का रूप, (5) रहस्यात्मक रूप, (6) प्रतीकात्मक रूप, (7) मानवीकरण रूप, (8) अलंकार रूप, (9) लोक-शिक्षा रूप और (10) दूती रूप आदि।

महादेवी वर्मा ने प्रकृति के विविध रमणी दृश्यों के ऐसे-ऐसे संशिलष्ट बिम्ब काव्य में प्रस्तुत किए हैं, जिनमें सरसता एवं सजीवता के साथ-साथ मन को रमाने की पूर्ण मार्मिकता है; उदाहरण के लिए - उनके प्रभात-वर्णन को ले सकते हैं; जिसमें प्रातःकालीन मृदुल कलरव से लेकर आलोकपूर्ण वातावरण के साथ-साथ कलियों के चटकने, भ्रमरों के गूँजने, सौरभ के फैलने, तितलियों के मधु-पान करने, पल्लवों के मर्मर-ध्वनि करने आदि की मादक ध्वनि से भरा हुआ गत्यात्मक सौन्दर्य विद्यमान है।

महादेवी जी के काव्य में ऐसे चित्रणों की भरमार है, क्योंकि उन्होंने प्रकृति को संवेदनात्मक रूप में ही अधिक देखा है। इसी कारण उनके काव्य में तारे भी आँसू बनकर आते हैं, वानीरों के वन व्यथा से काँपते हैं और रह-रह कर करूण विहाग सुनाते हैं -

आँसू बन-बन तारक आते, सुमन हृदय में सेज बिछाते,

कम्पित वानीरों के वन भी रह-रह करूण विहाग सुनाते,

निन्द्रा उन्मन, कर-कर विचरण लौट नहीं अपने संचित कर,

आज नयन आते क्यों भर-भर?

महादेवी जी ने प्रकृति के अनेक उपकरणों को प्रतीकों के रूप में अपनाकर बड़ी ही मार्मिक कल्पना की है; जैसे - आग दीपक को विरह-वेदना में प्रज्वलित जीवन का प्रतीक मानकर अपने गीतों में कितने ही स्थलों पर उसका सजीव चित्रण किया है -

यह मन्दिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।

रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर,

गये आरती बेला को शत-शत लय से भर,

जब था कल कंठों का मेला, विहँसे उपल तिमिर था खेला,

अब मन्दिर में इष्ट अकेला, इसे अजिर का शूल्य गलाने को जलने दो।

महादेवी जी ने प्रकृति में सर्वत्र एक चेतनता का दर्शन किया है। इसी कारण उनके काव्य में प्रायः प्रकृति सचेतन प्राणी की भाँति व्यापार में लीन अंकित हुई है; जैसे - आपने वसंत-रजनी को एक अनिंद्यसुन्दरी की भाँति अंकित करके उसे सम्पूर्ण सचेतन व्यापारों से परिपूर्ण बना दिया है -

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत-रजनी!

तरकमय नव वेणी बंधन, शीश फूल कर शशि का नूतन,

रश्मि-वलय सित धन-अवगुंठन,

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी!

पुलकती आ वसंत-रजनी!

जब किसी काव्य में प्रकृति के विविध सुन्दर-असुन्दर उपकरणों का प्रयोग उपमानों के रूप में किया गया है, तब प्रकृति के अलंकार-रूपों का चित्रण होता है। इस रूप में तो सभी कवि प्रकृति का उपयोग करते चले आये हैं। महादेवी जी ने भी प्रकृति के विविध उपकरणों को अलंकारों के लिए चुना है; जैसे - शूलों को अक्षत, धूलि को चन्दन, साँस को अगरु-धूम, स्नेह को आरती की लौ, आँसू को अभिषेक जल, विविध प्रकार के स्वप्नों को फूल आदि कहकर पूजा का अत्यन्त अलंकृत रूप इस तरह अंकित किया है।

महादेवी का काव्य तो विरह-प्रधान हैं और जाग्रत करने के लिए तथा इसी शिक्षा को सम्पूर्ण विश्व के हेतु अंकित करने के लिए आपने 'दीपक' को प्रतीक के रूप में चुना है और प्रियतम के पथ को, मानवता के पथ को युग-युग तक आलोकित करने के लिए प्रेरणा दी है।

15.5.8 सौन्दर्य चेतना

हिन्दी कविता में मानवीय, प्राकृतिक अथवा भावात्मक सौन्दर्य का जेसा चित्रण छायावाद युग में हुआ है वैसा पहले और बाद के युग में सम्भव नहीं हो पाया। गहरी संवेदनशीलता और तीव्र भावानुभूति के कारण छायावादी कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि प्रभावी रही है। छायावाद के सौन्दर्य चित्रण में द्विवेदी युगीन काव्य की इतिवृत्तात्मकता, नीरसता या ऊब नहीं है वरन वह सौन्दर्य की सहज-स्वच्छन्द, स्वानुभूत एवं रागात्मक सृष्टि है। रूपसी को सम्बोधित करके कही गई महादेवी वर्मा की निम्न पंक्तियां छायावाद की इस सौन्दर्य चेतना को प्रकट करती है -

रूपसि तेरा घन-केश-पाश!

श्यामल-श्यामल कोमल कोमल

लहराता सुरभित केश-पाश!

सौरभ भीना-भीना गीता लिपटा मृदु अजन-सा दुकूल;

चल अंचल से झर-झर झरते पथ में जुगनू से स्वर्ण फूल;

दीपक से देता बार-बार

तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास!

सौन्दर्य के प्रति महोदवी का दृष्टिकोण अध्यात्मिक है। इनके अनुसार ''सौन्दर्यानूभूति सदैव रहस्यात्मक होती है, क्योंकि सौन्दर्य का प्रत्येक निदर्शन अन्तर्जगत के अखण्ड और विराट सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब हुआ करता है। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति सर्वदा व्यापक सौन्दर्य की अनुभूति हुआ करती है।'' सौन्दर्य के प्रति महादेवी के इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण का मूल कारण यह है कि इन्होंने सौन्दर्य का सम्बन्ध केवल भाव-जगत से माना है। फलस्वरूप, इनकी सौन्दर्य-चेतना पूर्णतः आत्मनिष्ठ है। इनका कहना है कि ''सत्य की प्राप्ति के लिए काव्य और कलाएं जिस सौन्दर्य का सहारा लेते हैं, वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है, केवल बाह्य रूप-रेखा नहीं। प्रकृति का अनन्त वैभव, प्राणीजगत की अनेकात्मक गतिशीलता, अन्तर्जगत की रहस्यमय विविधता- सब कुछ इनके सौन्दर्यकोष के अन्तर्गत हैं।

महादेवी जी के संपूर्ण काव्य में प्रकृति की आत्मीयता मानवीकरण रूप में प्रकृति के अंकन में स्पष्ट होती है। प्रकृति केवल कवयित्री के आराध्य परम ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब नहीं किन्तु उनकी भावनाओं के अलंकरण का रूप भी।

संध्या के अतिरिक्त रात्रि के प्रति भी उनका सौन्दर्य आकर्षण 'नीहार' और 'रश्मि' में भरा हुआ है। कवयित्री ने रात्रि को सौन्दर्य की अखंड प्रतिमा के रूप में देखा, परखा और अनुभव किया हे। तभी तो वह कहती है -

''रजनी ओढ़े जाती थी

झिलमिल तारों की जाली''

संक्षेप में कह सकते हैं कि महोदवी जी के काव्य में एक से बढ़कर सौम्य, कोमल, चारूतापूर्ण, आनन्ददायी चित्र हैं जिनमें तन्मयता, रहस्यात्मकता, अनेक भाव सिमट कर असीम और प्रकृति के सामीप्य की उदभावना कर रहे हैं। कवियत्री की भावनाएं, कल्पनाएं, अस्तित्व यहां तक कि वे स्वयं को भूलकर प्रकृतिमय हो गई हैं क्योंकि उसी प्रकृति में उनके प्रियतम का प्रतिबिम्ब है, सौन्दर्य की आभा है। प्रकृति के दृश्यों को देखकर उनकी रागात्मकता, कल्पना की रंगीनियों में बँधकर साधनारत हो जाती है। यही उनकी सौन्दर्यनुभूति है।

15.5.9 गीति-तत्व की प्रधानता

महादेवी की सम्पूर्ण कविता गीति-कविता है। उनहोंने अपनी भावानुभूतियों की अबाध अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त ''रूप माध्यम'' गीत में पाया है। महादेवी की कविता का अलम्बन परम तत्व के प्रति प्रणय भाव है और इस भाव की अभिव्यक्ति गीत व लय में होना स्वाभाविक है।

महादेवी का कथन है कि, ... ''सुख-दुःख की आवेशमयी अवस्था का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के अनुसार चित्रण कर देना ही गीत है।

साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।''

आचार्यों ने गीत-काव्य में जिन प्रमुख तत्वों की स्थिति मानी है'', वे हैं - अनुभूति की तीव्रता या भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता एवं भावानुकुल भाषा। ये सभी तत्व महादेवी के गीतों में उपलब्ध हैं। महादेवी के गीतों में प्रणय, करूणा व वियोग के भावों का मार्मिक प्रकाशन हुआ है।

गीत में संगीतात्मकता की सृष्टि करने वाले अंगों में अधिक महत्वपूर्ण अंग उसकी ''टेक'' है। महादेवी ने अपने गीतों में मूल भाव के अनुरूप सुन्दर टेकों का चयन किया है। उन टेकों में पाठक या श्रोता के चित्त को आकर्षित करने की क्षमता है और मूलभाव को सुस्पष्ट करनेवाला शब्द संयोजन भी। जैसे -

''पुलक-पुलक उर सिहर-सिहर तर। आज नयन आते क्यों भर-भर? मधुर-मधुर दीपक जल! युग-युग, प्रतिदिन, प्रतिक्षण प्रतिपल। प्रियतम का पथ आलोकित कर"।

15.6 काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष

भावात्मकता, संगीतात्मकता एवं संक्षिप्तता से परिपूर्ण महादेवी के गीत उनकी अनुभूतियों को भावानुकूल भाषा के माध्यम से ही अभिव्यंजित करते हैं।

15.6.1 काव्य भाषा

कविता अनुभूति की अभिव्यक्ति है और भाषा उस अभिव्यक्ति का माध्यम है। महादेवी ने अपने काव्य की रचना खड़ी बोली में की है और उनकी भाषा में मधुरता और कोमलता को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपने रमणीय वर्ण-विन्यास के द्वारा कोमल एवं कठोर भावनाओं की व्यंजना की है। ह्रस्व वर्णों के प्रयोग द्वारा कोमलता लाने के प्रयास में भी महादेवी की सौंदर्य-सजगता लक्षित होती है। ''ल'', ''म'' आदि कोमल ह्रस्व वर्णों की आवृत्ति से सृजित माधुर्य की सृष्टि होती है -

''सजल धवल अलस चरण

मूक मंदिर मधुर करूण,

चांदनी है अश्रुस्नाता।''

महादेवी ने अपनी सुन्दर भावाभिव्यक्ति के लिए उचित शब्दों का चयन किया है। उन्होंने दीपशिखा, अंगराग, धनसार, दुकूल, आरती, बेला, अक्षत, धूप, अर्घ्य, नैवेद्य आदि अनेक शब्दों को चुना एवं उन्हें व्यंजनात्मक सौंदर्य प्रदान किया। उन्होंने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग किया तथा उन्हें तराशकर कलात्मक गरिमा प्रदान की।

इसके अतिरिक्त महादेवी ने अपनी भाषा में क्षणिक, भंगुर, वंशरी, पंकिल, फेनिल, ढरकोले, छबीली, लजीली आदि स्वनिर्मित शब्दों का प्रयोग किया है। महादेवी की भाषा के संदर्भ में प्रो. सुरेशचंद्र गुप्त का कथन है कि, - ''महादेवी ने अपनी भाषा को सज्जा प्रदान करने के लिए लक्षणा तथा व्यंजना शब्द-शक्तियों का व्यापक आधार ग्रहण किया है।''

अपनी काव्य भाषा को प्रभावशाली एवं सुन्दर अभिव्यक्ति के साधन का रूप प्रदान करने के लिए उन्होंने लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है। ''धूल में खिलते हो, इतिहास बिन्दु में भरते हो वारीश'', ''हंसो पहनों कांटों का हार'', ''काली रात काटना''। ''पथ में बिछना'', ''तिल-तिल जला''। आदि उदाहरण देखे जा सकते हैं।

महादेवी की भाषा में चित्रात्मकता का गुण भी विद्यमान है - मतवाला-सौरभ, गुलाबी चितवन, तन्द्रिल-पल, मृदुल-दर्पण, कोमल-व्यथा, मूक-वेदना, वाली वीणा और अलसित रजनी आदि। महादेवी वर्मा की भाषा-योजना पर विचार करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने ग्रन्थ काव्य-कला और जीवन दर्शन में यह टिप्पणी की है - ''महादेवी के गीतों में कला का मूल्य अक्षुण्ण है। भाषा के रंगों का हल्के-हल्के स्पर्श से मिलाते हुए मृदुल-तरल चित्र आंक देना उनकी कला की विशेषता है। पंत जी की कला में जड़ाव और कढ़ाई है, फलतः चित्रों की रेखाएं पैनी है। महादेवी की कला में रंग-घुली तरलता है जैसे कि पंखुड़ियों पर पड़ी ओस में होती है।'' काव्य में गुणों की दृष्टि से विचार किया जाये तो महादेवी के काव्य में माधुर्य गुण की प्रधानता है। हां, इतना अवश्य है कि बावजूद परिष्कृत शब्दावली के उनके गीतों में प्रसाद-गुण भी मिल जाता है।

महादेवीजी ने जैसे 'हरसिंगार झरते हैं झर-झर' में हरसिंगार के फूलों के झरने का ध्वनिपूर्ण वर्णन किया है। ऐसे ही 'देखूँ विहँगों का कलरव घुलता जल की कलकल में' के अन्दर पक्षियों के कलरव के साथ-साथ जल की कल-कल ध्वनि भी स्पष्ट सुनाई पड़ रही है।

कहने का अभिप्राय यह है कि महादेवी की भाषा सरस, परिष्कृत, कोमल, लक्षणा, व्यंजना से अधिक युक्त, चित्रात्मक, ध्वन्यात्मक और संगीत के प्रवाह से परिपूर्ण है। इसके कारण उनके काव्य में संगीतात्मकता का पुट दिखाई देता है। फलस्वरूप भाषा प्रवाह-युक्त और प्रभावशाली बन गई है।

भाव और भाषा का सामंजस्य स्थापित करने हेतु कवयित्री ने नाद-सौंदर्य पूर्ण पदावली का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है -

''पुलक-पुलक उर सिहर-सिहर

आज नयन आते क्यों भर-भर?

इन पंक्तियों में नायिका का चित्रण है, जिसका हृदय प्रिय-मिलन की मधुर कल्पना से पुलकित, शरीर रोमाचिंत तथा आंखे हर्ष से बार-बार भर आती है।

महादेवी काव्य में वचन, लिंग आदि के प्रयोग में व्याकरण के नियमों से बंधना नहीं चाहती। महादेवी जी जिस नये क्षेत्र में जिस नये प्रकार से कार्य करने में संलग्न है उनकी कठिनाइयों का हम अनुमान कर सकते हैं। उनकी भाषा में हमें समृद्ध छायावादी चमत्कृति नहीं प्राप्त होती है। तुकों के सम्बन्ध में काफी शिथिलता दीख पड़ती है। छन्दों और गीतों में भी एकरूपता अधिक है। भावों की काव्यभिव्यंजना देने के सिलसिले में कहीं-कहीं सुन्दर कल्पनाओं के साथ ढ़ीले प्रयोग एक पंक्ति के पश्चात दूसरी पंक्ति में ही मिल जाते हैं। उनके गीतों में एक बहुत बड़ा आर्कषण उनकी भावमयी अनमोल सोच में गढ़ी भाषा ही है।

15.6.2 प्रतीक एवं बिम्ब विधान

अपनी रहस्यात्मक मनोवृत्ति और उद्देश्य को स्पष्ट करने हेतु महादेवी ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। उन्होंने परंपरागत प्रतीकों में सूर्य, चंद्र, तारे, संध्या, निशा आदि को अपनाया है। इसके अतिरिक्त कली, भ्रमर, झंझा, इन्द्रधनुष, उषा, चंचला, मेघ, पवन, दीपक आदि प्रतीकों को अपनाया है।

''मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!

युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिफल

प्रियतम का पथ आलोकित कर।''

महादेवी के गंभीर, संयमित व्यक्तित्व के कारण प्रतीकों में अन्य कवियों की अपेक्षा बौद्धिकता का तत्व प्रबल है। ऋतु संबंधी प्रतीकों में - 'ग्रीष्म को रोष का, वर्षा को करूणा, शिशिर को जड़ता, पतझड़ को दुःख का, वर्षा को आनंद के रूप में प्रस्तुत किया है।

उदाहरण के लिए 'टूट गया वह दर्पण निर्मम' गीत को ले सकते हैं, जिसमें 'दर्पण' का माया का प्रतीक बनाकर बड़ी ही रमणीय कल्पना की गई है -

टूट गया वह दर्पण निर्मम!

किसमें देख सँवारूँ कुन्तल, अंगराग पलकों का मल मल,

स्वप्नों से आजूँ पलकें चल, किस पर रीझूँ किससे रूठूँ,

भर लूँ किस छवि से अंतरतम! टूट गया ....

कवयित्री ,खुद चित्रकार रही है, शब्दों के द्वारा उन्होंने ऐसा वर्णन किया है कि आँखों के सामने वर्णित विषय का चित्र आ जाता है अर्थात महादेवी जी के काव्य में बिम्बयोजना का सफलतापर्वूक निर्वाह हुआ है। इतना अवश्य है कि बिम्बों की विविधता नहीं है, एक प्रकार की अनुभूति को अलग-अलग प्रकार से प्रस्तुत किया है। जैसे -

''मैं बनी मधुमास आली!

आज मधुर विषद की घिर करूण आई यामिनी

बरस सुधि के इंदु से छिटकी पुलक की चाँदनी

उमड़ आई री, दृगों में

सजनी, कालिन्दी निराली।''

यह दृश्य बिम्ब का उदाहरण है। श्रव्य बिम्ब का उदाहरण इस प्रकार है -

''चुभते ही तेरा अरूण बान

बहते कन-कन में फूट-फूट के निर्झर से।''

जहाँ प्रकृति का वर्णन है वहाँ बिम्ब-योजना का सुंदर निर्वाह हुआ है।

उन्होंने अपने काव्य में फूल सुख के अर्थ में, शूल दुःख के अर्थ में उषा प्रफुल्लता के अर्थ में, संध्या उदासी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

15.6.3 अलंकार

अभिव्यक्तिगत सौंदर्य-सृष्टि का एक विशिष्ट साधन अलंकार है। छायावादी कवि पंत का कथन है कि - ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आधार, व्यवहार, रीति-नीति हैं। पृथक स्थितियों में पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।''

महादेवी की काव्य रूचि अत्यंत अलंकृत है। उनके काव्य में अलंकार आभूषण के रूप में नहीं, बलिक उनके भाव-चित्रों के रूप-रंग मालूम पड़ते हैं। महादेवी ने शब्दालंकारों में अधिकतर अनुप्रास और पुनरूक्तिप्रकाश का प्रयोग किया है। अनुप्रास में वन्दन वार वेदना-चर्चित आदि उदाहरण दृष्टव्य है। अर्थालंकारों के उपमा रूपक, अपेक्षा, अपहनुति, विरोधाभास, मानवीकरण, अप्रस्तुत प्रशंसा, विषयोक्ति, समासोक्ति आदि अलंकारों की बहुलता इनके गीतों में प्राप्त होती है।

महादेवी के काव्य में रूपकों का समृद्ध भण्डार है। विरहसाधिका होने के कारण उनकी तीव्र भावानुभूति रूपकों के माध्यम से विस्तार पाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. ''महादेवी वर्मा के काव्य में तीव्र भावानुभूति विद्यमान है।'' इस कथन की सार्थकता उनके काव्य के माध्यम से सिद्ध कीजिए।

2. ''महादेवी के काव्य में गीति तत्व की प्रधानता सर्वाधि है।'' इस कथन का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

3. महादेवी वर्मा की चिन्तन भूमि और जीवन-दृष्टि का उल्लेख कीजिए।

15. महादेवी वर्मा को 'वेदना की प्रतिमूर्ति' और 'आधुनिक मीरा' क्यों कहा जाता है, सोदाहरण विवेचन कीजिए।

5. ''महादेवी का काव्य संवेदना व शिल्प की अभिव्यक्ति के संदर्भ में छायावादी काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करता है।'' इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

5. निम्न पर टिप्पणी लिखिए -

(क) महादेवी वर्मा के काव्य में दुःखवाद व करूणा-भाव में प्रकृति-निरूपण

(ख) महादेवी के काव्य में रहस्य भावना।

(ग) महादेवी के काव्य में भाषा व बिम्ब विधान।

(घ) महादेवी के काव्य में प्रकृति-चित्रण।

15.7 सारांश

निष्कषर्तः कह सकते हैं कि महादेवी वर्मा की काव्य-रचनाएँ छायावाद का प्रतिनिधित्व करती हैं। जो विशेष सामाजिक-साहित्यिक परिस्थितियों में रची गई, जिनमें मानवतावाद, रहस्यवाद, वेदना व करूणा का लोकमंगलकारी रूप, प्रकृति प्रेम, नारी के प्रति आदरभाव जिज्ञासा और कौतूहल, अलौकिक प्रेम और प्रणयानुभूति, तीव्र भावानुभूति, आत्माभिव्यक्ति और राष्ट्रीय प्रेम व सांस्कृतिक पुनर्जागरण एक साथ देखने को मिलता है। महादेवी वर्मा ने एक कवयित्री के रूप में छायावादी कविता को अनुभूति एंव अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों को व्यक्त किया है। महादेवी की भाषा सरज, परिष्कृत, कोमल, अधिकाधिक लक्षणा व्यंजना से युक्त, चित्रात्मक, ध्वन्यात्मक और संगीत के प्रवाह से परिपूर्ण है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि महादेवी जी की अलंकार-विषयक सौंदर्य-चेतना ने गीतों को रमणीय रूप प्रदान किया है और गीता में वर्णित विषय को मार्मिक एवं आकर्षक बनाया है।

बौद्ध दर्शन का दुःखवाद ही महादेवी के काव्य-दर्शन के मूल में है। महादेवी का दुःखवाद दुःख की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि दुःख की स्वीकृति है। महादेवी के काव्य का मूल भाव अलौकिक प्रणय एवं रहस्यानुभूति है और उसके सहधरी करूणा, निर्वेद और दुःख हैं। उनके काव्य में जीवन की प्राम्भिक करूणा ही अन्त में सुख के प्रति निर्वेद एवं दुःख के प्रति अनुराग में परिणत हो गई है। इसी कारण महादेवी वैराग्य की ओर अग्रसर हो गई है -

मीरा के बाद गीत का स्वाभाविक रूप महादेवी में ही मिलता है। यों छायावादी युग में प्रसाद, पंत, निराला तथा अन्य कवियों के सुन्दर गीत मिल सकते हैं। परन्तु गीत काव्य का ऐसा विकास उनमें नहीं है जो महादेवी जी की कला को छू सके, उनके गीत निसर्ग सुन्दर हैं और उनमें अपनी निजी विशेषता है और वह विशेषता यह है कि उनमें स्वाभाविक गति और भाव-भंगिमा है। महादेवी जी इस क्षेत्र में अद्वितीय है।''

महादेवी वर्मा ने अपने विचारों एवं भावों को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का भी सहारा लिया है। ये प्रतीक उनके भावों को व्यक्त करते हैं। कवयित्री ने विशेष रूप से बादल, संध्या, रात्रि, गगन, प्रलय, सजल, दीपक, अंधकार, जलधारा, नींद, प्रकाश, विद्युत, ज्वाला, पंकज, किरण, स्वप्न आदि शब्दों को प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है।

15.8 शब्दावली

1. अमा - अमावस्या

2. विरह - वियोग

3. कज्जल - काजल

15. आर्द्र - नमी

5. चितवन - दृष्टि, नजर, हृदय

5. घन अवगुंठन - बादलों का घूँघट

15. किकिंणी - पाजेब, पायल

15. अभिसार - प्रिय मिलन की तैयारी

15. अलि - भौंरा

15. मुकुल - फूल

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय, गंगाप्रसाद, छायावाद के आधार स्तम्भ, 1975, लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

2. शर्मा, डॉ. हरिचरण, आधुनिक कविता प्रकृति और परिवेश, 1986, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर।

3. गौतम, डॉ. सुरेश, छायावाद का रचनालोक, 1997, आलोक पर्व प्रकाशन, नई दिल्ली।

15. सिंह, डॉ. गोविन्दपाल, महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली।

5. श्रीवास्तव, (संपा.) डॉ. परमानन्द, महादेवी, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद।

15.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी।

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ‘महादेवी वर्मा की वेदना करूणा से ओत-प्रोत है।’ इस कथन को तर्कसहित प्रमाणित कीजिए।

2. महादेवी वर्मा को आधुनिक मीरा कहा जाता है। स्त्री विमर्श के सम्बन्ध में इसका मूल्यांकन कीजिए।